छद्मस्थवाणी

ब्रह्मचारी जयसागर

श्रीमन्त समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालाल जी, सागर
द्वारा संस्थापित
पारमार्थिक ट्रस्ट, चमेली चौक, सागर

श्रीमद्भगवत्तारणतरणदेव विरचित

छद्मस्थवाणी

टीका-सम्पादन

ब्रह्मचारी जयसागर

सह सम्पादन

राजेन्द्र सुमन

सम्पादक—तारणज्योति

सिंगोड़ी (छिन्दवाड़ा)

प्रकाशक

भगवानदास शोभालाल पारमार्थिक ट्रस्ट

सागर (मध्यप्रदेश)

प्रकाशक
भगवानदास शोभालाल
पारमार्थिक ट्रस्ट
सागर (म० प्र०)

●

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
चमेली चौक, सागर (म० प्र०)

●

प्रथम संस्करण : १९९१
१११९ प्रतियाँ

●

न्योछावर
स्वाध्याय

●

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर
वाराणसी-१०

तारणतरण

की

दिव्य

वा

णी

अमर

हो

छद्मस्थवाणी

श्रीमन्त भवन
बगीचा-सागर

प्रेमचन्द जैन

जिनवाणी का रहस्य

छद्मस्थवाणी

हमारे यहाँ तारण समाज में ४९ दिन वाणी जी चलाने की परंपरा आज भी है। उसमें छद्मस्थवाणी ही चलती है। जिसका मात्र मूलपाठ होता है। परन्तु आज अत्यन्त हर्ष का विषय है कि वही ग्रन्थराज छद्मस्थवाणी एवं नाममाला ग्रन्थ प्रथम बार संस्कृत और हिन्दी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित हो रहे हैं। हमारे बुजुर्ग कहा करते थे कि इन ग्रन्थों की वाणी अगम्य है। परन्तु समय बदला और वाणी को समझने की आवश्यकता हुई, और सौभाग्य से उसकी पूर्ति भी हो रही है।

ग्रन्थों का यह अनुवाद २० वर्ष पूर्व हो चुका है। इसका वांचन सागर में पूज्य दाजी के द्वारा विद्वानों के समक्ष सम्पन्न हुआ था, जिसमें सागर के अग्रणी विद्वान् श्री सिद्धान्तशास्त्री पं० दयाचंदजी न्यायतीर्थ, श्री पं० माणिकचंद जी न्यायतीर्थ, प्रोफेसर गोपीलाल जी अमर आदि विद्वानों ने और समाज ने १५ दिन तक चेत्यालय में श्रवण करके अनुवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा टीकाकार का अभिनन्दन किया। तब से ही समाज में इन ग्रन्थों के प्रति उत्सुकता और जागृति हुई है। और वह आकांक्षा आज पूरी होने जा रही है।

छद्मस्थवाणी गुरुतारणतरण महाराज की स्वयं की स्वानुभूतियों का भंडार है। जब जिस समय जो अनुभूति हुई, शिष्यों को संबोधा, और शिष्यों ने उसे लिपिबद्ध किया। इस तरह इन आत्मानुभूतियों का संग्रह यह छद्मस्थवाणी ग्रन्थ है।

इसी प्रकार "नाममाला" ग्रन्थ भी १६वीं सदी का तारणतरण श्रीसंघ का महत्त्वपूर्ण इतिहास है। इसमें शिष्यों की नामावली और अनुयायियों की संख्या लिखी गई है। इससे बड़ा और क्या ऐतिहासिक प्रमाण होगा? विशेष क्या लिखें? इन ग्रन्थों का घर-घर में स्वाध्याय हो, धर्म लाभ के साथ ज्ञान का लाभ सभी को हो, यही हमारी शुभाकांक्षा है।

श्री ब्र० जी के हम कृतज्ञ हैं। तथा भाई राजेन्द्र सुमन को अनेक साधुवाद हैं, जिन्होंने संपादन में सहयोगी बन कर ग्रन्थ को सुरक्षित रखा। पाण्डुलिपि तैयार करने में जिनका सहयोग मिला उनको धन्यवाद है, भाई गुलाबचंद रत्नेश के सहयोग की हम सराहना करते हैं।

चमेली चौक
सागर
१९९१

डालचन्द जैन (पूर्व सांसद)
(अध्यक्ष—अ०भा०दि० जैन परिषद्)
(अध्यक्ष—अ०भा०ता०त०तो०श्रो० सभा)

भूमिका

छद्मंणाम आवरणं, तत्थ चिट्ठदित्ति छदुमत्थं ।

छद्मनाम आवरण का है, उस आवरण में रहने को छद्मस्थ कहते हैं। ज्ञान का आवरण ज्ञानावरण और दर्शन का आवरण दर्शनावरण है। जिस जीव के ज्ञान और दर्शन अपूर्ण हैं, उसे छद्मस्थ–अल्पज्ञ कहते हैं। जो सर्वज्ञ नहीं है, वह अल्पज्ञ है, वही छद्मस्थ है। बारहवें गुणस्थान तक छद्मस्थ है। इससे ऊपर तेरहवें गुणस्थान में सर्वज्ञ है।

सर्वज्ञ की वाणी जिनेन्द्रवाणी, जिनवाणी। छद्मस्थ की वाणी छद्मस्थ-वाणी। जिनश्रेणी में रहने वाले सम्यग्दृष्टि, श्रावक और दि० मुनि की वाणी को छद्मस्थवाणी कहते हैं, तदनुसार तारणतरण की यह वाणी छद्मस्थवाणी है। यह उनकी अनुभूतियों से ओतप्रोत शुद्ध, जिनेन्द्र कथित आगमानुसारी छद्मस्थवाणी है। इसमें उनने अपने जीवन की सम्पूर्ण अनुभूतियों को शब्दों में साकार किया है। भ० महावीर और राजा श्रेणिक के जीव पद्मनाथ तीर्थंकर के समवशरण का परिपूर्ण रूपस्थ धर्म-ध्यान को अपनी अनुभूतियों में विलीन किया है, उनके समवशरण को अपने तारणतरण स्वरूप का समवशरण कहा है।

सम्पूर्ण छद्मस्थवाणी में धर्मध्यान की छाया है। प्रत्येक व्यवहार के शब्द को निश्चय का साधन बनाया है। साधन से साध्य को प्राप्त करने का मार्ग प्रस्तुत किया है। अपनी अनुभूतियों को अपने साध्य से जोड़ा है। आप देखें इस ग्रन्थ में तथा नाममाला में शिष्यों के पुराने नाम बदल कर आध्यात्मिक एवं धार्मिक नाम रखे गये हैं। जैसे रुइयाजिन, कलनंजिन, दिप्तिजिन, उवनजिन, उवनरंज, रमणरंज, रमणजिन, कलनावती, रमणा-वती, कमलावती, विगसावती, व्यक्तश्री, निलयश्री, निलयरंज, कमलश्री आदि।

आगे ग्रन्थ के सम्बन्ध में विचारणीय कुछ प्रकरण देखिये, गुरुदेव ने पहले अपने सम्बन्ध में लिखा है, साठ वर्ष तक आत्म संशोधन और सम्य-क्त्व विचार करते रहे।

आयु के तीस वर्ष मिथ्यात्व विलय के चिन्तन-मनन और अनुभव में बीते, इक्कीस वर्ष शल्य तीन के विरोध में गये और नौ वर्ष तीनों सम्यक्त्व

के संपादन में गये। इस प्रकार साठ वर्ष आयु के बीतने पर तारणतरण का सहजादिवेष निर्ग्रन्थ पद उत्पन्न हुआ, इस पद में जो अनुभूतियाँ शब्दों में साकार हुईं, उन्हें शिष्यों ने लिपिबद्ध किया और सात वर्ष में यह ग्रन्थ बन गया। सं० १५७२ में ज्येष्ठ वदी षष्ठी की रात्रि अंतिम रात्रि गुरुदेव ने मौन लिया, चिर समाधि में लीन हुये, और शिष्यों ने ग्रन्थ में लिखा, तारणतरण शरीर छूटो, सर्व-अर्थ-सिद्धि प्राप्त हुई।

यह ग्रन्थ निर्ग्रन्थ पद में बना, इसका अस्थाप तिलक प्रतिष्ठा हुई। हजारों बार ग्रन्थ का वेदी सूतन हुआ, इस ग्रन्थ को कितने बार भगवान् कहा जाय? ग्रन्थ की रचना अद्भुत, शब्द, वाक्य, भाव और अर्थ अद्भुत ग्रन्थ को पढ़ते हुये, अपना अनुभव भी अवक्तव्य, तो अपूर्व ही ज्ञात होता है। भाषा सरल है, भाव गंभीर है। यह सन्त की वाणी है, कह नहीं सकते हमने जो लिखा है वही ठीक है, जो कुछ भी लिखना था लिख दिया, सर्वज्ञ के ज्ञान में जो आया था वह हो गया। अब आगे की बात भी सर्वज्ञ के ज्ञान में जो आई होगी, वही होगी।

इस ग्रन्थ की आदि में मूलपाठ दे रहे हैं। इसके दश अध्याय हैं। प्रत्येक "अर्थ-पद" का एक सूत्र बन गया, अतः क्रम भी सूत्रों के साथ है। टीका में यथासंभव शीर्षक भी दिये हैं। सूत्रार्थ, टीका एवं विशेषार्थ के साथ प्रत्येक सूत्र का पद्यानुवाद भी दिया गया है, सूत्रों के साथ संस्कृत में श्लोक भी दिये गये हैं। सभी प्रकार की सावधानी रखी गई है। मूलग्रन्थ का एक भी शब्द बदलने का साहस नहीं किया, इतने पर भी—

लघुधी तथा प्रमाद तें, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ें सदा, जो पावें भवकूल॥

श्रीमन्त समाजभूषण सेठ डालचंद जी, मानकचंद जी, प्रेमचंद जी एवं उनके श्रीमन्त परिवार तथा सागर ता० समाज की ही प्रेरणा थी, जिसने इस प्रकाशन को अति शीघ्र प्रस्तुत करने का साहस और सुअवसर दिया। इस ग्रन्थ का सागर में २५ वर्ष पूर्व वांचन करा दिया है। यह कार्य श्री दाजी की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ था। समाज के सैकड़ों अनुभवी सज्जनों ने ग्रन्थ को देखा और समझा है।

इस ग्रन्थ के साथ का ग्रन्थ भी तैयार है, उसके साथ इसका नाम लिया जाता है। वह ग्रन्थ है "नाममाला"। केवल मत के ये दोनों ग्रन्थ हुये, इनके साथ तीन ग्रन्थ और हैं—सिद्धस्वभाव, सुन्नस्वभाव। जीव का एक स्वभाव है। "सिद्ध" और दूसरा स्वभाव है "शून्य"। इन तीनों ग्रंथों

का भी समय मिलने पर भाषानुवाद करने का भाव है। तीसरा ग्रन्थ है, खातिका विशेष।

१४ ग्रन्थों के कठिन शब्दों का एक शब्दकोष भी बनाना है। कार्य तो बहुत हैं, समय अल्प है। अतः जो हो जाय सो काम। सन् १९९० का सागर चातुर्मास कार्यकारी और मंगलमय सिद्ध हुआ है। मंडलाचार्य, हमारे इतिहास की भूमिका, तारणगीता, नाममाला और छद्मस्थवाणी, इस प्रकार ये पाँच प्रकाशन लगातार हुये, इसे भी शुभ संयोग ही कहना चाहिये।

छद्मस्थवाणी स्वयं अपनी भूमिका है, यह एक विषय का ग्रन्थ नहीं है, अनुभूतियों का भण्डार है। तथा निश्चय व्यवहार का समन्वय है। और जिनशासन के अनुशासन में लिखा गया है। इस ग्रन्थ ने अपने पाँच शताब्दियों के विरोध का "उवसग्ग सहनं" उपसर्ग सहन किया है। इसीलिये दीर्घायु है। स्वाध्याय करने वालों को इस ग्रन्थ में जो अच्छा लगेगा वह उनका और शेष सब हमारा।

जिन शासन के प्रसाद से
सब जीवों का कल्याण हो।
सब सुखी हों

ब्र० जयसागर

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

छद्मस्थवाणी

• •

सूत्र-पाठ

श्रीमद्भगवत्तारणतरणदेव विरचिता

छद्मस्थवाणी

प्रथमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	ऊवं ह्रियं श्रियं अरहन्त सर्वन्यं सिद्ध शुद्धं। जयो जय जयं, जयं उत्पन्नं जयं ॥ १ ॥
२	उव उवन उत्पन्न जिनश्रेणि तारणतरण उवन कमल ॥ २ ॥
३	उत्पन्न कलन स्व कलियं ॥ ३ ॥
४	उत्पन्न कमल स्वभाव अर्क विन्द उत्पन्न ॥ ४ ॥
५	अर्क छत्तीस सरण कमल उत्पन्न कमल ॥ ५ ॥
६	अर्क ध्रुव समवशरण उत्पन्न ॥ ६ ॥
७	उवन दिप्ति दृष्टि प्रवेशी ॥ ७ ॥
८	स्वयं शब्द उत्पन्न प्रियो ॥ ८ ॥
९	सुवन सहाव उत्पन्न हियहुव औकास ॥ ९ ॥
१०	सह समय मुक्ति रमण गमन सिद्ध सिद्धं ॥ १० ॥
११	सवीर्य उत्पन्न अन्मोद वीर्य ॥ ११ ॥
१२	समयदृष्ट दिप्त शब्द आकिर्ण ॥ १२ ॥
१३	हियहुव औकास सर्वांग ॥ १३ ॥

१४ अर्क उत्पन्न वीर्य अन्मोय शब्द समय सिद्धि सिद्धं ध्रुवं ॥ १४ ॥

१५ उनईस सै तैतीस वर्ष, दिन रयन सै तीन उत्पन्न सहजादि मुक्ति भेव उत्पन्न ॥ १५ ॥

१६ मिथ्या विली वर्ष ग्यारह ॥ १६ ॥

१७ समय मिथ्या विली वर्ष दश ॥ १७ ॥

१८ प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ ॥ १८ ॥

१९ माया विली वर्ष सात ॥ १९ ॥

२० मिथ्या विली वर्ष सात ॥ २० ॥

२१ निदान विली वर्ष सात ॥ २१ ॥

२२ आज्ञा उत्पन्न वर्ष दो ॥ २२ ॥

२३ वेदक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २३ ॥

२४ उवशम उत्पन्न वर्ष तीन ॥ २४ ॥

२५ क्षायिक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २५ ॥

२६ एवं उत्पन्न वर्ष नौ ॥ २६ ॥

२७ उत्पन्न भेव उवसग्ग सहनं ॥ २७ ॥

२८ सम्वत पन्द्रहसौ बहत्तर गततिलकं ॥ २८ ॥

२९ सत सहजादि कल छूटो तदि सर्वार्थसिद्धी उत्पन्न ॥ २९ ॥

३० कलन सह समय सिद्धि सिद्ध स्वयं ॥ ३० ॥

३१ उत्पन्न स्वभाव अनदृष्टि-अनश्रुत अनहोतो शब्द ध्रुव उत्पन्न ॥ ३१ ॥

३२ उत्पन्न उत्पन्न शाह उत्पन्न अक्षर स्वर व्यञ्जन सर्वार्थसिद्धि सिद्धं ॥ ३२ ॥

३३ उत्पन्न शब्द हितमित परिणित ॥ ३३ ॥

३४ कोमल ललित हेय, अवगाह अगुरुलघु बाबा-विली ॥ ३४ ॥

३५ मुक्ति स्वभाव उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न नों उत्पन्न रमणन्यान ॥ ३५ ॥

३६ इति कार्यसिद्धि तिलकं ॥ ३६ ॥

३७ सम्वत पन्द्रहसौ बहत्तर स्वामी तारणतरण सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न ॥ ३७ ॥

३८ समयको मुक्ति प्रसाद ॥ ३८ ॥

३९ सुखेन सिद्ध ध्रुवं इति तिलक बहत्तर को ॥ ३९ ॥

४० ॐ उवन उवन उव उवनं—
उवनं सोई लोय नन्त प्रवेशं ॥
उवन शरण सोई विलयं—
उवन सुई तार कमल मुक्ति-विलसन्ति ॥ ४० ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	ॐ नमः उवन सिद्ध नमो नमः ॥ १ ॥
२	उत्पन्न स्वामी तारणतरण केवली समय–पाँचलाख त्रेपनहजार तीनसौ उनईस अन्मोय कमलावती रुइया जिन ॥ २ ॥
३	विधि—ज्योति केवली ७०० । मनपर्जयज्ञानी ५०० । गणधर ११ । प्रति गणधर १४०० । अवधिज्ञानी १३०१ । सन्तत केवली ३ । अनवधि केवली ३ । राजावानपति १ । एवं उन्तालीस सौ उनईस सुखेन सुखेन मुक्तिगामिनो ॥ ३ ॥
४	सौधर्म स्वर्गी ८००० । जतिसिद्धगति ८००० । अनुत्तरगत वैक्रियक ४००० । पूर्वधर ३००० । अर्जिका ३६००० । श्राविका ३००००० । श्रावक १००००० । साधक ९०००० । कुवादी जय ४०० इति ॥ ४ ॥
५	पारणादिन पैंतालीस ॥ ५ ॥
६	योग ध्यान दिन छह ॥ ६ ॥
७	सुखेन सुखेन उन्तालीस सौ उनईस अन्मोय कमलावती रुइयाजिन ॥ ७ ॥

८ सातसौ ज्योति केवली संसर्ग सर्वमुक्तिगामिनो सुखेन सुखेन ॥ विधि—उत्पन्न संसर्ग ज्योति सहया जिन ॥ ८ ॥

९ उत्पन्न संसर्ग ज्योति कमलावती ॥ ९ ॥

१० उत्पन्न ज्योति चरणावती ॥ १० ॥

११ उत्पन्न ज्योति करणावती ॥ ११ ॥

१२ उत्पन्न ज्योति विन्दावती ॥ १२ ॥

१३ उत्पन्न ज्योति भक्तावती ॥ १३ ॥

१४ उत्पन्न ज्योति जयनावती ॥ १४ ॥

१५ उत्पन्न ज्योति सुवनावती ॥ १५ ॥

१६ उत्पन्न ज्योति विगसावती ॥ १६ ॥

१७ उत्पन्न ज्योति रमणावती ॥ १७ ॥

१८ उत्पन्न ज्योति विप्तावती ॥ १८ ॥

१९ उत्पन्न ज्योति भुक्तावती ॥ १९ ॥

२० उत्पन्न ज्योति अतुलावती ॥ २० ॥

२१ उत्पन्न ज्योति लखनावती ॥ २१ ॥

२२ उत्पन्न ज्योति उल्हसावती ॥ २२ ॥

२३ उत्पन्न ज्योति विलसावती ॥ २३ ॥

२४ उत्पन्न ज्योति हरखावती ॥ २४ ॥

२५ उत्पन्न ज्योति विज्ञावती, सुवन जिन ॥ २५ ॥

२६ इति ज्योति संसर्ग अतिशय गामिनो ॥ २६ ॥

२७ मनःपर्ययज्ञानी पाँचसौ अन्मोय कमलावती रुइया जिन सुखेन सुखेन मुक्तिगामिनो ।। विधि—विप्रजिन। कलन जिन। अगम जिन। रमण जिन। सुख रमण। सहज जिन। रमण श्रेणी रायचंद ।। २७ ।।

२८ प्रतिगणधर चौदह सौ सुखेन मुक्तिगामिनो अन्मोय कमलावती रुइया जिन ।। विधि—पं० श्री धर्मचन्द्र। पं० श्री मलदास। पं० श्री खेमचन्द्र। पं० श्री भीखम। सुहगावती। गुप्तरूपा। विगसरंज। मिलन। धर्मश्री। अभयावती। भीखा पद्मावती। चरणावती। हियनन्दकुमार। हला ममलावती। मनोवती। खेउ-रंज पांडे। हरसिनि। महाश्री। भावश्री। इति प्रतिगणधर ।। २८ ।।

२९ सौधर्म स्वर्गी आठ सहस मुक्तिगामिनो ।। विधि—पं० श्री मैन रंज सुखेन। सिंघई रूवरंज सुखेन। पं० श्रीनेमिदेव सुखेन। जैनश्री सुखेन। रूपनिधि सुखेन। भुवा सुखेन। भावश्री सुखेन। हियरंज रूवा सुखेन। कलनश्री सुखेन। श्रीदृति सुखेन। रूपन महरी सुखेन। ब्रह्मदेव सुखेन। महाश्री सुखेन। रतन श्री सुखेन। माडन सुखेन। चौधरी राजधर सुखेन। चरणावती चन्द्र सुखेन। हंसावती सुखेन ।। कमलश्रेणि। वैन कुमार। राइचन्द्र। विरउ ब्रह्मचारी। नयनश्री। पालने। महाश्री। हंसा। कुँवर श्री। पाताले। वैद्य। मनसुख। इन्द्र अजिक रूव। अमरदेव। डालू। विरऊ। जैना अखयावती अलाहो ।। २९ ।।

इति द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	ॐ नमः सिद्धं ॥ १ ॥
२	जिनवर स्वामी तू बड़ो मैं जिनवर हों भलो ॥ २ ॥
३	बहत्तरि बहत्तरि बहत्तरि । चौवन उत्पन्न बहत्तरि बहत्तरि बहत्तरि । इकतीसा एक ॥ ३ ॥
४	गणधर कलनावती रुइयाजिन जिन श्रेणि जु उत्पन्न भये ॥ ४ ॥
५	सोवत का हो रे । उठ कलश लेहु । सत्ता एक सुन्न विन्द । उत्पन्न सुन्न स्वभाव ॥ ५ ॥
६	अर्थ त्रि अर्थ शुद्धं ध्रुवं ॥ ६ ॥
७	उव उवन उवन शुद्धं ध्रुव शाश्वतं ॥ ७ ॥
८	बहत्तर सुमन चतुष्टय ॥ ८ ॥
९	चौरासी उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न अनन्त भव ॥ ९ ॥
१०	आपनो आपनो उत्पन्न निमिष निमिष लेहु लेहु । जैसे ले सक्कहु लेहु ॥ १० ॥
११	शंकविली उत्पन्न प्रवेश ॥ ११ ॥
१२	घन उत्पन्न कोड अनन्त वुन्वुही शब्द ॥ १२ ॥
१३	रमणावती तीन लय उत्पन्न हुई हैं ॥ १३ ॥

१४ बहत्तर समय लय उत्पन्न ॥ १४ ॥

१५ ॐ ह्रीं श्रीं ग्रोवकं ॥ १५ ॥

१६ तीन लय उत्पन्न गुप्ति ॥ १६ ॥

१७ उत्पन्न औकास निधि ॥ १७ ॥

१८ लय उत्पन्न स्कन्ध तीन ॥ १८ ॥

१९ तीनलय उत्पन्न कुज्ञान हननं ॥ १९ ॥

२० तीन लय उत्पन्न जयनावती ॥ २० ॥

२१ तीन लय उत्पन्न छाया विमुक्त ॥ २१ ॥

२२ तीन लय उत्पन्न स्फटिक स्वभाव उत्पन्न प्रवेश ॥ २२ ॥

२३ तीन लय उत्पन्न नाम विली ॥ २३ ॥

२४ निर्निमेष उत्पन्न ध्रुव अनन्त उत्पन्न प्रवेश ॥ २४ ॥

२५ उत्पन्न व्युत्पन्न उत्पन्न जड़ उजड़ स्वामी ॥ २५ ॥

२६ रमण तीन हुन्तकार सात समय देखो सही देखो ॥ २६ ॥

२७ अविरल शब्द वाणी गणधर जिन साहु सतसई जिन प्रतिगणधर औकास जिन ॥ २७ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	सन्तत गणधर उन्तालीस सै के जुमले—कलनावती। रुइयाजिन। दिप्त जिन। विगसजिन। अस्थान रंज स्वामीजू के गल कंठ लगि मिलि हुईं। चान्दन भक्तावती। सुवनावती। रमणावती। हीरा। विगसावती। शिवकुमार। अतुलश्री। और आंहि तो ऊर्ध धारो॥ १॥
२	पुन जो जानो, कोई आंहि, तो अयं जिन, उत्पन्न जिन॥ २॥
३	भक्तावती मोकों आय मिली हों जानो इनही पै गारौ हो सो आय मिली॥ ३॥
४	अब लेहुरे भाई लेहु जिंहि लेने होंहि सोले॥ ४॥
५	एकलनावती और रुइयाजिन चौंसठ कलश जु जिनश्रेणि उत्पन्न भये सोये कलश ढलिहैं कि नाहीं॥ ५॥
६	अंग आठ। हुन्तकार ग्यारह। सर्वांग हुन्तकार एक। दिति दिप्ति हुन्तकार दो। चुटकी पांच। उत्पन्न उत्पन्न तीन। महा उत्पन्न तीन। स्वयं उत्पन्न एक। उच्छाह तीन। शब्द तीन। लेहु रे लेहु काहो करतु हो॥ ६॥

७　शब्द तीन पहिले हू पायो पायो पायो रे का सोवत हो रे ! कैंपायो सत पायो स्वामी जू को प्रसाद ॥ ७ ॥

८　विगस कहिऊ सो खुशी भये। भले ही पायो। ध्रुवकमल समाधि देत हुई ॥ ८ ॥

९　कमल झड़त हँहि ॥ ९ ॥

१०　पकड़ेजहि रे ! लीर्जाहि रे। लीर्जाहि। सम्हार लीर्जाहि। छोड़हु जिन ॥ १० ॥

११　पय लीर्जाहि उत्पन्न समय मिलन ॥ ११ ॥

१२　आरते उत्पन्न समय महोच्छौ उत्पन्न प्रवेश ॥ १२ ॥

१३　रमण महोच्छौ उत्पन्न विलस रमण ॥ १३ ॥

१४　इन्द्रधरणेन्द्र महोच्छौ करत हँहि ॥ १४ ॥

१५　रयण लेहुरे ! लेहु लूटहु ! उत्पन्न जय जय जय। उत्पन्न प्रवेश ॥ १५ ॥

१६　नवनिधि चौदह रयण तीन लोक अनन्त महोच्छौ करत हँहि उच्छाह अनन्त उत्पन्न ॥ १६ ॥

१७　साड़े बारह क्रोड बाजे बार्जाहि। दुन्दुही शब्द उत्पन्न महोच्छौ ॥ १७ ॥

१८　जो विनतो कियो चाहहु सो कमलावती रुइया जिन आगे कहहु ॥ १८ ॥

१९　कमलावती रुइया जिन कियो सो प्रमाण ध्रुव ॥ १९ ॥

२० जो मैं कियो सो उन कियो। जो उन कियो सो मैं
कियो। जो उन कियो सो प्रमाण ॥ २० ॥

२१ अनन्त प्रवेश पै लेहु रे। लेहु! भरहु भर
देखहु ॥ २१ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	मूल चतुष्टय लेहु रे। लेहु। इह विधि लेहु। गुप्तदान चिन्तामणि। हुन्तकार ग्यारह लेहु। जो पै कोडहुई सो सर्वत्र हुई ॥ १ ॥
२	नट-नाट। घट-घाट। सट-साट। झट-झाट। लट-लाट। वट-वाट ॥ २ ॥
३	पेलिनी पात्र। और सर्व लघु प्रिय प्रमाण। गुप्ति गुप्ति ते ध्रुव उत्पन्न। छह के छत्तीस लेहु ॥ ३ ॥
४	पार्वाहि आस पार्वाहि। इहि आस को लिये दुखी न होई ॥ ४ ॥
५	इन विनहि महिं कौन आयो रे। नौ नौ विभासे। पंचमूठि उत्पन्न गुप्तार। एजु उत्पन्न माले हौहि। सो कौनहि देवी। अंकूर उत्पन्न दरसाये। गणती पाँच उत्पन्न। प्रवेश अनन्त उत्पन्न ॥ ५ ॥
६	हँसिऊ विहँसिऊ विलसिऊ अनन्त सुन्न प्रवेश ॥ ६ ॥
७	एजु गणधर शिष्य आये हैं। चारविन विनती करतहु भये। सो हमारो अभाग कहा, जो और आगे न आये। हमको जु प्रसाद दिवावत नाहीं ॥ ७ ॥
८	इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष विनती करतउ गठरी

बिर्त । जय जय जय तीन पहिले । तीन बहुरि । एक जय ले आगहु ॥ ८ ॥

९ नित नित निरिखित उत्पन्न । जय जय जय । जय जय जय । जय जय जय । नौ उत्पन्न जय । उत्पन्न जय ग्यारह । उत्पन्न प्रवेश । उव उवन हुन्तकार । मागधी भाषा । अंकूर उत्पन्न दरसाये तीन । अनन्तानन्त कोड प्रवेश प्रवेश्यो । उत्पन्न विलस रमण ॥ ९ ॥

१० उत्पन्न अर्क रोम रोम । कोड उत्पन्न प्रवेश प्रवेश्यो । कोड स्वयं । कोड उत्पन्न हुन्तकार । उत्पन्न अञ्जरी प्रसारी । पदवी अनन्त उत्पन्न । अनन्त कोड आनन्द कोड हंसिऊ विहंसिऊ अनन्त प्रवेश-प्रवेश्यो ॥ १० ॥

११ ताली दोइ तोडी । अनन्त-विन्द, अनन्त सुन्न । अनन्त विन्द ॥ ११ ॥

१२ आरते अठारह उत्पन्न जयवन्त सहाई । जयवन्त सहाई । सहाई जयं जिन स्वामी ! तू इष्ट सुन्न । अनन्त उत्पन्न, उत्पन्न जयवन्त होंहि । कौनई जयवन्त होंहि । कौन अस्थिति उत्पन्न हुई । अस्थिति उत्पन्न, जयवन्त जिन, जयवन्त जिन । जय उत्पन्न अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

१३ ताली सात तोड़ी । अनन्त अर्क अर्किऊ । अनन्त कोड उत्पन्न । सोऽहं-सोऽहं अनन्त अर्क उत्पन्न, गुप्त सुन्न उत्पन्न ॥ १३ ॥

१४ अनन्त आसन सिंहासन । परिचय उत्पन्न कमलावती ।

अनन्त कोड उत्पन्न। उत्पन्न अचिन्त्यचिन्तामणि। अनन्त प्रवेश। गुप्त-विन्द अनन्त सुन्न अचिन्त चिन्तामणि। अनन्त प्रवेश। छत्र-चमर सिंहासन। नव उत्पन्न निधि। अनन्त प्रवेश ॥ १४ ॥

१५ लब्धि अलब्धि स्वयंदेव उत्पन्न। देवाधिदेव उत्पन्न। लब्धि उत्पन्न। दिव्यध्वनि मागधी भाषा। अरहन्त पदवी अनन्त उत्पन्न। स्वयं लब्धि उत्पन्न। अर्हन्त दियो। अरहन्त देई। प्रचै प्रवेश अर्हन्त होई। लेहु रे जयवन्त होहु ॥ १५ ॥

१६ कलन कमल जिन जिनहिं मिले। गुप्तसुन्न उत्पन्न। नामप्रमाण महोच्छौ। अनन्त जयवन्त। जय जय जय। जय जय जय। जिन जय। जिन जय। अरहन्त किये हुन्तकार ॥ १६ ॥

१७ अरुवोई। अरुबाई विमलश्री आईं, देखहु। मिलन मिली देखहु रे! अचिन्त्य जु आये। आसन सिंहासन कमलासन सिंहासन चार के चार ॥ १७ ॥

१८ पंचदिप्ति होई। अरुदोई हुई। अरु अनन्त स्वभाव। अर्क अर्थ विन्द उत्पन्न हुन्तकार तीन। हुन्तकार सात ॥ १८ ॥

१९ पहुँचो बारह। बारह जने साखि चाहिजे। बारह-पयोग। सुन्न बारह। बिन्द बारह। आगौनी बारह। बारह तो साथ चाहिजे। पहुँचो बारह ॥ १९ ॥

२० ए गठरी कौने छोड़ी रे। अनपूछे छोड़ी। रयन स्वभाव। कंज जल। रंज प्रवेश ॥ २० ॥

२१ मंगलवार बत्तीस । मिलन रमण छत्तीस । पंच अरु इकईस । रमण इकईस । पंचोत्तरे पांच । जय जय जय परिणाम सहितं । रुचितं सहितं स्वरूपं । रुचितं सहितं बहत्तरि । रुचितं उत्पन्न साहि । स्वयं उत्पन्न बहत्तरि । रुचितं स्वयं उत्पन्न स्वभाव ॥ २१ ॥

२२ सहस वहोत्तरं परम परमात्मा स्वरूपं । बाईस सहस वहोत्तरं रुचितं सहितं—दुन्दुही शब्द । बत्तीस से छ्यानवे शब्दार्थ प्रसिद्ध प्रमाण अगम स्वरूप । नित्य स्वयं अरु ध्रुवं । ऋद्धिदियो । उत्पन्न अंकूर तीन । अरु उत्पन्न मूठि । आरते उत्पन्न प्रवेश ॥ २२ ॥

२३ मिलन गये तीन । पयपाल तो आयो । दिबौकत को अनन्त उत्पन्न जु लहि न सके ॥ २३ ॥

२४ चारित्र उत्पन्न छद्मस्थ । छह अरु दोय । चौ ऋद्धि दीजो । छह अरु छहई । अनन्त मिलन । अनन्त अवगाह । अनन्त प्रसाद । नो उत्पन्न । छह अरु छहई । उत्पन्न जय । रमण छत्तीस जय ॥ २४ ॥

२५ चौबीस तीर्थंकर । रमण बहत्तर । बहत्तर जिनालौ । तिलक बारह । अञ्जरी बारह ॥ २५ ॥

२६ जो मैं कियो सो तुम कियो । जो तुम कियो सो प्रमाण । काहे ऐसो कहत हो के—तुम काहे ऐसो कियो ? चिदानन्द ! चिदानन्द !!! ॥ २६ ॥

२७ इतनो तो तुम्हारो गुहिनालो सही है । मैं जो कहिऊ सो तुम कियो । सो प्रमाण ॥ २७ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	जय जय जय। उत्पन्न जय जय। हितकार जय जय। सहकार जय जय। उत्पन्न ढुन्ढुही शब्द ॥ १ ॥
२	पटोहें ऊपर जु बैठे हैंहि सो कौन समय आवहिं। आवहु रे भाई! आवहु! प्रभात ही बुलावहु। को सो कलनावती ही बुलावहु ॥ २ ॥
३	अनन्त उत्पन्न प्रवेश तिलक। तीन जय जय जय। प्रवेश प्रसाद। दिप्त रंजवारे लहु की कमाई आगें आई। नो उत्पन्न अंकुर दरसाए ॥ ३ ॥
४	बहुरि के नो उत्पन्न। हुन्तकार उत्पन्न छह। छह उत्पन्न हुन्तकार। जय जय जय ॥ ४ ॥
५	वेगे होहु। वेगे होहु। वेगे लेहु। यह जिन पद आहि। कहों कौन सों? आये तो भलईं आये। लेहुरे अब लेहु! अपने ही कों कहों। जिनहिं जान लेहु ॥ ५ ॥
६	जिन उक्त अनन्त। तीनही लोक अनन्त प्रवेश थरा-बटके, आरते महोच्छो बहुत आये। अनन्त महोच्छो उत्पन्न प्रवेश। दयालप्रसाद, अचिन्त्य चिन्तामणि। अनन्त प्रसाद समय को दियो। सुखेन प्रसाद ॥ ६ ॥
७	पाछौ पुरुष छ्यानवे, श्री अखलालसा। और श्री

पुरुष गुहिनाले । अनन्त आरते सर्व ले आये । कोड महोच्छो करत आये । अनन्त महोच्छो कियो । अनन्त आयरण आगौनी के लिये । उत्पन्न कोड महोच्छो । आनन्दके तिलक बाहुड़े ॥ ७ ॥

८ और दूसरे पुरुष आये छ्यानवे श्री अठतालीस, गुहिनाले अनन्त । सापी तीन ले आये । आरते-अनन्त कोड़ करत सर्वन्य कुंवुही शब्द उत्पन्न । अनन्त गुण उच्चारत आये । आगौनी के लिये महोच्छो होन लागो । उत्पन्न आसन सिंहासन बैठारे । आरते तिलक महोच्छो अनन्त कोड़ के बाहुड़े । आठें शुक्रवार सहज तिलक उत्पन्न । उत्पन्न प्रवेश ॥ ८ ॥

९ उत्पन्न प्रवेश—कमलावती रइया जिन ॥ विधि—अगम जिन । रयन जिन । विगसरंज सुवनावती । भक्तावती । रमणावती । रूपचंद उक्तावती । विप्त-श्री । पंश्रीपश गैयत । विगसावती । अतुलावती । गुप्तकुमार । खिपक रूपा । उल्हस रूपा । ह्रियरंज रूव । जैनावती । गौर व हंसावती बाई । भक्तो । अलाहो । खेमा । अगमी । धनकुमार अश्वपति । लवन रंज । तेज श्री । विप्तरंज । पिरमल । ठाकुरसी । कनक श्री । अभया । पुहपा सिंघैनी । पल्हुवा खेमल । ममल श्री । गुप्त श्री । विप्तरंज को श्री । हंसा पजनु । इन्द्र । विमल को बिटिया जैना । खेमा । जिन रंज । लवनकी श्री । खेमल की बहू । देवराज को बेटा । अभय को भैया । अभय की श्री ।

अरहु दास। मदन दादू की श्री। रमन की श्री। अरहदास की श्री। मदनी। दास मोहन। अरहु को बेटो। पुहपा। भीखम। मिलन। रूपचन्द की श्री। खेमल की श्री। हंससुत शाहकुमार नरपति ॥ ९ ॥

१० जय सुन्न समाधि। उत्पन्न शाह। हुन्तकार तीन। स्वयं स्वयं स्वयं। सहजोत्पन्न। सहजोपपुनीत। सह शाह लब्धि भवति। यह मोरो को आहि रे! प्रिय आरते किये। तिलक रइया जिनको नाव बार तीन लियो। स्वामीजू की षट् बार रहति हुई। अरु असबाबु अभ्यन्तर रहति हुई। विगस पेखि यो स्वामी जू त्रैलोक्यनाथ। अनन्तप्रवेशो अचिन्त्य-चिन्तामणि। भयशल्य शंक अनन्त विली। अनन्त बाधा विली ॥ १० ॥

११ उत्पन्न प्रवेश जिन। तारणतरण समर्थ जिन। जिनपाये। चितप्रगटके न कही। परोक्षके जो कहियें। जय जय मिलिहो जैनमती। रयण तीन। जय जय जय। संसार तो आवहि जाहिरे। हम संसार छुड़ावहु। कमलावती! यह इष्ट बहत्तरा है। यहा बुलाये आवहि जाहि ॥ ११ ॥

१२ ए दरवाजे दिवावहु। निज हेर बैठो। नाहि तो रार कीजे। अब का है रे। ऐसो उत्पन्न आयरण जय। आराध्य जय। आलाप जय। उत्पन्न जय। हितकार जय। सहकार जय। उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ। अनन्त प्रवेशो। अचिन्त्यचिन्तामणि। अनन्त जय जय जय ॥ १२ ॥

१३ जाने तीन पायो। अय सात की विघिलीजहि रे। बेगे लेहु रे ॥ १३ ॥

१४ छह सौ बहत्तर जे पयोग। पयोग पयोग एक एक स्वभाव साठ। एक एक पयोग प्रति सहस आठ ॥ १४ ॥

१५ जान मान दान। जान मलयागिरि के प्रवेश मान श्रवण सुवन स्वभाव। दान उवन स्वयं प्रवेश ॥ १५ ॥

१६ संजोग जोगध्यान उत्पन्न। जोगध्यान बिन छह ॥ १६ ॥

१७ आगे छद्मस्थ जिहिं इहिं विनहि मांहि पायो। तिहिं मुक्तिफल को स्वभाव। अबहिं इन विनहि मांहि लियो सु पायो। सो मुक्ति फल को प्रसाद। ध्रुव उत्पन्न प्रवेश। हितकार हुन्तकार ॥ १७ ॥

१८ शाह सम्पत्ति। आठ हरी नव प्रतिहरी। चौ चक्कवे श्रेणी सम्मत भेदो। स्वभाव कोड। ए चौवीसहो समय गर्भिऊ ॥ १८ ॥

१९ अपनी अपनी सामग्री करहु ॥ १९ ॥

२० चक्रवर्ती के अनन्त कोड उत्पन्न। अनन्त अर्क अर्किऊ। अनन्त उत्पन्न प्रवेश ॥ २० ॥

२१ स्वयं इन्द्र कोड कियो। शतेन्द्र कोड कियो। वन्दित वन्दे। उत्पन्न समय कोड। चउ चतुष्टय के चारई आरते उठे। अनन्त उत्पन्न दुन्दुही शब्द। अनन्त अनन्त। इन्द्रधरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष अनन्त महोच्छो

आवे। मानस्तम्भ देखि मान गल्यो। उत्पन्न उत्पन्न अनन्त प्रवेश। अनन्त प्रवेशी। अनन्त प्रवेशी। अनन्त अर्क अर्किऊ। अनन्त इच्छा निर्वांछने महोच्छो। अनन्त ध्रुवस्थान रोम रोम कोड उत्पन्न ॥ २१ ॥

२२ आशा होई अबल बली महोच्छो। आसन सिंहासन। अनन्त ध्रुव। जय ध्रुव। जय महोच्छो ले उत्पन्न। जय उत्पन्न। पाँचईसापी। एतवार उत्पन्न। जय जय जय ॥ २२ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	सो सो सो । हों सो तू सो । तू सो हों सो । तू सोऽहं सो तू सोऽहं । सोऽहं हंसो । हंसो सो तू । सोऽहं । हूं जय । तू जय । हूं जय । स्वभाव स्वभाव मुक्ति विलसाई । नाम धरे मोरो कहा जाई ॥ १ ॥
२	स्वभावई स्वयं त्वं ध्रुवं विलसाई । विट्ठारो स्वयं विली हुई जाई । स्वभावई स्वयं जिन । सुध्रुव जिन । ध्रुव विलसाई । नामधरे मोरो कहा जाई ॥ २ ॥
३	रयन स्वभाव । पुञ्ज जय । हुन्तकार ग्यारह । कमल लीजहि । जु झुलपटें वार अपार । उत्पन्न प्रवेश ॥ ३ ॥
४	उत्पन्न अंकूर चार विलाये । कोड स्वभाव, अनन्त प्रवेश प्रवेशऊ । अनन्त अर्क अर्किऊ । अनन्त अव-गाहन । कलनावती जयवन्त होई आरते ले आवो । आयरण परम इष्ट है । उत्पन्न पञ्च परमेष्ठी सु प्रसाद लेहु । हमारो उपदेश जो है—बारह सौ वेद उपजि हैं ॥ ४ ॥
५	तीन अरु तीन छह । ऐसे कोमल परिणाम जो कलश अर्वाहि एक दोई हुन्तकार उत्पन्न एक । उत्पन्न रमण चतुष्टय चार । उत्पन्न दर्शन । उत्पन्न

ज्ञान। उत्पन्न चारित्र। उत्पन्न प्रवेश प्रवेश्यो। अनन्त विन्द। अनन्त सुन्न। समय बाहुरी। अर्क रमण-स्वभाव। अनन्त अर्क। उत्पन्न प्रवेश ॥ ५ ॥

६ शुक्रवार। शनीचर। आदित्यवार। उत्पन्न मिलन। सोमवार। मंगलवार। बुधवार। वृहस्पतिवार। रमण चतुष्टय उत्पन्न रमण प्रथम प्रवेश। पुञ्ज-स्थापन। उत्पन्न आयरण। उत्पन्न प्रवेश। अव-गाहन अनन्त मिलन बेशक ॥ ६ ॥

७ छह अवगाह स्थापन। आसन सिंहासन। पदवी उत्पन्न। कोड अनन्त प्रवेश। अनन्त अर्क उत्पन्न कोड। उत्पन्न विनोद लीला कोड। प्रीतम मिलन उत्पन्न, प्रमाण बार छह ॥ ७ ॥

८ अवगाहन। मिलन। चतुष्टय सन्मुख। संयोग लब्धि। अनन्तप्रवेश अवगाहन। अव्याबाध अनन्त। प्रचे-मिलन। अन्मोद प्रिये। परम अवगाहन। बार तीन ॥ ८ ॥

९ रहया जिन झट लेहु। झट लेहु। छोड़हु जिन लेहु लेहु। छोड़हु जिन। लेहु हुन्तकार तीन। अनरघ थार भरे आरत आये। तीन ये कोड हुन्तकार हैं रे। जो मोरी समय जीति जय जय जय अरहंत किये ॥ ९ ॥

१० जोड़ी दोई लागी। सापी दोई ले आये। अपछरा निवांछनै करत हीहि। अनन्त आरते ले आये। अनन्त

रयन पदार्थ जड़ित आरते महोच्छो अनन्त किये ॥ १० ॥

११ जोग कलश । संजोग कलश । स्वयं उत्पन्न उत्पन्न जोग कलश । महा उत्पन्न जोगकलश । चैत्र सुदी पाँचै मंगलवार ॥ ११ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	अयं अयं अयं । जयं जयं जयं । अयं जयं अयं जयं । स्वयं स्वयं स्वयं । सोऽहं सोऽहं सोऽहं । जयं अहं तुहं । तुहं अयं जयं अहं तुहं । तुहं अहं ।। १ ।।
२	काके हाथ उत्पन्न महोच्छौ । काके एक आठ हाथ पाती । एक चौबीस हाथ पाती । एक बारह हाथ पाती । जो मोरी पाती फाटी तो हम न जानही । एक चौंसठ हाथ पाती । एक छह हाथ पाती ।। २ ।।
३	वानो सर्व दयाल प्रसाव । एतो बापुडे भोरे भोरी मार्ग । ए तो कछु गुप्तार जानी नाहीं । अरु हमारी पाती फाटी । आवहु रे भाई ! हम बैठके मतो कीजे । एतो भोरे भोरी मार्ग साथ आवहिं जाहि ।। ३ ।।
४	पृथ्वी आठ । रमण चौबीस । पयोग बारह अर्ध-मागधी चौंसठ । वानो सर्व नौ सौ । बारह आठे छयालबे । रमण छह । तिहिमे की चार सौ पाती के दिन छह । छहरमण की पाती के दिन चैत्र वदी वसैं गुरौ ।। ४ ।।
५	योगध्यान दिन छह । पूषवदि विनदोई । उत्पन्न मिलन दिन तीन । उत्पन्न रमण दिन तीन । उत्पन्न

चतुष्टय जिन चार । पूयवदि जिन दोई उत्पन्न शाह जिन एक । हुन्तकार जिन तीन हितकार चौबीस । उत्पन्न स्वभाव । मिलन रमण । अनन्त अवगाहु । अम्मोद ध्रुवस्थापन । उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ । अनन्त प्रवेशी । अचिन्त्य चिन्तामणि । अबल बली हितकार चौबीस । हुन्तकार उत्पन्न ॥ ५ ॥

६ दयाल प्रसाद । अनन्त अवगाहन । प्रिय स्वभाव उत्पन्न प्रवेश । उत्पन्न समय स्वयमेव । अदिष्ट दिष्ट ॥ ६ ॥

७ इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष राक्षस भूत पिशाच गुह्यक उत्पन्न अनन्त । उत्पन्न समय महोच्छो आये ॥ ७ ॥

८ छत्र तीन स्वयमेव उत्पन्न हुई आये । दुन्दुही शब्द । ऐरावत संयुक्त । साड़े बारह क्रोड़ि बाजे बार्जाहि । सहित छत्र चमर सिंहासन, नौ निधि चौदह रयण, मणिमाणिक हीरा पदार्थ जड़ित आरते अनन्त उत्पन्न महोच्छो आये । महोच्छो कियो । वेशक प्रमाण के बैठारे । दियो वेशक उत्पन्न प्रवेश । छत्रश्वेत उज्ज्वल उत्पन्न के माथे दियो । छत्र एक कमलावती जु के माथे दियो । छत्र एक रुइया जिन के माथे दियो ॥ ८ ॥

९ छत्रधारि भक्तावती । छत्रधारि सुवनावती । छत्रधारि रमणावती । चमर ढार अगम जिन । चमर ढार रमण श्रेण । चमर ढार विगस रंज । ओ मैं थापो सो प्रमाण । आजु बड़े बड़े कहाँ पाऊँ । मोरे बड़े आज ये ही हैं जो मोरो महोच्छव करत हांहि । जो

महोच्छो मोरो करतु हो सो मोरो अस्थाप को करहु ॥ ९ ॥

१० जो जैसे प्रचै उत्पन्न स्वभाव। प्रचै प्रवेश उत्पन्न महोच्छो अनन्त अन्मोद। परिचय प्रवेश। नय परिचित किये, मुक्ति प्रवेश ५५३३१९ ॥ १० ॥

११ बहुत को पूछहि। मैं तो कमलावती अरु रुइया जिन कों तसलीम किये। हों तुम ही पै पूछिहों, जो तुम कियो सो प्रमाण के मानिऊँ। पंच लक्ष, त्रेपन सहस्र को तो तुम्हारो दामन पकड़िऊ ॥ ११ ॥

इति अष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	त्रैलोक्यमण्डन उत्पन्न स्वभाव। पयपूजा उत्पन्न चतुष्टय चार। त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी। हृदय अरिहन्त स्वभाव हृदय आभरण। हृदय स्थापन। हृदय उत्पन्न। त्रैलोक्य उत्पन्न। अंकूर आचरण। आराध्य, आलाप, लोक, अवलोक, असह् साह् उत्पन्न। उत्पन्न असह् साह् उत्पन्न। उपवेश प्रवेश। दो सौ सोलह् स्वभाव। बहत्तरि दो सौ सोलह् स्वभाव ॥ १ ॥
२	गम्य अगम्य अथाह् अगह् अलह् अभय भयरहित सहज सुकीय उत्पन्न। बालाग्र कोड मितं। अनन्तानन्त, अनन्तानन्त, अनन्तानन्त, अनन्तानन्त। अनन्त उत्पन्न प्रवेश। तं विप्त शून्य स्वभाव। बंधान विलयं यान्ति ॥ २ ॥
३	तदि पुञ्ज आयरण। शून्यस्वभाव। आयरण उत्पन्न। त्रिलोक आयरण। हितकार त्रैलोक। सहकार त्रैलोक। आयरण विन्द प्रवेश। उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न शून्य स्वभाव। छद्मस्थ उत्पन्न। छद्मस्थ उत्पन्न ॥ ३ ॥
४	मागधी भाषा दिव्यध्वनि। शून्य उत्पन्न। शून्य प्रवेश। शून्यस्वभाव। शून्य त्रीलोक विजय। उत्पन्न

पद तिलक। त्रीलोक विजय। उत्पन्न विजय। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। जय शाह। दश ॥ ४ ॥

५ जय उत्पन्न तीन। जय उत्पन्न दुन्दुही शब्द। जय उत्पन्न दुन्दुही शब्द। हितकार उत्पन्न, उत्पन्न जय दुन्दुही शब्द। सहकार उत्पन्न जय दुन्दुही शब्द। आयरण जय दुन्दुही शब्द। आराध्य जय दुन्दुही शब्द। आलाप जय दुन्दुही शब्द। अन्मोद जय दुन्दुही शब्द। शाह जय दुन्दुही शब्द। उत्पन्न शाह जय दुन्दुही शब्द। खिपक जय दुन्दुही शब्द। मुक्ति जय दुन्दुही शब्द। अनन्तसौख्य। अर्द्ध कोड-साडे बारह कोड मुक्ति विलास ॥ ५ ॥

६ वेदक उत्पन्न शून्य स्वभाव। अनन्त प्रदेश। अनन्त ध्रुव। बालाग्रकोडमितं। मुक्ति स्वभाव। स्वल्प शून्य प्रवेश। शून्य प्रवेश। प्रवेश स्वल्पशून्य उत्पन्न। अनन्त प्रवेश। अनन्तानन्त। अनन्तानन्त। अनन्तानन्त। अनन्तानन्त। अनन्तानन्त स्वभाव। अल्प शून्य पूर्वनाम। तदि उत्पन्न स्वल्प शून्य। स्वल्प इष्ट शून्य। स्वल्प शून्य उत्पन्न उत्पन्न शून्य। स्वल्प शून्य उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न चतुष्टय स्वभाव। तंदिप्त शून्य। अल्प शून्य अनन्तानन्त प्रवेश ॥ ६ ॥

७ चौदह सै नव्वे कोड़ाकोड़ी सागर। आठ सै चौरानवे काल। तुम लब्धि ऊपर लब्धि पावहु ॥ ७ ॥

८ तुम अपने किये। हों कबको कहतु आहुं। बड़ोपहरु

भयो । बड़ो पहर लंघिऊ । चन्वन गल्म बहुरे । होंका आपुनु कों चाहतु हों ॥ ८ ॥

९ सुल्पशून्य । सुल्प इष्टशून्य । उत्पन्न सुल्प शून्य । महा उत्पन्न उत्पन्न सुन्न । सुल्प स्वयं सुल्प सुन्न । सुयं सुल्प उत्पन्न सुन्न । सुयं सुल्प आयरण सुन्न । सुयं सुल्प आराध्य सुन्न । सुयं सुल्प आलाप सुन्न । सुयं सुल्प सह् साह् सुन्न । सुयं सुल्प असह्साह् सुन्न । सुयं सुल्प अथह् थाह् सुन्न । सुयं सुल्प अगह् गाह् सुन्न । सुयं सुल्प अलह् लाह् सुन्न । सुन्न सुयं सुल्प अध्रुव विलोध्रुव उत्पन्न सुन्न । सुयं सुल्प सुयं अर्क उत्पन्न सुल्प सुन्न । सुल्प सुयं विन्द अनन्त स्वभाव । उत्पन्न सुल्प सुन्न सुयं सुल्प अचिन्त्य अनन्तानन्त । सुयं सुल्प सुन्न सुयं सुल्प हितकार अनन्त स्वभाव । सुयं सुल्प सुन्न सुयं सुल्प हुन्तकार मुक्ति स्वभाव । सुयं उत्पन्न सुल्प सुन्न सुयं सुल्प मुक्तिरमण सुन्न, सुयं उत्पन्न सुल्प सुन्न अल्प सुन्न सुयं प्रवेश । अल्प सुन्न अनन्तानन्त प्रवेश । सुल्प सुन्न सुयं ध्रुव प्रवेश अनन्तानन्त । अल्प सुन्न सुयं उक्त शाह् अनन्तानन्त प्रवेश । अल्प सुन्न स्वयं श्रवण रमण अनन्तानन्त प्रवेश । अल्प सुन्न सुयं सुन्न उत्पन्न प्रवेश अनन्तानन्त प्रवेश ॥ ९ ॥

१० जय जय जय समवशरण । साड़े बारह् कोड़ि बाजे बाजहिं । मुक्ति विलास उत्पन्न प्रवेश । उत्पन्न चार के चार । चार के सोलह् । सोलह् के चौबीस । चौबीस के चौंसठ । चौंसठ के छ्यानवे ॥ १० ॥

११ मुकुट दोई आये । सोने की घुंघरी । हीरा पदार्थ जड़ित । और माले अनन्त समूह । उत्पन्न प्रवेश प्रसाद दियो । जने पाँच छह लियो । कमलावती रुइया जिन । भक्तावती । सुवनावती । विगस रंज । रमण श्रेण । छत्र चार उत्पन्न स्वभाव आये । आयरण छत्र । आराध्य छत्र । आलाप छत्र । सर्वांग छत्र । पदतिलक बैठे सुदृष्टि । साड़े बारह कोड़ि परम आनन्द स्वभाव ॥ ११ ॥

१२ चरि चरन चरिय । चरण ध्रुव चरन चरिय । अगम, अथाह, असह, अलहु, सुर उवन चरी ककका । पपपा । सससा । ररा । ललला । धध-धा । भरनु औंजनु । अनन्त औंजनु । अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

१३ दुन्दुही शब्द बारह । आयरण पति आयो रे । देखहु आपनो । आय देखहु । चौंसठ मुखा आयरण पति । मागधी भाषा । दुन्दुही शब्द । उत्पन्न दिव्यध्वनि अनन्त प्रवेश । ध्रुवरमण । करणावली आई । कमला-वती कहु आय मिली । विनती करत हंहि । आनन्द कोड महोत्सव । अनन्त करत हंहि । उत्पन्न प्रवेश । बहुरि बहुरि एक आरते मांगत निवांछने करतु । अनन्त आभरण पहिरे । उत्पन्न प्रवेश । उत्पन्न आयरण । त्रिजोग कलश । उत्पन्न उत्पन्न आयरण उत्पन्न अनन्त आयरन । अनन्त उत्पन्न प्रवेश । आयरण त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी । अनन्तानन्त प्रवेश । अनन्तानन्त नाथ । अनन्तानन्त शाश्वते सुन्न

प्रवेश । पात्र पात्र पात्र । उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न । आयरण जिन तं लाइये, आराधं धरिय सम्हारे । आलाप जिन सन्मुख भये । तं पात्र नन्ते विचारे । जिनवर स्वल्प शाह सम्हारे ।। १३ ।।

१४ ज्ञान तीन । रयण तीन । उत्पन्न ज्वाला । उत्पन्न वायु । उत्पन्न अग्निज्वाला । बलात्कार चौथो सम्पूर्णं । संजोग अबल बली । उत्पन्न परस, उत्पन्न हितकार परस । उत्पन्न सहकार परस । उत्पन्न शाह परस । उत्पन्न सर्वांग परस । उत्पन्न परस पांच । आयरण शब्द । आराध्य शब्द । आलाप शब्द । शाह शब्द । सुवन शब्द । उत्पन्न शब्द । प्रवेश शब्द । नो उत्पन्न ।। १४ ।।

१५ जो उत्पन्नी कह्यो सो होई । जिन शाह । जिन उत्पन्न वाह । जिन उत्पन्न हिययार वाह । जिन उत्पन्न शाह वाह । जिन आयरण वाह । जिन उत्पन्न आराध्य वाह । जिन उत्पन्न आलाप वाह । जिन उत्पन्न दृष्ट वाह । जिन रमण प्रमाण वाह । जिन उत्पन्न प्रमाण वाह । जिन अखय वाह । जिन उत्पन्न अखय वाह । जिन अनन्त वाह । अनन्त प्रवेश वाह । जिन अल्प वाह । जिन उत्पन्न अल्प वाह । जिन स्वल्प वाह । जिन उत्पन्न स्वल्प वाह । जिन अवह वाह । जिन उत्पन्न शाह वाह । जिन अगम वाह । जिन उत्पन्न अनन्त अगम वाह । जिन दिप्ति वाह । जिन उत्पन्न दिप्ति अनन्त वाह । जिन दृष्टि वाह । जिन उत्पन्न दृष्टि अनन्त वाह ।। १५ ।।

इति नवमोऽध्यायः

दशमोऽध्यायः

क्रमांक	सूत्रपाठ
१	चौथे जो उत्पन्न जैसे ऐसे होई। शाह होई। वाह होई। वर होई। वरयाई होई। संवर होई। संवराई होई। तप होई। तेज होई। लब्धि होई। अलब्धि होई। नन्द होई। आनन्द होई। रंज होई। रमण होई। दया होई। दयालु होई। अन्मोद होई। प्रिय होई। प्रवेश होई। प्रसाद होई ॥ १ ॥
२	उत्पन्न त्रैलोक्य समय शाह। उत्पन्न हितकार सहकार। उत्पन्न उत्पन्न त्रैलोक्य समय शाह। उत्पन्न आयरण। आराध्य आलाप ध्रुव दर्शत्रिक उत्पन्न दर्श त्रिलोक समय शाह। दर्शन ज्ञान चारित्र। उत्पन्न भय विलयन्ति। भय शल्य शंक विलय समय शाह। उत्पन्न उक्त त्रिक समय शाह ॥ २ ॥
३	उत्पन्न केवल, सम्पूर्ण केवली। उत्पन्न सर्व केवल। उत्पन्न भुक्त चतुष्टय। उत्पन्न उक्त शाह। मोरी समय समय समय। उत्पन्न समय। हियथार समय। सहयार समय। मोरी समय पंच त्रिक। पञ्चामृत स्वभाव प्रवेश। त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेश ॥ ३ ॥
४	छद्मस्थ बुलाऊ आयो। तुम चलहु। हमारी समय निपजवे है। हमारो तिलक बहत्तर को है। सो आगे आर्वल अनन्त है। उत्पन्न अनन्त हुई। जय जय जय।

जय जय जय । जय जय जय । जय एक नमोऽस्तु कियो । जय आऊ । जय आऊ । जय लियो । जय लियो । जय सुल्प । जय सुल्प । सुदिप्ति प्रवेश । सुल्प प्रवेश ।। ४ ।।

५ गुप्तार जानी । आयरन जानी । गुप्तार जानी । आराध्य जानी । आलाप स्वयं । जो जैसे सो तैसे । जय अर्घ कोड होई । गुप्त जानी । आलाप स्वयं । जो जैसे सो तैसे । जो तुव भयो । जो तू पास । जो तू आस । जो तू लियो जगत्रयहिं दियो । जैसो है तैसो है । हमारे जैसे है तैसे तुव । जैसो तुव तैसो हों । जु मोरो सो तोरो । जु मोरो सु तोरो । जु तोरो सु मोरो । मोरो सो ध्रुव । जैसे—लेहु, लेहु । जय उत्पन्न लेहु । साहि साहिऊ । जय जय जय त्रैलोक्य-नाथ । गणधर लेहु स्वभाव । उत्पन्न प्रवेश लेहु लेहु लेहु । अपनो प्रवेश, उत्पन्न शाह । जय लेहु लेहु लेहु । त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेश । पाछे भयो सो विली, आगे अनन्तानन्त प्रवेश हुई है ।। ५ ।।

६ अनन्त समय आवे तो कहो अनन्त प्रवेश लेहु । रुइया-जिन कहाँहि याती लेहु । कमलावती रुइया जिन । समय की थाती लेहु । तुम हम पायो सो त्रैलोक पायो । जैसे लेहु तैसे देहु । जैसे लियो तैसे दियो । जो मोरी आस सो मोही पास । बहुरि आयो रे । उत्पन्न समय बुलावो जय जय अनन्त जय । बहुरि लेहु रे सर्व लेहु । लेहु कौन स्वभाव है ? देतु हों । दे लेहुरे लेहु । दे अब प्रमाण पाडिऊ । ध्रुव अब लेहु । अब जो जहां सो तहां तें लेहु ।। ६ ।।

७ जो जहाँ हुतेऊ सो तहाँ तें निकलिऊ। एकेन्द्रिया इत्यादि तें निकलि आयो। उत्पन्न उदय प्रवेश। उत्पन्न उदय ध्रुव। अर्क अर्थ समय अस्थाप आयरण समय प्रवेश। बेशक प्रसाद उत्पन्न स्वभाव। बेशक सर्वार्थ स्वयं प्रवेश। अनन्त सौख्य ॥ ७ ॥

८ सत सही। तीर्थंकर साथ उत्पन्न। आयरण आराध्य। आलाप। ध्रुव। अनन्त विन्दु। रतन जड़ित हार आये। लेहुरे लेहुरे लेहुरे। पहिरावहु रतन जड़ित मालें। दयाल प्रसाद दियो। लेहुरे पहिरावहु। जो माणिकमोती निवहैः जं जासु परापति सो लहै ॥ ८ ॥

९ पाँच सौ बहत्तर देखत हो रे ! शून्य समूह बार बारि हृदय ही में देखहु। आहूठ कोडि सम्पूर्ण। सम्पूर्ण विन्दु उत्पन्न। चतुष्टय उत्पन्न। आदि ही सर्वार्थ उत्पन्न गणियहुरे ! पालकी लिवाउन आये। पालकी आगौनी अनन्त। चौरासी आसन सिंहासन। सिंहासन प्रवेश। मनुविलो। खिपक राशि। जिन स्वभाव ॥ ९ ॥

१० अशोक वृक्ष। दिव्यध्वनि। मागधी भाषा। वुन्वुही शब्द उत्पन्न। इष्ट उत्पन्न। इष्टपुहप वृष्टि। हुन्तकार दो। दिव्यध्वनि, अन्मोद बृद्धि। सहज स्वभाव प्रमाण आनन्द। मिलन औकास कहिऊ। हुन्तकार चार अक्षर उत्पन्न ध्रुव शाह। सरण विलो। मुक्ति विलास। हुन्तकार दो ॥ १० ॥

११ कलनावती कोधारि प्रिय प्रवेश। ध्रुव शाह प्रवेश। जिन दान रुइया जिन। हुन्तकार छह जय बहत्तरि।

जय बहत्तरि। जय चौबीस रतन जड़ित मालने। रतन जड़ित विमान। हुन्तकार छह। स्वयं उत्पन्न चतुष्टय। आचरण। आराध्य। आलाप। मुक्ति प्रसाद। अनन्त चतुष्टय। मुक्ति विलास ॥ ११ ॥

१२ एक स्वभाव। पै एक। सोई एक। सुन्न विन्द का है रे! लैहो नाहीं। नो उद्दण्ड वर्ग। ग्यारह उवडंड वर्ग। तीनी मुनी उत्पन्न। मैं कलनावती अरु रुइया जिन कहँ दियो। अरु तुम कहँ दियो ॥ १२ ॥

१३ अनन्त प्रवेश। नो उत्पन्न निधि। चौ उत्पन्न रयन। अचिन्त्य चिन्तामणि। उत्पन्न प्रवेश प्रसाद। अनगिनत समूह समय कहँ दयाल हो दियो। अनन्त प्रवेश प्रवेशिऊ। अनन्त महोच्छौ ॥ १३ ॥

१४ मानप्रमाण का है रे। अबहि की उपजी लैहो नाही रे। का सोवत हो। हों देतु हों। अनन्त निधि अबतो अनन्त भ्रमण भवान्तर गयो। अबहिं के मुक्ति प्रवेश। रुइया जिन कहँ मुक्ति प्रसाद दियो ॥ १४ ॥

१५ गणधर ग्यारह। ग्यारह के चौबीस। चौबीस के बहत्तर। और अनन्त प्रसाद। अनन्त दृष्टि अदृष्टि उत्पन्न प्रसाद। पहिले रुइया जिन पहिराये रत्न जड़ित पहिरावनी। तिलक ग्यारह। अनन्त प्रसाद। अनन्त समय संयुक्त प्रसाद ॥ १५ ॥

१६ जो थाती लिखि प्रवेश दियो,
प्रिय संसर्ग अनन्त प्रवेश,
लेहुरे, बड़े प्रिय प्रमाण दियो ॥
प्रिय प्रमाण ध्रुव ॥ उत्पन्न शाह ॥ १६ ॥

१७ चौदह सौ बहत्तर कलश ।। १४७२ ।। अर्क एक प्रति चौबीस उत्पन्न कमल दृश्यते । छत्तीस सौ ब्यानवे कलश ।। ३६९२ ।। चतुष्टय उत्पन्न चौदह लक्ष सात सहस्र, दो सौ आठ ।। १४०७२०८ ।। —कलश ढले—तीन क्रोड़, साठ लाख, आठ से दोय— ।। ३,६०००८०२ ।। कलश कलश कलश, तीन के चतुष्टय चार ।। १७ ।।

१८ सम्वत पन्द्रह से बहत्तर (१५७२) वर्षे, ज्येष्ठवदि छठि की रात्रि सातें शनीचर के दिन जिनतारणतरण शरीर छूटो । तादिन सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न । अनन्त सौख्य उत्पन्न प्रवेश । समय कहूँ प्रसाद सुखेन सुखेन प्रवे प्रवेश प्रमाण ध्रुव उत्पन्न ।। १८ ।।

इति छद्मस्थ वाणी शास्त्र समौ उत्पन्निता ।

हस्तलिखित प्रति के लिपिकार की प्रशस्ति "सम्वत् १७७६ वर्ष अगहन सुद २ को पूरन भयो । नग्र साबुली मध्ये लिखितं । लालमनी नांव ।। समाप्त ।।"

इति श्री तारणतरण मण्डलाचार्य विरचिते श्री छद्मस्थवाणी नाम ग्रन्थे दशमोऽध्यायः ।

छद्मस्थवाणी

सूत्र • संस्कृत टीका • काव्य

सूत्रार्थ • टीका अर्थ • काव्य अर्थ

विशेषार्थ • पद्यानुवाद

ॐ

वन्दे श्रीगुरुतारणम्

श्री भगवद् तारणतरण मण्डलाचार्य विरचिता

छद्मस्थवाणी

प्रथमोऽध्यायः

मंगलम्

श्रीतारणतरणं जिनं, जिनवरं शुद्धं स्वरूपं जिनं ।
वन्देऽहं छद्मस्थवाणि सरसा टीका द्वया संयुता ।
श्रीमद्ब्रह्मसुगंधिगन्धरसिकाष्टीकारसास्वादकाः ।
सर्वे सन्तु चिरायु सुकृतिरियं, वन्दे गुरुं तारणम् ।। १ ।।

अर्थ—श्री तारणतरण जिन, जिनवर और शुद्धात्म स्वरूप को वन्दन करता हूँ। छद्मस्थवाणी को वंदन करता हूँ। कैसी है यह वाणी ? रस सहित है। तथा संस्कृत और देश भाषा ऐसी दो सरस टीकाओं से संयुक्त है। अपनी श्री सम्पत्ति से विभूषित जो ब्रह्म स्वरूपी पुण्य—आत्मा उसकी सुगन्ध रस के जो रसिक हैं, वे ही अर्थात् अपने आत्म-स्वरूप के ज्ञाता और अनुभवी ही इस ग्रन्थ का तथा टीकाओं का स्वाद लेंगे या अनुभव करेंगे। वे सब चिरायु हों। यह कृति चिरायु हो। इस शुभकामना के साथ मैं श्री गुरु तारणतरण स्वामी को वन्दना करता हूँ ।। १ ।।

तारणतरणं वन्दे, वन्दे श्री द्वादशांग जिनवाणीं ।
गुणधर गणधर वन्दे, वन्दे छद्मस्थवाणीति ।। २ ।।

अर्थ—तारणतरण को वन्दन करता हूँ। श्री द्वादशाङ्ग जिनवाणी को वन्दन करता हूँ। गुणों को तथा गणों को धारण करने वाले गणधरों को वन्दन करता हूँ और छद्मस्थवाणी को वन्दन करता हूँ ।। २ ।।

मुमुक्षूणां हितार्थाय शुद्धये स्वात्मनस्तथा।
छद्मस्थवाणी ग्रन्थस्य टीकाछद्मस्थ संज्ञकाम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मुमुक्षुओं के हितार्थ तथा अपने आत्मा की विशुद्धि के लिये छद्मस्थवाणी ग्रन्थ की "छद्मस्थ तिलक" नाम की संस्कृत और अपनी देश भाषा हिन्दी में यह टीका लिखता हूँ। और "छद्मस्थ-वाणी काव्य" नामक काव्य की संस्कृत कलश काव्यों में रचना करता हूँ। और हिन्दी भाषा में प्रत्येक सूत्र का "पद्यानुवाद" भी लिख रहा हूँ ॥ ३ ॥

अत्र सूत्रावतार

अथ श्री निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्यवर्यश्री, मण्डलाचार्यपदविभूषितश्री स्वामी तारणतरणदेव श्रीभगवद्ग्रन्थ रचना कर्तुमिच्छन्ति, तदादौ निःश्रेयससिद्ध्यर्थं, ग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं, कृतज्ञता परिपालनार्थं, शुद्धोपयोग परिणति परिप्राप्त्यर्थं, चित्तस्थैर्यार्थं वा प्रारभते मङ्गल-सूत्रम्।

मंगल सूत्र

ऊवं ह्रियं श्रियं अरहन्त सर्वन्यं सिद्ध शुद्धं।
जयो जय जयं, जयं उत्पन्नं जयं ॥ १ ॥

टीका—ॐ ह्रीं श्रीतिस्त्र्यर्णाः शुद्धात्मस्वरूपप्रबोधकाश्च भवन्तु जयवन्ताः शुद्धपरमपरमात्माश्रीसर्वज्ञदेवाः अरहन्तसिद्धाश्चेति भवन्तु जय जयवन्ताः। आत्मन्युत्पन्नशुद्धस्वरूपो जयतु ॥ १ ॥

काव्य

ओंकारो ह्रींकारः श्रींकारः शुद्धसिद्ध जयवन्तः।
जयतु जयतु अरहन्तो जयोत्पन्नो हि जयः स्वयं शुद्धः ॥ ४ ॥

सूत्र-अवतार का अर्थ—अब श्री निर्ग्रन्थ दिगम्बर आचार्यवर मण्डलाचार्यपदविभूषित स्वामी तारणतरण देव भगवद् ग्रन्थ की रचना करना चाहते हैं, अतएव ग्रन्थ प्रारम्भ करने के पूर्व मोक्ष सुख सिद्धि के लिये, ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये, कृतज्ञता पालन करने के लिये,

शुद्धोपयोग परिणति की प्राप्ति के लिये और चित्त की स्थिरता के लिये मङ्गल सूत्र प्रारम्भ करते हैं।

सूत्रार्थ—ॐ ह्रीं श्रीं, अरहन्त सर्वज्ञ, सिद्धशुद्ध, परमात्मा की जय हो, जय हो, जय हो। और जयवन्त स्वरूप शुद्धात्मा से उत्पन्न शुद्ध स्वभाव की जय हो ॥ १ ॥

टीका अर्थ—ॐ ह्रीं श्रीं इस प्रकार ये तीन अर्थ हैं। शुद्धात्मा के स्वरूप हैं। ये जयवंत हों। शुद्ध-परम-परमात्मा श्री सर्वज्ञदेव अरहन्त और सिद्ध भगवान् जय जयवन्त हों। और आत्मा में उत्पन्न शुद्ध स्वरूप का उदय जयवन्त हो ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—ॐ ह्रीं श्रीं, शुद्ध सिद्ध भगवान् जयवन्त हों। अरहंत भगवान् जयवन्त हों, जयवन्त हों। और मेरे आत्मा में उत्पन्न स्वयं शुद्ध स्वरूप के उदय की जय हो ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—श्री गुरु महाराज अपने शुद्ध स्वरूप को पूर्णता की प्रतीति और लक्ष्यपूर्वक यहाँ शुद्धात्मा के प्रतीक ॐ ह्रीं श्रीं तथा अरहन्त एवं सिद्ध भगवान् के प्रति भक्ति और बहुमान सहित शुद्ध व्यवहारनय की दृष्टि से मंगल सूत्र की रचना कर रहे हैं। परन्तु स्वानुभूति के लक्ष्य की उपस्थिति है। अरहन्त सिद्धों की स्थापना अपने अरहन्त सिद्ध शुद्ध स्व-स्वरूप में करके स्वानुभूति का प्रारम्भ कर रहे हैं। उत्पन्न शब्द का प्रयोग करके अपने शुद्ध स्वात्मानुभव को ही लक्ष्य में स्थिर किया है ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

ओंकार जय, ह्रींकार जय, श्रींकार जय, सर्वज्ञ जय।
अरहन्त जिनवर शुद्ध-सिद्ध जिनेन्द्र जय, उत्पन्न जय ॥ १ ॥

जिनश्रेणि का उवय

उव उवन उत्पन्न जिनश्रेणि तारणतरण उवन
कमल ॥ २ ॥

टीका—निज-निर्विकल्पात्मनि शुद्धस्वरूपोदये सति चतुर्गुण-

स्थानादारम्य चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्ता क्रमिक-विकास-भूमिका जिन-श्रेणिः स्वभावे उदयति। तस्यां जिनश्रेण्यां च तारणतरण उवन कमल-जिनशुद्धात्मस्वरूपस्योत्पत्तिर्बभूव ॥ २ ॥

काव्य

उव-उवने-शुद्ध स्वभाव-उदये जिनश्रेणि मार्गः स्वयं।
उत्पन्नो भवति स्वशुद्ध-उवने उवनो मया दृश्यते ॥
श्रीतारणतरणं स्वतार कमलं कमलं स्वरूपात्मनम्।
वन्देऽहं जिनश्रेणि प्राप्त-उवनं-उवनं-जिनं शाश्वतम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा के शुद्ध स्वभाव के उदय में जिनश्रेणि उत्पन्न होती है। तथा जिनश्रेणि के उदय में तारणतरण उवन कमल अथवा तारणतरण का शुद्धात्म स्वरूप उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥

टीका अर्थ—निज निर्विकल्प आत्मा में शुद्ध स्वरूप के उदय होने पर चतुर्थगुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त क्रमिक विकास भूमिका स्वरूप जिनश्रेणि का उदय होता है। और उस जिनश्रेणि में तारणतरण उवन कमल जिन उत्पन्न हुये ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—उव उवन—आत्मा का शुद्ध स्वरूप जब उदय होता है तब उसमें जिनश्रेणि मार्ग स्वयं उत्पन्न होता है। और उस जिनश्रेणि के स्वशुद्ध स्वभाव में ही तारणतरण उवन कमल जिन की उत्पत्ति हुई है। मैं उस जिनश्रेणि को प्राप्त श्री तारणतरण स्वरूप तारकमल को या कमल स्वरूप आत्मा के शाश्वत उवन पद को नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में जिनश्रेणि का स्वरूप और तारणतरण का जिनश्रेणि में उदय इसका वर्णन है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही यह प्रामाणिकता प्रस्तुत है। अर्थात्—आत्म स्वरूप के भान सहित प्रतीति में ही जिनश्रेणि उत्पन्न होती है। यह जिनश्रेणि का क्रम सम्यक् परिणामों के अनुसार चौथे से चौदहवें पर्यन्त ग्यारह गुणस्थानों में है। परिणामों की विशुद्धि उत्तरोत्तर जिस क्रम से वृद्धिगत होती जाती है उसी क्रम से गुण-

स्थान भी बढ़ते जाते हैं। यहाँ श्री गुरु महाराज ने अपनी अनुभूति में जिनश्रेणि का अनुभव किया। अपने आपको जिनश्रेणि में वर्तमान पाया तब इस सूत्र में दृढ़तापूर्वक अपनी उपस्थिति जिनश्रेणि में बताई। स्वयं जिनश्रेणि में बैठ कर उसका वर्णन करना यही तो प्रामाणिकता की परम कसौटी है। और यही जिनश्रेणि का सत्य सुन्दर स्वरूप है ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

शुद्धात्मा के उदय में जिनश्रेणि तारणतरण पद।
उत्पन्न होता नियम से वह उदय कमलस्वरूप वद् ॥ २ ॥

स्वानुभव

उत्पन्न कलन स्व कलियं ॥ ३ ॥

टीका—स्वशुद्ध चिद्रूपे तन्मयतां प्राप्नोति यदाजीवः सैव सत्य स्वानुभूतिरिति निगदिता जिनेन्द्रैः पूर्वाचार्यैश्च जिनागमे ॥ ३ ॥

काव्य

स्वभावे कलनं स्वस्य गुणानां चिन्तनं स्वयं।
एकाग्रवृत्ति सम्पन्ने कलनं शुद्ध चिन्मये ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—आत्म स्वभाव में एकाग्रता पूर्वक स्थिर होना ही स्वानुभव, कलन या ध्यान है ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—अपने शुद्ध चिद्रूप में तल्लीनता प्राप्त होने पर ही जीव को स्वानुभूति का लाभ होता है। वही स्वानुभव है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव और पूर्वाचार्यों ने जिनागम में प्रतिपादन किया है ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—अपने स्वरूप का अपने आप में चिन्तन करना कलन है। स्वरूप में एकाग्र होना ही ध्यान और स्वानुभूति है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—स्वाध्याय और सत्संग आदि से अपने निज स्वरूप का ज्ञान और भेदज्ञान प्राप्त करके फिर अपने शुद्ध चिद्रूप की प्रतीति, प्रीति और रुचि होने पर बार-बार जो अपने स्वरूप के विषय में स्मरण आता

है वही तो स्वानुभव है। जैसे—मेरा यह स्वरूप, मेरे ये गुण, मैं सबसे भिन्न, मैं परद्रव्य में नहीं हूँ, परद्रव्य मेरे में नहीं है, मेरा स्वरूप ही मेरा है। मैं जब निराकार हूँ तो फिर साकार शरीरादि से मेरा क्या सम्बन्ध है ? मेरा ज्ञान, मेरा दर्शन, मेरी सुख-शान्ति, मेरे समस्त अनन्त गुण एक साथ अभिन्न एक क्षेत्रावगाह रूप से मेरे ही स्वरूप में हैं। मेरा निज आत्मा का वैभव मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगा। मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं रागरहित हूँ, मेरा एक-एक गुण स्वतन्त्र है, मेरी समस्त पर्यायें स्वतन्त्र हैं, मेरा सब कुछ मेरे में है। मेरा पर में पर का मेरे में कुछ भी नहीं है। मेरा उपयोग लक्षणमय असाधारण स्वरूप मेरे में प्रत्यक्ष है। यही मेरा अनादि निधन स्वभाव है। मेरे ज्ञान गुण में निर्मलता आवे तभी वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो। वस्तु स्वरूप का यथार्थ परिचय होने पर वीतरागभाव जागृत होता है, वही तो मेरा अपना निज का भाव है। परभाव, परसंयोग जनित मेरे भाव भी मेरे नहीं हैं। मैं इनका नहीं। परभाव विकारी भाव हैं। पुण्य और पाप ये दोनों ही विकारी भाव के ही भेद हैं। ऐसा विचार करते-करते अपने आप में एकाग्र होना ही ध्यान है, कलन है या अनुभव है ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

निज गुण कला से हो कलित अनुभूति जिनके पास है।
उत्पन्न होता है कलन निज ध्यान निलय निवास है ॥ ३ ॥

निर्विकल्प समाधि

उत्पन्न कमल स्वभाव अर्क विन्द उत्पन्न ॥ ४ ॥

टीका—आत्मा यदात्मनि कमल स्वभावं प्रकाशयति स्वभावे, परभावभिन्नत्वं वानुभवति, आत्म स्वभावः कमल पुष्पवद्विकासं यदा प्राप्नोति तदैव निज निर्विकल्पनित्यार्क विन्दध्यान रविः स्व-स्वभावे उदयति। निज निराकार निर्विकार ज्ञानाद्यनन्त गुणगणविभूषिते-स्वरूपामृतरसेऽयं रमणतां निमग्नतां च प्राप्नोत्यात्मा ॥ ४ ॥

काव्य

स्वकमल स्वभावस्य पृथक्त्वं परद्रव्यतः ।
स्वानुभूतेः प्रकाशेन चोत्पन्ना विन्दु भावना ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा में आत्म-स्वभाव रूप कमल के उत्पन्न होने पर निज निर्विकल्प समाधि का प्रकाश देने वाला आत्मध्यानरूपी सूर्य उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—आत्मा जब आत्मा में कमल स्वभाव को प्रकाशित करता है, अपने भाव में परभाव भिन्नत्व को अनुभव करता है, अथवा आत्मस्वभाव कमल पुष्पवत् विकास को जब प्राप्त होता है, उस समय निज निर्विकल्प-अर्कविन्द ध्यान-सूर्य अपने स्वभाव में उदय होता है। उस समय अनन्त-ज्ञानादिगुणगणविभूषित यह चैतन्य स्वरूप अपने स्वरूपामृत के रस में रमण करता है, निमग्न होता है ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—अपने कमल स्वभाव का, पर द्रव्यों के पृथक्त्व का, अपनी अनुभूति में जब प्रकाश है, तब उसी प्रकाश के द्वारा निर्विकल्प-अर्क-विन्दु-भाव उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में श्रीगुरु महाराज ने अपने स्वभाव को कमल बनाया है, तब तो परभाव से भिन्नपना प्रगट हो रहा है। कमल प्रफुल्लित भी होता है, अतएव अपना भाव भी अपने आप में खिल रहा है। परन्तु कमल तो तब ही खिलता है जब कि सूर्य का उदय हो। यहाँ पर अर्क नाम सूर्य का है, विन्दु नाम शुद्धात्म स्वभाव का है। कमल स्वभाव अपनी जगह पर हो, और चैतन्य सूर्य का उदय हो फिर कमल न खिले ऐसा होता नहीं। अतएव इस सूत्र के इस अमृतमय भाव में श्री गुरुदेव पहले स्वयं उतर चुके, तत्पश्चात् यह समय का प्रसाद शिष्यों को वितरण किया। अब शिष्य परम्परा का कर्तव्य है कि "गुरु परसाद तत्क्षण लेवे" ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

निज अर्क विन्दु स्वरूप की उत्पत्ति होती है जहाँ ॥
खिलता कमलसा भाव निजकी ज्योति जागृत है वहाँ ॥ ४ ॥

छत्तीस अर्क

अर्क छत्तीस सरण कमल उत्पन्न कमल ॥ ५ ॥

टीका—विन्दवदनकण्ठहृदयनाभिगुप्तभेदैः षट्कमलांकित स्वदेहे शुद्धोपयोगस्वभावाश्रयेण षट्त्रिंशदर्काणां स्वयमुत्पत्तिर्भवति। निम्नाङ्कितार्काणां नामावली—१. विन्दश्री २. समयश्री ३. नन्दश्री ४. हियारश्री ५. जिनश्री ६. ज्ञानश्री ७. लक्षणश्री ८. लीनश्री ९. भद्रश्री १०. मय उवनश्री ११. सहजश्री १२. प्रमाणश्री १३. कम्मश्री १४. चरणश्री १५. करणश्री १६. सुवनश्री १७. हंसश्री १८. अवयासश्री १९. दिप्तिश्री २०. सुदिप्तिश्री २१. अभयश्री २२. स्वर्कश्री २३. अर्थश्री २४. व्यक्तश्री २५. हिययारश्री २६. अलखश्री २७. अगमश्री २८. सहियारश्री २९. रंजश्री ३०. सुई रमणश्री, ३१. सुई उवनश्री, ३२. खिपनश्री ३३. ममलश्री ३४, नन्दानन्दश्री ३५. सहजानन्दश्री ३६. कमलश्री ॥ ५ ॥

काव्य

षट् कमलाश्रितो भावः षट्त्रिंशदर्क कारणम् ।
गुप्तनाभिहृच्चकंठ मुखविन्दु कमलं षट् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—षट्कमलाश्रित अर्क छत्तीस हैं। और षट्कमल आत्म कमल स्वभाव के आश्रित हैं ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—१. विन्द कमल २. मुख कमल ३. कंठ कमल ४. हृदय कमल ५. नाभि कमल ६. गुप्त कमल के भेद से कमल छह हैं। इन सहित इस देह में विद्यमान आत्मा के शुद्धोपयोगस्वभाव के आश्रय से छत्तीस अर्कों की उत्पत्ति होती है। छत्तीस अर्कों के नाम इस प्रकार हैं—

१. **विन्दश्री**—निर्विकल्प समाधि से शोभायमान आत्मा का भान विन्दश्री अर्क है।

२. **समयश्री**—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादि से शोभायमान स्वसमय की विकल्प रहित स्वानुभूति समयश्री अर्क है।

३. **नन्दश्री**—स्वयं नन्द स्वरूप आत्मा की अभेद अनुभूति का प्रकाशमय आनन्द नन्दश्री अर्क है।

४. **हियारश्री**—आत्मानुभूति से प्रकाशित हृदय कमल।

५. **जिनश्री**—जिनपद से सुशोभित आत्मा जिनश्री अर्क।

६. **ज्ञानश्री**—ज्ञानलक्ष्मी से शोभायमान स्वरूप आत्मा का ज्ञानश्री अर्क है।

७. **लक्षणश्री**—अपने साधारण और असाधारण लक्षण की अनुभूतियों से शोभायमान आत्मा का लक्षणश्री अर्क है।

८. **लीनश्री**—अपने भावों को परद्रव्यों से हटा कर अपने आपमें स्थिर करने की सामर्थ्य सहित लीनश्री अर्क है।

९. **भद्रश्री**—भद्रता, भव्यता, मोक्षप्राप्ति की योग्यता से युक्त स्वानुभूति का प्रकाश भद्रश्री अर्क है।

१०. **मयउवनश्री**—अपने उदय के प्रकाश से शोभायमान अनुभूति संयुक्त निर्विकल्प समाधि मयउवनश्री अर्क है।

११. **सहजश्री**—अपने परिपूर्ण सहज स्वभाव की स्वानुभूति मे सुशोभित सहजश्री अर्क है।

१२. **प्रमाणश्री**—अपने परिपूर्ण सत्य ध्रुव प्रमाण स्वरूप को ग्रहण करने की सामर्थ्ययुक्त ज्ञान से शोभित प्रमाणश्री अर्क है।

१३. **कम्मश्री**—समस्त नय और प्रमाणों का एक ही लक्ष्य है, कर्मों का नाश। इस लक्ष्य में सावधान कार्यदक्ष कम्मश्री अर्क है।

१४. **चरणश्री**—स्वरूपाचरण के प्रकाश से आत्मा को प्रकाशित करने वाला चरणश्री अर्क अपनी श्री संयुक्त है।

१५. **करणश्री**—आत्मा के परम पुरुषार्थ को सूचित करने वाला, करण कारक स्वरूप, करणावती शक्ति का उपादान कारण, षट्कारकों को अपने स्वरूप से संयुक्त करने वाला करणश्री है।

१६. **सुवनश्री**—आत्मस्वरूप को उत्पन्न करने वाला आत्मा ही है। इसका जनक अन्य कोई नहीं है। अतएव अपना सुवन स्वयं आप है ऐसा शाश्वत अनुभव का कारण सुवनश्री है।

१७. **हंसश्री**—परद्रव्यों से अपने स्वरूप को भिन्न करने वाला स्वानुभव सम्पन्न हंसश्री अर्क है।

१८. **अवयासश्री**—एक स्वरूप में अनन्त गुणों को अवकाशदान का दाता अवयासश्री अर्क है।

१९. **दिप्तिश्री**—अपने ज्ञायक भाव को त्रिकाल प्रकाशित करनेवाला दिप्तिश्री अर्क है।

२०. **सुदिप्तिश्री**—अपने देदीप्यमान स्वरूप की शोभा में मग्न और अभेद अनुभूति का प्रकाशक सुदिप्तिश्री अर्क है।

२१. **अभयश्री**—परिपूर्ण सुरक्षित स्वरूप का अनुभव करानेवाला अभय-श्री अर्क है।

२२. **स्वर्कश्री**—अपने प्रकाश को अपने में अपने द्वारा प्रकाशित करने वाला स्वर्कश्री अर्क है।

२३. **अर्थश्री**—अपनी निधि, अपने अर्थ को अपने में प्राप्त कराने वाला अर्थश्री अर्क है।

२४. **विक्तश्री**—अपने शुद्ध स्वभाव को व्यक्त करने वाला।

२५. **हियरश्री**—अज्ञान के अन्धेरे से बचाने वाला, प्रकाश के हितकारी मार्ग को प्रशस्त करनेवाला अर्क।

२६. **अलखश्री**—चर्मचक्षु से अगोचर स्वरूप को ज्ञानदृष्टि से लखानेवाला अलखश्री अर्क है।

२७. **अगमश्री**—जड़ और परपदार्थों की गम्य से परे, केवल आपको आप ही पावे यह सामर्थ्य से युक्त अर्क।

२८. **सहियारश्री**—सहृदयता, अपने रस का रसिक अपना सहारा आपको देनेवाला सहियारश्री अर्क है।

२९. **रंजश्री**—अतीन्द्रिय स्वभाव में रंजायमान करनेवाला अपने ज्ञायक भाव को अपने आप में रिझाने वाला।

३०. **सुईरमणश्री**—रमणीय स्वपद में रमण कराने वाला।

३१. **सुई उवनश्री**—अपना उदय कराने वाला, परपदार्थों के अज्ञाना-न्धकार से निकालने वाला सुईउवनश्री।

३२. **खिपनश्री**—अपने क्षपणक स्वभाव की सामर्थ्य को प्रगट करने वाला खिपनश्री अर्क है।

३३. **ममलश्री**—अपने ममल स्वभाव का दर्शन जिस प्रकाश में हो वह ममलश्री अर्क है।

३४. **नन्दानन्दश्री**—अपने नन्द के आनन्द की श्री को प्रकाशित करने वाला नन्दानन्दश्री अर्क है।

३५. **सहजानन्दश्री**—सहज स्वभाव में ही सहजानन्द है उसकी सहज अनुभूति को प्रकाशित करने वाला यह सहजानन्दश्री अर्क है।

३६. **कमलश्री**—शुद्धात्म कमल की शोभा को देनेवाला कमलावती शक्ति को प्रगट करने वाला कमलश्री अर्क है ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा का षट् कमलाश्रित भाव ही छत्तीस अर्कों को उत्पन्न करने वाला है। १. गुप्त कमल, २. नाभिकमल, ३. हृदय कमल, ४. कंठ कमल, ५. मुख कमल, ६. ब्रह्म कमल ये छह कमल हैं जो ३६ अर्क सूर्यों के उदय में कारण हैं। और उनके उदय से स्वयं प्रफुल्लित होनेवाले हैं ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—स्वामी तारणतरण देव अपने आत्म स्वभाव की स्थिरता के लिये योगशास्त्रों के ज्ञान से भी सम्पन्न थे, अतएव उनमें बताये सदुपायों को भी अपने व्यवहार में लाते थे, इसी से वे योगी थे, जिनमार्ग के महा-योगी थे। पिण्डस्थ ध्यान की धारणाओं के समान ही छत्तीस अर्क और षट्कमलों का विषय है।

योगमार्ग के प्रेमीजनों के लिये आत्मा को समझने का कितना सुन्दर मार्ग है। इस मार्ग से आत्मचिन्तन करने वालों को मिथ्या योगियों के योग का जाल भी नहीं फँसा सकता। जिन शासन का योग मार्ग और आगम की परम्परा के निकट बैठकर अपने अनुभव और साधना का स्वतंत्र विकास करने की सूचना इस ग्रन्थ से मिलती है ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

इस देह में षट् कमल हैं छत्तीस अर्कों से भरे।
निजध्यान चिन्तन से शरण में आपकी तू आ! अरे! ॥ ५ ॥

षट्-कमल

छत्तीस अर्कों का विवेचन समाप्त

समवशरण

अर्क ध्रुव समवशरण उत्पन्न ॥ ६ ॥

टीका—स्वभावे योऽर्कध्रुवं ध्रौव्यदृष्टि-द्रव्यदृष्टि या प्रकाशयति निश्चयभावेन, चिच्चैतन्य चमत्कारं प्राप्नोति, गाढ़ातिगाढ़ परमावगाढ़-भावेन सम्यक्त्वस्वभावेनानन्तगुण-प्रकटन-प्रायोग्य-भावानालिंगनं करोति तदैव सः तीर्थंकरनामकर्मप्रकृत्युदयजनित समवशरणादि महामहिम पुण्यसामग्रीमुत्पन्नी करोति। अरहन्तपदप्राप्तिकारणमर्क-ध्रुवमाश्रयति। स एव प्राप्नोत्युक्त सामग्रीमिति ॥ ६ ॥

काव्य

अर्क ध्रुवस्वभावो हि केवलज्ञानकारणम्।
ज्ञानेनोत्पद्यते लोके समवशरणा सभा ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—निजस्वभाव में छत्तीस अर्कों के ध्रुव होने से समवशरण उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—अपने स्वभाव में जो अर्क ध्रुव, ध्रौव्यदृष्टि, या द्रव्य-दृष्टि को निश्चयभाव से प्रकाशित करता है। चिद्रूप चैतन्य के चमत्कार को जो प्राप्त कर लेता है। अथवा गाढ़, अतिगाढ़, परमावगाढ़ भाव से जो सम्यक्त्व स्वभाव के द्वारा अनन्त गुणों को प्रगट करने योग्य भावों को आलिंगन करता है, अपनाता है, या धारण करता है, वही उस समय तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति के उदय से प्राप्त बाह्य समवशरणादि महा-महिमा को अथवा सातिशय पुण्य सामग्री को प्रगट करता है। अरहन्त पद

प्राप्ति में कारण अर्क ध्रुव स्वभाव को आश्रय करने वाला ही उक्त सामग्री को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—अर्कध्रुव स्वभाव निश्चय से केवलज्ञान को प्राप्त कराने में कारण है। तथा केवलज्ञान से इस लोक में समवशरण सभादि वैभव प्रगट होता है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—ध्रुव स्वभाव ही आत्मा का सत्स्वरूप है। उत्पाद और व्यय ये दोनों पर्याय हैं। पर्याय तो द्रव्य की हैं, किन्तु वे अपने आपमें पूर्ण स्वतन्त्र हैं। द्रव्य-ध्रुव अपने आपमें स्वतन्त्र है। ध्रुवदृष्टि को अर्क की उपमा दी है। अर्क सूर्य का नाम है, प्रकाश को भी कहते हैं। ध्रुव सूर्य का प्रकाश पूर्णरूप से जब अनन्त चतुष्टय के स्वरूप में उसी द्रव्य की पर्याय में प्रगट होता है तब निश्चय में अपने स्वभाव में तथा व्यवहार में बाहर समवशरण उत्पन्न होता है। भीतर के निज स्वभाव में अपना कार्य होता है। बाहर समवशरण भव्य जीवों का निमित्त बनकर उनका कल्याण करता है। ऐसा ध्रुवद्रव्य है। ध्रुव अवस्था त्रिकाल है। पर्याय तो क्षण-वर्ती है। सम्यग्दृष्टि जीव का सम्यक्त्व ध्रुव के आश्रय से ही अपना कार्य करता है। यही द्रव्यदृष्टि है। ध्रुवदृष्टि है। यही यथार्थ है। इस दृष्टिवाले को ही सम्यग्दृष्टि कहते हैं, इस ध्रुवदृष्टि के उत्पन्न होते ही अपना समव-शरण पहले अपने भीतर लग जाता है। अपना वैभव अपनी दृष्टि में आ जाता है। अपनी अर्न्तध्वनि को आप ही सुनता है, आप ही झेलता है। यही निश्चयदृष्टि के समवशरण की ओर श्री गुरु महाराज का मुख्य संकेत है ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

ध्रुव-अर्क का निजमें लगाले समवशरण सुहावना ।
तू है स्वयं भगवान् तेरी सुन स्वयं तू भावना ॥ ६ ॥

आत्म-ज्योति

उवन दिप्ति दृष्टि प्रवेशी ॥ ७ ॥

टीका—**उवनात्मनः देदीप्यमानज्योतिः स्वरूपे, एकमात्रस्वदृष्टिः**

सम्यग्दृष्टिः सुदृष्टि एव प्रवेशं प्राप्नोति। अथवा–दिप्ति-दृष्टि उवन-प्रवेशी, दिव्यसम्यक्त्वयुक्तादृष्टिः उवने शुद्धात्मस्वभावोदये प्रवेशीति प्रविष्ठा ॥ ७ ॥

काव्य

आत्मनो दिव्यदृष्टि च प्राप्नोत्यात्मा स्वयं स्वयि ।
उवना दिप्तिश्च दृष्टिः ज्ञानश्री संज्ञका शुभा ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—अपने-उवन (आत्मा) की दैदीप्यमान दिव्यज्योति के स्वरूप में अपनी सम्यक्स्वरूपा दृष्टि ही प्रवेश को प्राप्त करती है ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—उदय होते हुये आत्मा के दिव्य ज्योतिस्वरूप को देखने में समर्थ एकमात्र अपनी सम्यग्दृष्टि ही है। और वही दृष्टि उस स्वरूप में प्रवेश पाती है ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा की दिव्यदृष्टि को स्वयं अपने आपमें यह आत्मा ही प्राप्त करने में समर्थ है। उदय होती हुई उवना, दिप्ति-ज्योति, दृष्टि ये सब आत्मा की ज्ञानश्री संज्ञक महामहिमा के ही नाम हैं ॥ १० ॥

विशेषार्थ—दिप्तदृष्टि उवन में प्रवेशी, पहुँची। उवन अपना उदय होता हुआ स्वरूप है। सूर्य जब उदय होता है तब वह अन्धकार को तो पहले ही क्षण में नष्ट करता है। ठीक इसी प्रकार जब आत्मा का उदय होता है तब अनादि से अभी तक का मिथ्यात्व और अज्ञान का अन्धकार प्रथम क्षण में ही विलय हो जाता है। और उस उवन को उसके उदय को जिस दृष्टि से आत्मा देखता है वह दिप्त दृष्टि है। दिप्त नाम पूर्ण दैदीप्यमान चमकती हुई, जरा सा भी विकार जिसमें न हो वह दिप्त दृष्टि है। वही दृष्टि आत्मा में उदय होते उवन स्वरूप में पहुँच चुकी, प्रवेशी, प्रवेश पा चुकी, ऐसा निर्णय इस सूत्र में गुरुदेव दे रहे हैं ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

तेरा उवन तुझमें विराजे जगमगाती ज्योति से ।
तू कर प्रवेश वहाँ तुझे वह मिलेगा निज स्रोत से ॥ ७ ॥

अन्तर्ध्वनि के प्रिय शब्द

स्वयं शब्द उत्पन्न प्रियो ॥ ८ ॥

टीका—शुद्धस्वभावे स्वात्मनि वा प्रिय शब्दो वाणी वा स्वयमुत्पन्नः। बाह्यरूपेण समवशरणसभायां निरिच्छभाषा दिव्यध्वनिः स्वयमुत्पन्नो भवति, उभयेऽपि स्वयं शब्दस्य विशेषता। प्रिय शब्दस्यापि विशेषता ज्ञातव्या भवति ॥ ८ ॥

काव्य

स्व वर्गणा दिव्यभाषा प्रियोत्पन्न शब्दाः स्वतः।
शुद्धात्मनः स्वरूपं च शृणोति स्वयमेव हि ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ—दिव्यदृष्टि के उत्पन्न होनेपर बिना इच्छा के स्वयं, प्रिय शब्द उत्पन्न होते हैं।

टीका अर्थ—शुद्ध स्वभाव में अथवा अपने आत्मा में प्रिय शब्द या वाणी स्वयं उत्पन्न होती है। बाह्य रूप से समवशरण सभा में बिना इच्छा के निरक्षर भाषा-दिव्यध्वनि स्वयं उत्पन्न होती है। अन्तर्बाह्य दोनों में उत्पन्न होने वाले प्रिय शब्दों के उत्पन्न होने में स्वयं शब्द और प्रिय शब्द की बिशेषता जानने योग्य है ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—अपनी भाषा वर्गणा से उत्पन्न अपनी दिव्य भाषा के प्रिय शब्दों को अथवा उनके द्वारा आत्मा की अन्तर्ध्वनि को स्वयं सुनता है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—छठवें सूत्र में जो समवशरण अपने शुद्ध स्वरूप में लगाया था, अब उसमें दिव्यध्वनि भी खिरना चाहिये, सो इस सूत्र में "स्वयं-शब्द" पद से बिना इच्छा के तथा "उत्पन्न प्रियो" इस पद से अपने भीतर अन्तर्ध्वनि के रूप में उत्पन्न शब्द प्रिय आत्मा सुनता है इस विशेषता को प्रगट की है।

अपने स्वरूप में समवशरण का विचार करना यह धर्मध्यान के अन्तर्गत रूपस्थ ध्यान का विषय है। इस ध्यान में अरहन्त के शुद्ध स्वरूप को

अपने निज स्वरूप में तथा उनके समवशरण को ज्यों का त्यों पूरा अन्तरंग में लाया जाता है। बारह कोठा, मानस्तम्भ, धूलिशालादि वन, साढ़े बारह करोड़ बाजे, दुन्दुभी, सौ इन्द्र आदि की समस्त रचना अपने भीतर करके अपने शुद्ध स्वरूप में अरहंत देव का स्वरूप देखना, उसमें स्थिर होना, यही रूपस्थ ध्यान है। इसी प्रकार इस पूरे ग्रन्थ में जहाँ-जहाँ समवशरण का वर्णन पूर्ण रूप में अथवा संकेत रूप में आवे उसे रूपस्थ ध्यान समझना चाहिये और साथ में यह भी नहीं भूलना चाहिये कि श्री गुरुदेव इस वर्णन के समय या आगे-पीछे निश्चित रूप से रूपस्थ ध्यान में तल्लीन होंगे।

इन सूत्रों में जैसे रूपस्थ ध्यान का विषय चल रहा है, इसी प्रकार आगे पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यान तथा इनकी धारणायें भी वर्णित हैं। जैसे पिण्डस्थ ध्यान की—१. पार्थिवी, २. आग्नेयी, ३. वायु, ४. वारुणी, ५. और तत्र रूपवती धारणा। इनका सजीव चित्रण अनेक सूत्रों में स्पष्ट रूप से और अनेक सूत्रों में संकेत रूप से मिलेगा। वैसे तो यह पूरा ग्रन्थ ही ध्यानमय अवस्था का पूर्ण चित्र है।

इस प्रकार इस आठवें सूत्र में स्वयं शब्द वाणी का अपने आत्मा में उत्पन्न होना और उसे अपने आप ही सुनना यह निश्चयनय की एकाग्र अवस्था का वर्णन किया है। इस ध्यान को सम्यग्दृष्टि, श्रावक और मुनि सभी अपनी-अपनी भूमिका में योग्यता और शक्ति अनुसार करते हैं॥ ८॥

पद्यानुवाद

अन्तर्ध्वनी के शब्दप्रिय उत्पन्न होंगे आपमें।
छद्मस्थवाणी दिव्यवाणी को सुनेंगे आपमें॥ ८॥

जीव की योग्यता

सुवन सहाव उत्पन्न हियहुव औकास॥ ९॥

टीका—सुवन स्वभावः श्रावकभावः सम्यग्दृष्टि स्वभावो वा येषां हृदि भवत्युत्पन्नस्तेषामवकाशदानशक्तिर्ज्ञानादिगुणधारणविकास

योग्यता वा हृदि भवत्यवश्यमेवाविनाभावस्वभावकारणात्सम्यग्दर्शन-ज्ञानयोरविनाभाविनो वा सम्बन्धकारणात् ॥ ९ ॥

काव्य

सुवन स्वभावोत्पन्नो हेतुः सम्यक्त्व साधने ।
अवकाशो विकाशः स्यादात्मविद्या विवृद्धये ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—सुवन-सम्यक्त्व-स्वभाव के उत्पन्न होने पर हृदय में अवकाश दान स्वभाव प्रगट हुआ ।

टीका अर्थ—सुवन स्वभाव, श्रावक भाव, अथवा सम्यग्दृष्टि स्वभाव जिनके हृदय में उत्पन्न होता है, उनके ही हृदय में ज्ञानादि गुणों को धारण करने की योग्यता का विकास होता है। क्योंकि जहाँ सम्यक्त्व भाव होता है वहाँ सम्यग्ज्ञान अवश्य ही होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का अविनाभावी सम्बन्ध होता है ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—सम्यक्त्व की साधना में कारण स्वरूप सुवन स्वभाव जिनके प्रगट हो गया है उन भव्य जीवों का ही अवकाश और विकाश होता है। उनका आत्मज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—सुवन-स्वभाव के उत्पन्न होने पर हृदय में अवकाश दान शक्ति होती है, जो अपने समस्त गुणों को अपने भीतर स्थान देती है। सुवन शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—श्रोता, पुत्र, शिष्य, श्रावक आदि। परन्तु यहाँ पर प्रकरण आठवें सूत्र से सम्बन्धित है, अन्तर्ध्वनि को भी श्रवण स्वभाव चाहिये, अतएव सुवन स्वभाव से हिय औकास हुव—हृदय में अवकाश होता है।

जो अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि को सुनता है, उसी का विचार करता है, वही आत्मा को निर्मल निर्विकार बनाता है। फिर तो विकास की ओर जाता हुआ वह आत्मा अपने समस्त गुणों को धारण करने की सामर्थ्य को प्राप्त करता है, जिसके लिये गुरु महाराज ने "अवकाश" शब्द का प्रयोग किया है। जैसे—जीवादि द्रव्यों को अवकाश दान देने में

आकाश द्रव्य ही समर्थ है। उसी प्रकार आत्मा के अनन्त गुणों को अवकाश दान देने की सामर्थ्य आत्मा में ही है, परन्तु यह सामर्थ्य कब आवेगी ? जब अपनी सुनेगा। सबकी तो सब सुनते हैं, अपनी कौन सुनता है ? ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

देगा हृदय अवकाश अपने सुवन शुद्ध स्वभावको।
आप जब तत्पर रहेंगे देखने निजभाव को ॥ ९ ॥

आत्मरमणता से ही मुक्ति

सह समय मुक्ति रमण गमन सिद्ध सिद्धं ॥ १० ॥

टीका—अस्ति स्वसमयानुभूतिर्मुक्तिरमणं, स्वसमये गमनमस्ति मुक्तिगमनं, स्वसमयसिद्धिरेवास्ति सिद्धावस्था, साक्षाद्भाव-मुक्तिः ॥ १० ॥

काव्य

ये रमन्ते स्व समये ते मुक्ति रमणी प्रियः।
निजार्थे गमनं तेषां सिद्धसिद्धं च यान्ति ते ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—स्वसमय के साथ रहना, स्वसमय सहित होना मुक्तिरमण स्वभाव है। अपने स्वरूप में गमन करना मुक्तिगमन है। सिद्धि है। सिद्धावस्था है ॥ १० ॥

टीका अर्थ—स्वसमय की अनुभूति मुक्तिरमण है। स्वसमय की ओर जाना मुक्तिगमन है। स्वसमय की सिद्धि ही सिद्धावस्था है। साक्षात् भावमोक्ष है ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—जो अपने समय में रमण करते हैं वे ही मुक्तिरमणी के प्रिय हैं। अपने अर्थ में गमन करना ही उनका मुक्तिगमन है। और अपने समय की सिद्धि के साथ ही वे सिद्धावस्था को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—निश्चयनय से मुक्ति की प्राप्ति उसी दिन समझी जाती है, जिस दिन आत्मा अपनी दृष्टि को बदल कर अपनी ओर कर लेवे। यह

भावमुक्ति है। जो भावों में मुक्त है वह द्रव्यमुक्ति के लिये नहीं झूरता, वह जानता है कि वह मुक्ति तो होगी ही "सह समय मुक्तिरमण" समय का साथ मुक्ति का रमण है। और "सह समय गमन सिद्ध सिद्ध" समय शुद्धात्म स्वभाव में गमन सिद्धस्वभाव है। यही सिद्धावस्था है। सिद्ध-स्वभाव तो सम्यग्दृष्टि के अनुभव में है। परन्तु किसी अपेक्षा सिद्धावस्था भी है। अतएव आत्मा का साथ—स्वसमय स्वरूप में निवास, मुक्ति का रमण है। स्वसमय में रहने वाले की प्रेरणा इस सूत्र के द्वारा है कि अपने समय में रहो ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

होगा समय के साथ मुक्ति विलास रमण स्वरूप में।
इसमार्ग से ही सिद्धि होगी, सिद्धि है निज रूप में ॥ १० ॥

अपना वीर्य

सवीर्य उत्पन्न अन्मोद वीर्यं ॥ ११ ॥

टीका—अनन्तवीर्य गुणानुमोदनाभावेन, स्ववीर्यानुभूतिभावनया स्वानन्तवीर्यगुणप्राप्ति मार्गं प्राप्नोति भव्यः निकटतमगुणपारिणामिक भव्यस्य भावस्योपलब्धि समापन्नत्वादिति भावः ॥ ११ ॥

काव्य

स्ववीर्यं स्वानुभूतिः स्यादनन्तबलवीर्यदा।
आत्मस्वभावे सद्भावः स्वगुणानामनन्तता ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा के अनन्तवीर्य गुण का अनुमोदन और स्वानुभव ही अपने अनन्तवीर्य स्वभाव को प्रगट करता है ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—अनन्तवीर्य गुण की अनुमोदना के भाव से अपने वीर्य की अनुभूति-प्रतीति की भावना से, अपने अनन्तवीर्य स्वभाव प्राप्ति का मार्ग निकट भव्य को प्राप्त होता है, निकट भव्यता के आने से ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—अपने स्वभाव में अनन्तवीर्य गुण का सद्भाव है। अपने अनन्त गुणों की अनन्तता की प्रतीति के साथ अनन्तवीर्य स्वभाव

की अनुमोदना और अनुभूति अनन्त बल-वीर्य स्वभाव को प्रदान करने वाली है ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—आत्मा के ज्ञायक भाव में अपने अनन्तवीर्य का अनुभव प्रत्यक्ष रूप में होता है। यद्यपि वीर्य गुण अथवा आत्मा के अन्य समस्त गुण अपना या पर का कुछ जानते नहीं हैं, किन्तु ज्ञानगुण से अभिन्न हैं, अतः ज्ञायक भाव अपने वीर्य का अनुभव आप करता है। और यह अनुभव "अन्मोद वीर्य स्ववीर्य उत्पन्न" अपने वीर्य को उत्पन्न करने में कारण है। अतएव यदि स्ववीर्य को उत्पन्न—प्रगट करना है तो अन्मोद वीर्य—अनन्तवीर्य की अनुमोदना—अनुभव करो यही श्रीगुरुदेव की स्वानुभूति का रहस्य है ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

आत्मा में वीर्य गुण का अन्त होता ही नहीं।
कर स्वानुभव तू देख ले वह प्राप्त होगा या नहीं ॥ ११ ॥

स्वसमय का दृष्टा

समयदृष्ट दिप्त शब्द आकिर्ण ॥ १२ ॥

टीका—दृष्टितं स्वसमयं येन भव्येन स्वान्तरात्मनि तेन दिप्त-शब्देति दिव्यवाणीं तीर्थंकरदेवानां दिव्यध्वनिसन्देशं वा स्वान्तर्ध्वनि-शब्दं च श्रुतं, भावकर्णेन्द्रियद्वारेणेति भावः ॥ १२ ॥

काव्य

आकर्ण्य शब्दंध्वनिमन्तरात्मनः,
दिव्यं स्वसमयं पश्यन्ति भव्याः।
समश्च समयश्च समयध्रुवे हि,
लयत्रये दर्शांति शुद्धभावे ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—स्वसमय का दृष्टा ही दिव्यवाणी के शब्दों को श्रवण करता है ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—जिन भव्यों ने अपना समय अपने अन्तरात्मा में देखा

है, उन्होंने ही दिव्यवाणी के शब्द, तीर्थंकर देवों की दिव्यध्वनि के सन्देश या अपनी अन्तर्ध्वनि को अपनी भावेन्द्रिय कर्णद्वार से सुना है॥ १२॥

काव्य अर्थ—अन्तरात्मा की ध्वनि को श्रवण करके भव्यजन अपने दिव्य स्वरूप को देखते हैं। शुद्धभाव और अपने समय ध्रुव स्वभाव में सम, समय और समय ध्रुवलय की अनुभूति होती है॥ १५॥

विशेषार्थ—जो अपने शुद्ध स्वभाव के दर्शन का इच्छुक है, वह अपने ज्ञान में अपने स्वरूप का अनुभव करे। ज्ञान और दर्शन गुण ये ही निश्चय के नेत्र हैं, ये ही आत्मदर्शन करने में समर्थ हैं। अतएव ज्ञान में स्वसमय को देखनेवाला ही दिप्त-ज्योति स्वरूप के दिव्य शब्दों को—अन्तर्ध्वनि को श्रवण करने में समर्थ है। वही अरहन्त देव की दिव्यध्वनि को या उनकी द्वादशांग वाणी के शब्दों को अपनी भावेन्द्रिय से सुनता है। "समयदृष्ट" अर्थात् समय का दृष्टा दिप्त शब्द आकिर्ण" अर्थात् परंज्योति परमात्मा के शब्दों को सुनता है। कितने बड़े स्वपुरुषार्थ को इस सूत्र वाणी में जागृत किया है। अपने स्वरूप के दृष्टा और दिव्यवाणी के श्रोता परमोपकारी भगवान् तारणतरण देव की यह वाणी मुमुक्षु के हृदय को अपूर्व शान्ति प्रदान करने वाली है॥ १२॥

पद्यानुवाद

जिनकी समय मय दृष्टि हो वे दिव्यवाणी को सुने।
जिनको मिली अपनी निधी वे क्यों पराई को धुने॥ १२॥

परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव का लक्ष्य

हिय हुव ओकास सर्वांग॥ १३॥

टीका—निर्विकल्पशुद्धस्वभावः सर्वांगात्मप्रवेशेषु हियेति हृदयसरसि वा हुवेति भवतु प्राप्तो व्याप्तरिरतिभावः। ओकासेति अवकाशः अवकाशवाक्यमयोव्यता। हिय सर्वांग ओकास हुव, हृदि सर्वांगे चावकाशो भवतु वा॥ १३॥

काव्य

हृदि शुद्ध स्वभावस्य अवकाशः सदा भवेत् ।
सर्वांगश्च स्वरूपश्च विकासं शुद्धमाप्नुयान् ।। १६ ।।

सूत्रार्थ—अपना अवकाश अपने सर्वांग में और अपने हृदय में हो रहा है या हुव—हुवा ।। १३ ।।

टीका अर्थ—निर्विकल्प शुद्ध स्वभाव सर्वांगात्मप्रदेशों में, हृदय सरोवर में व्याप्त हो तथा प्राप्त हो अवकाशदान रूप योग्यता से संयुक्त हो ।। १३ ।।

काव्य अर्थ—हृदय में और सर्वांगात्मप्रदेशों में शुद्धस्वभाव को अवकाशदान प्राप्त हो आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में शुद्धता प्रगट हो। इस प्रकार समस्त प्रदेशों में पूर्ण निर्मलता का उदय व्याप्त हो। परिपूर्ण द्रव्य में शुद्धता व्याप्त होवे ।। १६ ।।

विशेषार्थ—हृदय में आया जो शुद्ध भाव वह सर्वाङ्ग-आत्म प्रदेशों में व्याप्त हो। अवकाश स्थान प्राप्त करे। "हिय हुव औकास सर्वाङ्ग" अर्थात् अन्तःकरण में आई हुई स्वसमय की दृष्टि अतीन्द्रिय स्वरूप में व्याप्त हो, सर्व आत्मप्रदेशों में छाई रहे ।। १३ ।।

पद्यानुवाद

हियमें हुवा अवकाश या कि विकास सर्वांगोण हो ।
होगी स सफल यह साधना, मनमें न तू अब दीन हो ।। १३ ।।

ध्रुवसिद्ध-स्वभाव

अर्क उत्पन्न वीर्यं अन्मोय शब्द समयसिद्धि सिद्धं ध्रुवं ।। १४ ।।

टीका—अर्कोत्पन्नात्मा, स्ववीर्यानुभूतिसम्पन्नः शब्दब्रह्मसम्पन्नश्च, सिद्धिध्रुवं, सिद्धध्रुवं चाप्नोति ।। १४ ।।

काव्य

अर्क प्रकाशं दृष्ट्वैव वीर्यानन्तानुमोदनां।
समयः शब्दसिद्धिः स्यात्सिद्ध ध्रुव स्वभावजां॥ १७॥

सूत्रार्थ—अर्क उत्पन्न हो, वीर्यानुभूति संयुक्त हो, शब्दब्रह्म समय की सिद्धि सम्पन्न हो, तब ध्रुवसिद्धस्वभाव की सिद्धि प्राप्त होती है॥ १४॥

टीका अर्थ—अर्क वीर्यानुभूति विभूषित आत्मा में शब्द ब्रह्म की सिद्धि सहित ध्रुव सिद्ध स्वभाव की सिद्धि प्राप्त होती है॥ १४॥

काव्य अर्थ—चिदानन्द चैतन्य सूर्य के प्रकाश में ही स्ववीर्यानुभूति, और शब्द ब्रह्म समय की सिद्धि सहित ध्रुवसिद्ध स्वभाव की प्राप्ति होती है॥

विशेषार्थ—शब्द ब्रह्म से जागृत शुद्धात्म सूर्य अपने अनन्त स्वभाव की ज्योति के अनन्त प्रकाश में अपनी सिद्धि, अपना शुद्ध स्वभाव, तथा अपना ध्रुवपद देखता है। अर्क नाम सूर्य का है। चैतन्य सूर्य के उत्पन्न होने पर उसके प्रकाश में अपना वैभव, अपनी शक्ति और अपना शाश्वत पद दृष्टिगोचर होता है।

पद्यानुवाद

ध्रुव-सिद्धि अपने समय की उनको मिलेगी नियम से।
निज-अर्क-रवि-किरणें जहाँ अनुभूति में हों नियम से॥ १४॥

श्रीगुरुमहाराज का निर्ग्रन्थ दि० मुनि-पद

उनईस सै तैतोस वर्ष, दिन रयन सै तोन उत्पन्न
सहजादि मुक्ति भेष उत्पन्न॥ १५॥

टीका—अन्तिमचरमशरीरि श्रीजम्बूस्वामिकेवली निर्वाणप्राप्त्यनन्तरसमये सहित त्रिंशतदिनरात्रित्रयस्त्रिशद्वर्षैकोनविंशति शत वर्षेगते, श्रीवीरनिर्वाण सम्वत्सरपंचनवनवैकवर्तमाने सति वर्षेकविंशतिवये युवावस्थायां श्रीतारणमंडलाचार्यदेवैर्मुक्तिवेश निर्ग्रन्थदिगम्बर मुनिमुद्रा प्राप्ता-गृहीतावेति ज्ञातव्यो भवति। अस्मदादिभिर्जनैः॥ १५॥

काव्य

निर्ग्रन्थमुनि मुद्रा सा जाता मुक्ति प्रदायिनी।
अन्तर्बाह्य स्वनग्नत्वं सूत्रेऽस्मिन् कथयन्ति ते ॥ १८ ॥
स्वीकृतं गुरुदेवेन सहजानन्द साधनम्।
मुक्तिवेषं यथाजातं निर्ग्रंथं दिगम्बरम् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ—उनईस सौ तेतीस वर्ष और दिनरात्रि तीन सौ व्यतीत होने पर सहज स्वरूप मुक्तिवेश (जिन लिंग) उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—अन्तिम चरमशरीरी श्री जम्बूस्वामीकेवली के निर्वाण प्राप्ति पश्चात् उन्नीस सौ तेतीस वर्ष और तीन सौ दिन रात्रि व्यतीत होने पर श्रीवीर निर्वाण सम्वत्सर उन्नीस सौ पंचान्नवे वर्तमान रहते इक्कीस वर्ष की युवावस्था में श्रीतारणतरण मण्डलाचार्य देव ने मुक्ति का वेश निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि मुद्रा ग्रहण की ऐसा हम सबको जानना चाहिये ॥ १५ ॥

काव्य अर्थ—वह निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि मुद्रा जो साक्षात् मोक्ष को देने वाली है श्री गुरुतारणतरण महाराज ने प्राप्त की। इस सूत्र में अन्तर्बाह्य नग्नत्व का स्वामी जी कथन कर रहे हैं ॥ १८ ॥

श्री गुरुदेव ने सहजानन्द साधन मुक्ति का वेष, यथाजात-मुद्रा, निर्ग्रन्थ-दिगम्बर पद को स्वीकार किया ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—श्री गुरु महाराज की दृष्टि में मोक्ष और मोक्ष का मार्ग था। व्यक्ति पद का ध्यान नहीं था। श्री अंतिम केवली जम्बूस्वामी जी के निर्वाण होते ही मोक्ष का मार्ग इस काल में बन्द हुआ, यही बात उनके ध्यान में थी। वे मुक्तिस्वभाव के ध्यान में थे। अब बंद हुआ मार्ग आगामी चतुर्थ काल में प्रथम तीर्थंकर श्री पद्मनाभि जिनेन्द्र के शासन में ही खुलेगा। इसी मोक्षमार्ग के ध्यान में तल्लीन होकर उन्होंने जो मुनि का वेश स्वीकार किया उस दिन भगवान् जम्बूस्वामी जी के निर्वाण के १९३३ वर्ष और ३०० दिनरात्रि व्यतीत हुये थे उस समय श्री गुरु महाराज की आयु २१ वर्ष की थी। श्री वीर निर्वाण सं० १९९५ में गुरुदेव का मुनि पद हुआ ॥ १५ ॥

पद्यानुवाद

उनईस सौ तेतीस वर्ष समेत बिन हों तीन सौ ॥
केवली अन्तिम अनन्तर वेश मुनि का लीन सो ॥ १५ ॥

सम्यक्त्व साधना

मिथ्या विली वर्ष ग्यारह ॥ १६ ॥
समय मिथ्या विली वर्ष दश ॥ १७ ॥
प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ ॥ १८ ॥
माया विली वर्ष सात ॥ १९ ॥
मिथ्या विली वर्ष सात ॥ २० ॥
निदान विली वर्ष सात ॥ २१ ॥
आज्ञा उत्पन्न वर्ष दो ॥ २२ ॥
वेदक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २३ ॥
उवशम उत्पन्न वर्ष तीन ॥ २४ ॥
क्षायिक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २५ ॥
एवं उत्पन्न वर्ष नौ ॥ २६ ॥

टीका—मिथ्यात्वविलयविचारे व्यतीतानि वर्षैकादशानि । सम्यग्मिथ्यात्वविलये दशवर्षाणि । सम्यक्प्रकृति विलये नव वर्षाणि गतानि । मायाशल्य विलय विचारे सप्त । मिथ्याशल्य विलय विचारे सप्त । निदानशल्य विलय साधनायां गतानि वर्षाणि सप्तैव । आज्ञा सम्यक्त्वोत्पन्न विचारे गते द्वे वर्षे । वेदकसम्यक्त्वोत्पन्नविचारेऽपि गते द्वे वर्षे । उपशमसम्यक्त्वोत्पत्ति साधनायां गतानि त्रीणि वर्षाणि । सम्यक्त्वशिरोमणि क्षायिकोत्पन्न विचारधारायामपि गते द्वे वर्षे । एवं सम्यक्त्वसाधनायां नवानि वर्षाणि गतानि सर्वाणि ॥ १६ से २६ ॥

काव्य

मिथ्या विलयविचारे वर्षैकादश दशैव-मिश्रे च ।
सम्यक्प्रकृतेर्विलये, नव सप्त गत शल्य मायायां ॥ २० ॥

मिथ्या निदान शल्ये गतानि वर्षाणि सप्त-सप्तैव।
आज्ञा वेदक क्षायिक द्वे द्वे वर्षे गते उदये ।। २१ ।।
उपशम सम्यक्त्वेत्रिवर्षं विचारेषु नव सर्वे।
सम्यक्त्व साधनेयं वर्षाणां "षष्ठि" संख्यानां ।। २२ ।।

सूत्रार्थ—मिथ्यात्व विलय वर्ष ग्यारह। सम्यग्मिथ्यात्व विलय वर्ष दश। सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व विलय वर्ष नव। मायाशल्य विलय वर्ष सात। मिथ्याशल्य विलय वर्ष सात। निदानशल्य विलय वर्ष सात। आज्ञा-सम्यक्त्व उत्पत्ति विचार में वर्ष दो। वेदकसम्यक्त्व प्राप्ति समय वर्ष दो। उपशमसम्यक्त्व प्राप्ति वर्ष तीन। क्षायिकसम्यक्त्व साधना वर्ष दो। सर्व सम्यक्त्व साधना वर्ष नौ। एवं सर्व साधना वर्ष साठ।

टीका अर्थ—श्रीगुरुदेव स्वामी तारणतरण महाराज के मिथ्यात्व नष्ट करने की साधना में ग्यारह वर्ष व्यतीत हुये। सम्यग्मिथ्यात्व को नाश करने में दश वर्ष गये। सम्यक्प्रकृति के विलय में नौ वर्ष लगे। माया-शल्य सात वर्ष में विलीन हुई। मिथ्याशल्य भी सात वर्ष में विलीन हुई। निदानशल्य भी सात वर्ष में ही विलय को प्राप्त हुई। आज्ञा सम्यक्त्व दो वर्ष में उत्पन्न हुआ। वेदकसम्यक्त्व भी दो वर्ष में उत्पन्न हुआ। उपशमसम्यक्त्व तीन वर्ष में उत्पन्न हुआ। तथा क्षायिकसम्यक्त्व जो सर्व सम्यक्त्व समूह में शिरोमणि है उसकी साधना में दो वर्ष का समय व्यतीत हुआ। एवं सर्व सम्यक्त्व समय साधन वर्ष नौ।। सर्वसाधना समय साठ वर्ष व्यतीत हुआ ।। १६ से २६ ।।

काव्य अर्थ—मिथ्यात्व के विलय विचार में ग्यारह वर्ष। मिश्र-मिथ्यात्व के विलय में दश वर्ष तथा सम्यक्प्रकृति के विलय में नव वर्ष का समय व्यतीत हुआ। माया मिथ्या निदान इन तीन शल्यों का विलय समय सात-सात वर्ष, सब मिलकर २१ वर्ष व्यतीत हुये। इनके नष्ट होने के पश्चात्—आज्ञा सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, और क्षायिक सम्यक्त्व के उत्पन्न होने में दो-दो वर्ष कुल छह वर्ष लगे। तथा उपशम सम्यक्त्व में

तीन वर्ष का समय लगा। ऐसे सर्व सम्यक्त्व समय वर्ष ९ तथा पूर्ण सम्यक्त्व साधना का पूरा समय साठ वर्ष का हुआ॥ २०॥ २१॥ २२॥

विशेषार्थ—इन सूत्रों में श्री गुरु महाराज ने अपने आयु के ६० वर्ष का जीवन चरित्र लिखा है। पूरे तीस वर्ष तो मिथ्यात्व के नाश करने की धुन में व्यतीत हुये। तत्पश्चात् २१ वर्ष का समय तीन शल्यों के नाश करने में गया। और नौ वर्ष का समय उक्त चारों सम्यक्त्व के उदय में लगा। बाकी का ६ वर्ष ५ माह १५ दिन आयु के शेष समय में तपश्चर्या की उपसर्गों को सहन किया। इस प्रकार पूरी आयु ६६ वर्ष ५ माह १५ दिन की थी॥

मिथ्यात्व और शल्य के नाश करने में तो किसी को कोई शंका नहीं होगी। हाँ, आज्ञा, वेदक, और उपशम सम्यक्त्व के प्राप्त करने में भी कोई शंका नहीं। परन्तु एकमात्र क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति में शंका हो सकती है कि—इस काल में बिना तीर्थंकर पादमूल के क्षायिक सम्यक्त्व कैसे हो गया? शान्तिपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्व का समय २ वर्ष का है, यह विचार करते ही शंका समाप्त होती है। किसी भी सम्यक्त्व के उत्पन्न होने में अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं लगता फिर दो वर्ष का समय कैसे लगा? अभ्यास, साधना, विचार और चिन्तन में पंचमकाल की मनाई नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व जिस दिन होगा, अन्तर्मुहूर्त में हो जावेगा। किन्तु यहाँ दो वर्ष का समय उसके ध्यान चिन्तन और विचार साधना में व्यतीत हुए। इसमें किसी को क्या आपत्ति है? क्या पंचमकाल में क्षायिक सम्यक्त्व का नाम लेना अपराध है? नहीं। आत्मा यदि अपने आत्म स्वभाव में आता है तो इसमें कोई भी कालादि की बाधा नहीं। अपनी योग्यता चाहिये। अतएव छद्मस्थवाणी के किसी भी सूत्र में विवेक से विचार करने पर कोई शंका नहीं होती। भावों को देखना चाहिये॥ १६॥

पद्यानुवाद

मिथ्यात्व विलय विचार से सम्पन्न ग्यारह वर्ष में।
बालवयसे ही लगे गुरुदेव निज उत्कर्ष में॥ १६॥

मिश्र मिथ्या प्रकृति को दशवर्ष झकझोरा तथा ।
गुणथान तीजे का मनन करते रहे आगम कथा ।। १७ ।।
सम्यक्प्रकृति के उदय से सम्यक्त्व वेदक हो गया ।
नववर्ष की यह साधना मिथ्यात्व पूरा खो गया ।। १८ ।।
मायाविलय, मिथ्याविलय, अरु शल्य विलय निदान भी ।
इनके विलय में वर्ष सब इक्कीस का भुगतान भी ।। १९ ।।
आज्ञा तथा वेदक हुये ये वर्ष दो-दो में उदय ।
उपशम हुआ त्रय वर्ष के साधन समय में ही उदय ।। २० ।।
सम्यक्त्व क्षायिक का मनन दो वर्ष तक होता रहा ।
गुरुदेव का शुद्धात्मा निज कर्म मल धोता रहा ।। २१ ।।
नववर्ष में सम्यक्त्व चारों का उदय था ज्ञान में ।
निज निर्विकल्प समाधि में तन्मय बना मन ध्यान में ।। २२ ।।

सम्यक्त्व साधना विषय समाप्त

●

मुनिवेश में उपसर्ग

उत्पन्न भेष उवसग्ग सहनं ।। २७ ।।

टीका—मुनिमुद्रायां विरोधिजनकृतमुपसर्गसहनं । विषपानं महासरिता वेतवामध्यधारायां प्राणान्तक कष्टं घोरोपसर्गं विजयन् समताक्षमत्वभावेन स्वस्वभावधारायां शान्तिधारायां वा निमग्नोभूत्वातिशयचमत्कार सहितेगुरुदेवैः कृतातिशयमुपस्थितमद्य पर्यन्तं तत्रैव वेतवामध्यधारायां विद्यते स्मारकरूपेण स्थानं पश्यन्ति सर्वे जना ।। २७ ।।

काव्य

विषपानामृतं कृत्वा प्राप्तं चिद्रूप स्वामृतम् ।
वेतवा मध्यधारायामुपसर्गे चमत्कृतिः ।। २३ ।।

सूत्रार्थ—मुनिवेश में भी उपसर्गों को सहन किया ।

टीका अर्थ—मुनिमुद्रा में विरोधीजनों द्वारा किये गये उपसर्गों को

सहन किया। विषपान करना पड़ा। वेतवा की अथाह धारा में प्राणान्तक घोर उपसर्गों को सहन करते हुये-जीतते हुये, गुरुदेव ने समतामय शान्त भावों से स्व-स्वभाव की समाधि शान्ति धारा में स्वयं निमग्न होकर अतिशय और चमत्कारों सहित जो आदर्श अतिशय उपस्थित किया वह आज पर्यंत वेतवा की उसी मध्यधारा में विद्यमान स्मारक रूप स्थान टापू सर्वजन समूह की दृष्टि में आ रहा है॥ २७॥

काव्य अर्थ—विषपान तो अमृतमय होकर चिद्रूपामृत स्वरूप की प्राप्ति का कारण हो गया। तथा वेतवा की मध्य धारा में हुये उपसर्गों में चमत्कारों की उत्पत्ति हुई॥ २३॥

विशेषार्थ—मुनि अवस्था में उपसर्ग सहन किया, केवल इतना ही सूत्र में लिखा है। कौन-कौन से उपसर्ग सहन किये, यह नहीं लिखा है। किंवदन्तियों में दो प्रकार के घोर उपसर्ग श्रीगुरुदेव ने जीते ऐसा सुनने में आता है। एक तो विष का प्याला उनके मामा ने पिलाया था, किन्तु विष का प्रभाव नहीं हुआ। और दूसरा उपसर्ग वेतवा की बीच धार में नाव उलटाई गई और वहाँ टापू निकल आये जो अभी तक इस घटना की स्मृति में उपसर्ग को जीतने की विजय-वैजयन्ती फहरा रहे हैं। नदी में डुबाने का तीन बार प्रयत्न किया गया, किन्तु तीनों बार तीन टापू पृथक्-पृथक् निकले जो अभी तक नदी में विद्यमान हैं। दो टापू तो पानी में डूबे रहते हैं, किन्तु एक टापू जो पानी से बाहर है उस पर पक्का चबूतरा बना है। तारणतरण का निशान फहरा रहा है। इस घटना के घटते समय गुरुदेव ने एक फूलना उसी समय बना कर वहीं गाया था। उस फूलना में गुरुदेव ने कहा—हे परमानन्द! मल्लाह मुझे इतनी गहराई में ले जाकर डुबा दे जहाँ मेरे अगम अथाह स्वरूप की थाह मुझे मिल जावे, इत्यादि। जिस टापू पर चबूतरा बना है वहाँ पर आज भी यात्री गण नाव में बैठकर चबूतरे की प्रदक्षिणा करते हैं, फिर चबूतरे पर मन्दिरविधि पाठ, पूजन, सामायिक, तिलक प्रसाद प्रभावना करके लौटते हैं। वहाँ किनारे पर एक घाट पक्का बना हुआ है। इस घाट को बाँदा

वाले सेठ श्री वल्देव प्रसाद गुलाबचन्द जी उजिया मूरी ने बनवाया है। इस घाट के ऊपर की ओर सामायिक का चबूतरा था, अब अच्छा मन्दिर है। यहाँपर श्री गुरुदेव ध्यान-धारणा-सामायिक आदि करते थे। इस विषय की भी अनेक किंवदन्तियाँ हैं। अस्तु।

जीवन चरित्र से तो ऐसा लगता है कि और भी उपसर्ग अनेक प्रकार के हुये होंगे। परन्तु इन दो उपसर्गों की पूरी कहानी तो जनता की जिह्वा पर ही उपस्थित है। इस प्रकार "उत्पन्न भेष उवसग्ग सहनं" इन मधुर और अत्यन्त मार्मिक शब्दों में अपना रहस्यमय इतिहास गुरुदेव ने लिखकर जिनमार्ग की प्रभावना ही की है ॥ २७ ॥

पद्यानुवाद

नद वेतवा में विजय कर उपसर्ग के तूफान को।
प्याला पिया विष का उठा, स्वीकृत किया उस दान के ॥ २३ ॥

समाधि का समय

सम्वत पन्द्रहसौ बहत्तर गत तिलकं ॥ २८ ॥

टीका—द्विसप्तपञ्चैकवैक्रमीये सम्वत्सरे गततिलकमितिदेह समाप्तिर्भविष्यतीति ज्ञात्वा स्वयंश्रीगुरुदेववचनैः शिष्यसमूहोऽतिखिन्नमनो बभूव, सर्वजनशिष्यैस्तथाकृता दीर्घायुकामना तत्समये ॥ २८ ॥

काव्य

पञ्चदशशद्विसप्तति सम्वत्सर वैक्रमीय प्रारंभे।
तारणतरण शरीर त्यागस्तु भविष्यति तथा नियमात् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—सम्वत् १५७२ ज्येष्ठ वदि छठ की रात्रि शुक्रवार को तारण-तरण शरीर का गत तिलक होगा ॥

टीका अर्थ—पन्द्रह सौ बहत्तर विक्रम सम्वत् में श्री गुरुदेव की देह समाप्ति होगी, ऐसा गुरुदेव के वचनों से शिष्यों ने जाना। खेद खिन्न हुये। सबने दीर्घायु कामना की ॥ २४ ॥

काव्य अर्थ—१५७२ विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ में तारणतरण शरीर

का स्वयं उनके बताये भविष्य कथन के समय पर नियम से त्याग—गत-तिलक होगा, यह निश्चित है ॥ २४ ॥

विशेषार्थ—विक्रम संवत् १५७२ में गततिलक होगा, यह बात वि० सं० १५५४ से ही घोषित की जा रही है। और इस ग्रन्थ के अनेक सूत्रों में फिर-फिर से दुहराई जा रही है। अन्त में ठीक इसी भविष्यवाणी के अनुसार श्री गुरुदेव की समाधि ज्येष्ठ वदि छठ की रात्रि शुक्रवार को समाधि तथा सप्तमी शनिवार को देह संस्कार हुआ। जिसका वर्णन इसी ग्रन्थ के दशम अध्याय के अन्तिम सूत्र में किया गया है ॥ २८ ॥

पद्यानुवाद

पन्द्रह शतक अरु बहत्तर की जेठ वदि छठ रात में।
गततिलक होगा हमारा बात कहदी बात में ॥ २४ ॥

शरीर त्याग

सत सहजादि कल छूटो, तदि सर्वार्थसिद्धी उत्पन्न ॥ २९ ॥

टीका—सत्स्वरूपः सहजानन्दादि गुणसम्पन्नात्मात्यक्त्वा शरीरं शुद्धस्वभावे गतः प्राप्तः। तत्समये वा सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नो जातः इत्यस्य भावार्थः। अर्थस्य निजवस्तोः स्वपदार्थस्य सर्वसिद्धि परिपूर्ण-स्वानुभूतिमुपगतः सर्वार्थसिद्धौ गत इति ॥ २९ ॥

काव्य

काले च पूर्वोक्ते एव कलत्यक्तो महात्मना।
सत्द्रव्य लक्षणात्मा सः सहजानन्द साधक ॥ २५ ॥
सर्वसिद्धि च सम्प्राप्तः तत्काले धन्य धन्यता।
मल्हारस्य गढ़े क्षेत्रे निसई जी प्रकाशिता ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—सत्स्वरूप सहज शुद्ध स्वभाव संयुक्त आत्मा ने शरीर छोड़ा और उस समय उनके स्वरूप में सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न हुई तथा वे सर्वार्थ-सिद्धि में उत्पन्न हुये ॥ २९ ॥

टीका अर्थ—सत्स्वरूप, सहजानन्दादि सम्पत्तिसम्पन्न आत्मा शरीर को त्याग कर शुद्ध स्वभाव में उत्पन्न हुआ अथवा उस समय वह आत्मा सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुआ। अर्थ निज वस्तु अपने स्वपदार्थ की समस्त सिद्धि को, परिपूर्ण स्वानुभूति को प्राप्त हुये। इस प्रकार सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुये॥ २९॥

काव्य अर्थ—पूर्वोक्त समय में ही उस महान् आत्मा ने शरीर का त्याग किया। सत् लक्षण वाला वह ज्ञाता दृष्टा सहजानन्द का साधक सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुआ उस समय धन्य धन्य वाणी हुई। मल्हारगढ़ क्षेत्र में निसई जी को प्रकाशित करता हुआ अपने स्वरूप में लीन हुआ॥ २५-२६॥

विशेषार्थ—सत्सहजादिगुण स्वरूप आत्मा का शरीर छूटा, उस समय गुरुदेव का आत्मा सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुआ, यह आशय इस सूत्र का है। इसी आशय के सूत्र ग्रन्थ में आगे भी आ रहे हैं। पञ्चम-काल में आठवें स्वर्ग से आगे नहीं जा सकते, फिर सर्वार्थसिद्धि कैसे गये? तो पञ्चम काल में तो और भी जीव मोक्ष पधारे हैं, फिर स्वामी जी के सर्वार्थसिद्धि गमन में रोक क्यों? इत्यादि तर्क-वितर्कों को सुन कर यह बात मध्यस्थता से समझने योग्य है। पहली बात तो यह है कि आज से ५०० वर्ष पहिले यह बात इस शास्त्र में लिखी गयी है। यह आम्नाय की बात है, बहस की नहीं। इन्हीं बातों के मतभेदों पर से तो सम्प्रदाय बनते हैं। अतएव आम्नाय के अनुसार बात मानने योग्य है। तथा विवाद की अपेक्षा से प्रश्न है कि इसका अन्तिम निर्णय कौन करेगा? निर्णय देने वालों का इस समय अभाव है अतएव मध्यस्थ रहना ही उचित है। और फिर इतने बड़े ग्रन्थ में ५०० वर्ष से लिखी चली आ रही बात में भी तो कोई तथ्य या रहस्य होना चाहिये अतएव इसे विवाद का विषय न बना कर श्रद्धा का विषय बनाना चाहिये। यदि वे सर्वार्थ-सिद्धि चले गये तो किसी का इसमें नुकसान क्या है?

पद्यानुवाद

जैसी भविष्यत्काल की वाणी सुनी संसार ने।
ठीक उसही समय तन त्यागा मुनीश्वर तार ने ॥ २५ ॥
निज अर्थ की सब सिद्धियाँ उत्पन्न निज में हो गईं।
सर्वार्थसिद्धी मय हुये, सर्वार्थसिद्धो हो गईं ॥ २६ ॥

स्वानुभव में ही सिद्धि है

कलन सह समय सिद्धि सिद्ध स्वयं ॥ ३० ॥

टीका—स्वयं सिद्धस्वरूपस्य कलन सह वर्तमानास्वध्यानसंयुक्ता परिणतिः, समयसिद्धिरिति समयस्य सिद्धिः, कलनस्वभावा स्वरमणीयस्वभावे रमणावती नामाशक्तिनाम्नेतिख्याता सा शुद्धपरिणतिः ॥ ३० ॥

काव्य

कलनं स्वानुभूतिः स्यात्सिद्धिश्च समयस्य हि।
सिद्धः स्वयं विशुद्धात्मः ख्याताः हि सर्वसिद्धयः ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ—स्वयं सिद्ध शुद्धात्मा के समय की सिद्धि अपने कलन स्वानुभव के साथ ही वर्तमान है ॥ ३० ॥

टीका अर्थ—स्वयंसिद्ध स्वरूप की स्वानुभव ध्यान के साथ वर्तमान परिणति ही समय की सिद्धि है। स्वयंसिद्ध स्वभाव की स्वानुभव स्वभाव शुद्ध परिणति अपने रमणीय स्वभाव में रमण करने से रमणावती नाम की शक्ति रूप से भी योगियों में विख्यात है।

काव्य अर्थ—कलन करना ही स्वानुभूति है। स्वयंसिद्ध शुद्धात्मा की यही समय सिद्धि-आत्म सिद्धि है। और सर्व सिद्धियाँ भी प्रसिद्ध ही हैं ॥ २७ ॥

विशेषार्थ—शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति के साथ ही समय सिद्धि का स्वाद और रस आता है। क्योंकि सिद्धि तो स्वयं समय का स्वरूप

है। और इसीलिये सिद्ध स्वयं ही है। आपने स्वरूप में जो सिद्धावस्था पड़ी है वह अनुभव में आवे, उसकी प्रतीति हो जावे, अतएव "कलन सह समय सिद्धि सिद्ध स्वयं" यह सूत्र बनाया। जिसे अपने स्वरूप में बैठे सिद्धों की प्रतीति नहीं है उसे सिद्धालय के सिद्धों का ध्यान स्वप्न में भी नहीं होगा। अपनी सिद्धावस्था की श्रद्धा में भावलिंगी ही सिद्धों का ध्यान करता है। इस मार्ग से बाह्य ध्यान की जो क्रिया है, वह द्रव्य-लिंग है, मिथ्यात्व है। द्रव्यलिंग से संसार तो चलेगा, मुक्ति का भान नहीं होगा। अतएव इस सूत्र के भाव में बैठकर अपने स्वयंसिद्ध का ध्यान करो।

पद्यानुवाद

सिद्ध-स्वयं की सिद्धि वह तो समय के ही साथ है।
कर स्वानुभव तू देख ले यह कलन तेरे साथ है ॥ २७ ॥

नई वस्तु क्या है ?

उत्पन्न स्वभाव अनदृष्टि-अनश्रुत अनहोतो शब्द ध्रुव उत्पन्न ॥ ३१ ॥

टीका—शुद्धस्वभावोऽदृष्टपूर्वोऽश्रुतपूर्वोऽभूतपूर्वोऽयं स्वयं स्वरूपे। शब्दब्रह्मस्वरूपस्तु तद्ध्रुवब्रह्मभावे भावरूपेणैवोत्पन्नो भवति। द्वितीयार्थे तु—सम्यग्दृष्टिश्चान्तरात्मा समूहस्तु कीदृगवस्था सम्पन्नो भवति स्वान्तः स्वरूपे, उत्पन्ने-स्वभावे सति—पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति, शृण्वन्तोऽपि न शृण्वन्ति, कुर्वन्तोऽपि न कुर्वन्ति। कर्ताप्यकर्ता भाव-युक्तो वा ॥ ३१ ॥

काव्य

पश्यन्तोऽपि च शृण्वन्तो न पश्यन्ति शृण्वन्ति हि।
कर्ता भवत्यकर्ता च स्वरूपे आगते सति ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—उत्पन्न स्वभाव अदृष्ट है, अश्रुत है, अन होता है। शब्द ब्रह्म उस ध्रुव स्वरूप में ही भाव रूप से उत्पन्न है ॥ ३१ ॥

टीका अर्थ—अपने स्वयं, स्वयं स्वरूप में शुद्ध स्वभाव अदृष्टपूर्व, अश्रुतपूर्व, अभूतपूर्व है। शब्द ब्रह्म स्वरूप उस ध्रुव ब्रह्म भाव में भाव-रूप से ही उत्पन्न होता है। दूसरे अर्थ में सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा समूह कैसी अवस्था में होता है? अन्तरंग स्वरूप के उत्पन्न होने पर देखते हुये भी नहीं देखते, सुनते हुये भी नहीं सुनते, करते हुये भी नहीं करते। अर्थात् कर्ता होते हुये भी अकर्ता भाव से सहित है॥ ३१॥

काव्य अर्थ—अपने स्वरूप का आगमन होने पर आत्मदर्शीजन देखते हुये भी नहीं देखते, सुनते हुये भी नहीं सुनते और कर्ता होते हैं फिर भी अकर्ता हैं॥ २८॥

विशेषार्थ—पहिले कभी जिसको देखा नहीं, सुना नहीं, और आज जिसका स्वरूप सुनकर अनहोना जैसा मालूम होता है। ऐसी वस्तु अपना उत्पन्न स्वभाव ही है। इस वस्तु की स्वीकारता का सूचक "हाँ" एक बार निकले तो ही ध्रुव शब्द उत्पन्न की अन्तर्ध्वनि सुनने को मिले। यहाँ उत्पन्न शब्द का अर्थ भाव भासना लेना चाहिये। ऐसे अदृष्टपूर्व, अश्रुतपूर्व निज स्वरूप की प्रतीति प्राप्त हो तो देखता हुआ भी अदृष्टा, सुनता हुआ भी अश्रोता, और करता हुआ भी अकर्ता है। यही इस सूत्र में बड़ा ही गम्भीर भाव भरा है॥ ३१॥

पद्यानुवाद

अदृष्ट अश्रुत पूर्व अनहोनी निजातम की कथा।
ध्रुव शब्द हैं ये आज सुन! होगी पृथक् तेरी व्यथा॥ २८॥

सर्वसिद्धियों का स्वामी अपना स्वरूप

उत्पन्न उत्पन्न शाह उत्पन्न अक्षर स्वर व्यञ्जन
सर्वार्थसिद्धि सिद्धं॥ ३२॥

टीका—सर्वधनसम्प्राप्तिसम्पन्नो मदीयश्चिदानंदचैतन्य शाह स्वामी मप्युत्पन्नः प्रकट स्वरूपोऽस्ति तस्याक्षराक्षय स्वरूपस्तस्मिन्नेवोत्पन्नरूपेण

विद्यते। तस्य स्वर-व्यञ्जनावपि। सर्वार्थसिद्धिश्चापि तस्यैव, सिद्धश्च स एव स्वयं ॥ ३२ ॥

काव्य

उत्पन्नः स्वयमुत्पन्नः शब्दश्च स्वरव्यञ्जने।
सर्वार्थसिद्धिश्चोत्पन्ना सिद्धोत्पन्नपदस्तथा ॥ २९ ॥
अर्थस्य सर्वसिद्धिं अक्षर स्वर व्यञ्जनानि सिद्धंच।
उक्तं च शाहसिद्धं भज स्वाक्षरशाश्वतं च शुद्धं तं ॥ ३० ॥

सूत्रार्थ—मेरा चिदानन्द चैतन्य शाह मेरा शुद्धस्वभाव उत्पन्न है, उत्पन्न है, प्रगट है। उसके अक्षय अक्षर, स्वर, व्यञ्जन भी उसी में उत्पन्न हैं। सर्वार्थसिद्धि और उसका सिद्धपद उसी में है ॥ ३२ ॥

टीका अर्थ—सर्वधन सम्पत्ति सम्पन्न मेरा चिदानन्द चैतन्य शाह मेरे में प्रगट हो गया है उसके अक्षय अक्षर, स्वर, व्यञ्जन, सर्वार्थसिद्धि और सिद्ध पद आदि उसकी समस्त निधियाँ उसी में हैं ॥ ३२ ॥

काव्य अर्थ—अपने में आप स्वयं शाह उत्पन्न हैं। शब्द, अक्षर, स्वर, व्यञ्जन, सर्वार्थसिद्धि, और सिद्धपद उसका उसी में है ॥ २९ ॥

अर्थ की सर्वसिद्धि, अक्षर, स्वर, व्यञ्जनादि ये सर्व स्वयं सिद्ध हैं। शाह पद प्राप्त जिनवर ने कहा है कि अक्षर अविनाशी हैं शुद्धचिद्रूप हैं, तू इनको भज ॥ ३० ॥

विशेषार्थ—श्री गुरुदेव ने अपनी वाणी में जिन शब्द का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है, और अपने सम्पूर्ण वैभव सहित चिदानन्द चैतन्य स्वरूप का स्मरण करने के लिये शाह शब्द का प्रयोग भी बहुलता से किया है। लोकव्यवहार में भी शाह साहूकार को कहते हैं। शाह अपने वैभव में सुखी रहता है, परद्रव्यों से सुख की याचना नहीं करता। अटूट सम्पत्ति का स्वामी जिन शाह मेरा मेरे में उत्पन्न है उसके अक्षय स्वरूप की अन्तर्ध्वनि, उसके अक्षर, स्वर, व्यञ्जनादि सब उसके साथ ही उत्पन्न हैं।

अब मेरे शाह की भाषा में मैं उससे बोलूंगा। उसके मेरे बीच में अब

तीसरा कोई नहीं आवेगा। मेरे सर्व अर्थों की यही सिद्धि है। ऐसे अमृत रसमय अर्थ से परिपूर्ण सूत्र "उत्पन्न उत्पन्न शाह, उत्पन्न अक्षर स्वर व्यंजन सर्वार्थसिद्धि सिद्ध" यह गुरुवाणी हम सब को अपने शाह से मिलाकर हमको भी शाह बनावे, गुरुदेव से यह प्रार्थना है ॥ ३२ ॥

पद्यानुवाद

यह वचन जिनवर शाहके सुनकर बनेगा शाह तू।
सर्वार्थ हो सिद्धि स्वयं यदि सिद्धपद को चाह तू ॥ २९ ॥

अपने शब्द

उत्पन्न शब्द हितमित परिणित ॥ ३३ ॥

टीका—उत्पन्नशब्दाः स्वयं हितमितरूपेण-परिणमन्ति स्वभाव-भावे ॥ ३३ ॥

काव्य

अन्तर्ध्वनिः शब्द स्वरूप रूपे,
अन्तः स्वनादं प्रकटी करोति।
हिताय मितरूप स्वतः स्वभावा-
न्तर्बाह्य शुद्धश्च स्वभाव शब्दः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ—उत्पन्न शब्द हितमित परिणित होते हैं ॥ ३३ ॥

टीका अर्थ—अपने स्वभाव में उत्पन्न शब्द स्वयं हितमित रूप से परिणमन करते हैं ॥ ३३ ॥

काव्य अर्थ—शब्द स्वरूपा यह अन्तर्ध्वनि अपने रूप में अन्तर्नाद को प्रगट करती है। और यह हितमित परिणित स्वयं अन्तर्बाह्य शुद्ध, स्वभाव शब्द का स्वरूप है ॥ ३१ ॥

विशेषार्थ—उस उत्पन्न शुद्ध स्वरूप के अन्तर्ध्वनि के वे शब्द अपने आप हितमित रूप से परिणमित होते हैं। यही अन्तर्नाद है। इस जाति की भाषा वर्गणाएँ ही एकत्र होकर दिव्यध्वनि बनकर भव्यों के

भय का और भव का विनाश करने, भवपार करने में निमित्त बनती हैं ॥। ३३ ॥

पद्यानुवाद

स्याद्वादवाणी निज हितंकर शब्द हितमित परिणमित ।
कर प्रगट अपने आपमें निज ज्योति को तू नित्य नित ॥ ३० ॥

आत्म स्वभाव की गहराई

कोमल ललित हेय, अवगाह अगुरुलघु बाधा-
विली ॥ ३४ ॥

टीका—शब्दानां प्रकरणं, पूर्व-सूत्रानुसारेणैवात्रार्थं करोमि। कोमल-ललिताकर्षणयुक्ता, मिथ्याहाव-भावविभूषिता, संसारशरण-प्रदर्शिका, पुण्यपापस्वरूपिणी, रागरूपिणी वाणी, मिथ्यादेव गुरु शास्त्राणां शब्दाश्च वा परित्यजनीयाः। पुनश्च किं कर्तव्यं अगुरुलघु-बाधाविलयस्वभावोऽवगाहनीयः ॥ ३४ ॥

काव्य

कोमल ललित विवेका, हेयोपादेयदर्शिनी वाणी ।
आत्मावगाहनीयः अव्याबाधादि स्वगुणसंयुक्तः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ—सांसारिक कोमल और ललित प्रिय भी मिथ्यावाणी हेय है। अगुरुलघु, अव्याबाधादि अनन्तगुण युक्त सिद्ध स्वभाव का अवगाहन ही स्याद्वाद वाणी की आज्ञा है ॥ ३४ ॥

टीका अर्थ—शब्दों का प्रकरण है। पूर्व सूत्रों से सम्बन्धित अर्थ ही चल रहा है। कोमल और ललित आकर्षण संयुक्त मिथ्या हाव भावों से विभूषित, संसार शरण दर्शिका, पुण्य-पापरूपा, रागरूपा, वाणी हेय है। फिर और क्या करें ? अगुरुलघु, बाधाविलय स्वभाव का अवगाहन ही उपादेय है ॥ ३४ ॥

काव्य अर्थ—कोमल हो, ललित हो, विवेक युक्त हो, हेयोपादेय-

प्रदर्शिनी वाणी ही प्रशस्त है, उपादेय है। अन्य सब हेय हैं। अव्यावाधादि स्वगुण युक्त आत्मा ही अवगाहन करने के योग्य है ॥ ३२ ॥

विशेषार्थ—अपना शुद्ध स्वभाव अगुरुलघु गुण सहित है। अव्यावाध गुण के द्वारा समस्त बाधाओं का विलय करने वाला है। ऐसा स्वरूप ही अवगाहन करने के योग्य है। और संसार की कोमलता, ललितपना युक्त वाणी का विलास हेय है ॥ ३४ ॥

पद्यानुवाद

कोमल ललित प्रिय है तुझे अवगाहना इस देह की।
यह हेय है, अवगाहनीय सुधा समझ निज गेह की ॥ ३१ ॥

मुक्ति स्वभाव का प्रतीक मुनिपद

मुक्ति स्वभाव उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न नो उत्पन्न
रमणन्यान ॥ ३५ ॥

टीका—मुक्तिस्वभावसाधकः स्वभावोत्पन्नोत्पन्नोत्पन्नः। सूक्ष्म-रमणज्ञानमप्युत्पन्नं श्रीगुरुदेवानामीदृक् निर्ग्रन्थ-दिगम्बर-मुनिमुद्रा जाता उत्पन्ना ॥ ३५ ॥

काव्य

अनादि प्रच्छन्नो भावः मुक्ति भावो स्वभावजः।
निर्ग्रन्थोत्पन्नश्चरूपः रमणं ज्ञान लक्षणम् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ—मुक्ति का स्वभाव उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ। और उत्पन्न हुआ मेरा सूक्ष्म ज्ञान रमण स्वभाव ॥

टीका अर्थ—मुक्ति स्वभाव का साधक स्वभाव उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ। सूक्ष्मरमणज्ञान भी उत्पन्न हुआ। श्री गुरुदेव की ऐसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि मुद्रा उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥

काव्य अर्थ—स्वभाव से उत्पन्न होने वाला, अनादि से गुप्त रहा, यह मुक्ति स्वभाव आज उत्पन्न हुआ। और ज्ञान रमण लक्षण स्वभाव वह निर्ग्रन्थ रूप भी उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥

विशेषार्थ—मुक्ति स्वभाव के उत्पन्न होने की घोषणा तीन बार उत्पन्न शब्द के द्वारा इस सूत्र में की है। और ज्ञान रमण स्वभाव की सूक्ष्मता को नो शब्द के द्वारा प्रगट किया है। तथा ज्ञान स्वभाव की ध्रुवता को भी दूसरे अर्थ में दर्शाया है। अपने मुक्ति स्वभाव की दृढ़श्रद्धा की सूचक यह घोषणा है कि मेरा मुक्ति स्वभाव उत्पन्न हो गया, उत्पन्न हो गया, उत्पन्न हो गया। इन शब्दों में जो दृढ़ता है वह अनुभवगम्य है ॥ ३५ ॥

पद्यानुवाद

मुक्तिस्वभाव जहाँ प्रगट हो सूक्ष्मता हो ज्ञान को।
निजरमण के भाव की उत्पत्ति होगी ध्यान को ॥ ३२ ॥

कार्यसिद्धि तिलक

इति कार्यसिद्धि तिलकं ॥ ३६ ॥

टीका—स्वचेतन्यचिद्रूपशुद्धस्वभावस्य प्राप्तिरिति कार्यसिद्धिः। निर्ग्रन्थ-मुनिपदस्य बाह्यदिगम्बरत्वान्तर्गतस्वमुक्तिहेतु निमित्तकारण-सामग्री प्राप्तिरपि संसारसमाप्तिकार्यं प्रारंभो वेति कार्यसिद्धि-तिलकं ॥ ३६ ॥

काव्य

इति कार्य सिद्धि तिलकं स्वामी तारणतरण जिनभुवनं।
मुनिवेशो निर्ग्रन्थे स्वकार्य सिद्धिश्च प्राप्ति तं तिलकं ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थ—इस प्रकार कार्यसिद्धि तिलक सम्पन्न हुआ ॥

टीका अर्थ—अपने चैतन्य चिद्रूप शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति यह कार्य-सिद्धि हुई। अथवा मुनिपद बाह्य दिगम्बरत्व तथा अन्तरंग निर्ग्रन्थतादि स्वमुक्ति हेतु निमित्त कारण सामग्री की प्राप्ति संसार समाप्ति का कार्य प्रारम्भ, कार्यसिद्धि तिलक है ॥ ३६ ॥

काव्य अर्थ—इस प्रकार कार्यसिद्धि तिलक हुआ। स्वामी तारण-

तरण जिन उदय हुये। निर्ग्रन्थ मुनिवेश, अपने स्वरूप की प्राप्ति सिद्धि रूप कार्यसिद्धि की प्राप्ति वही तिलक हुआ ॥ ३४ ॥

विशेषार्थ—मुक्ति स्वभाव का प्रतीक निग्रंथ दिगम्बर पद प्राप्त हुआ, अन्तर्बाह्य वैभव जो आध्यात्मिक दृष्टि से चाहिये, वह सब प्राप्त हो चुका है, अतएव "इति कार्य सिद्धि तिलक" की यह सूचना है।

वास्तव में शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति के पश्चात् और प्राप्त करने योग्य क्या रह जाता है? कुछ भी नहीं। अतएव वास्तविक कार्यसिद्धि तिलक की यह घोषणा मुमुक्षुओं को प्रेरणा की देने वाली है। आत्मप्राप्ति के पश्चात् सम्यग्दृष्टि जीव को मोक्ष में भी इच्छा नहीं रहती। क्योंकि ३५वें सूत्र के अनुसार मुक्त स्वभाव तो अपने पास ही विद्यमान है। दूसरी और मुक्ति की परिभाषा इस निश्चयनय की दृष्टि में है भी कौन सी जो चाहिये ॥ ३६ ॥

पद्यानुवाद

है कार्य की सिद्धी यही होगा महोत्सव तिलक का।
निजकार्य क्या है, भव्य! तू लेखा लगा ले तिलक का ॥३३॥

सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति

सम्वत पन्द्रहसौ बहत्तर स्वामी तारणतरण
सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न ॥ ३७ ॥

टीका—पूर्वोक्ताष्टविंशत्येकोनविंशतिक्रमांक-सूत्रानुसारेणैव स्वामी तारणतरण देवो भगवान् सर्वार्थसिद्धौ गतः। उत्पन्नो वेति भावः ॥ ३७ ॥

काव्य

संख्या द्विसप्त पंचैक संवत्सर प्रधानतः।
शरीर त्याग तिलकमिति वृत्तस्य कारणम् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ—सम्वत् १५७२ में स्वामी तारणतरण सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होंगे ॥ ३७ ॥

टीका अर्थ—पूर्वोक्त २८ और २९ वें सूत्रानुसार ही स्वामी तारण-तरण देव भगवान् सर्वार्थसिद्धि को जावेंगे या गये। उत्पन्न होंगे ॥ ३७ ॥

काव्य अर्थ—संख्या दो सात पाँच और एक इस प्रकार १५७२ सम्वत् ही प्रधानता से शरीर त्याग तिलक को और इतिहास को कारण बना है ॥ ३५ ॥

विशेषार्थ—सम्वत् १५७२ में स्वामी तारणतरण सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होंगे। सूत्र २९ के विशेषार्थ में लिख आये हैं। इस सूत्र में तो स्पष्टरूप से घोषित किया गया है। पाँच सौ वर्षों से श्री गुरुदेव के अनुयायी उनके सर्वार्थसिद्धि गमन को सत्य, ध्रुव, प्रमाण मानते आये हैं। इसी प्रकार अभी भी यह प्ररूपणा सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है।

पद्यानुवाद

उत्पन्न हो तारणतरण सर्वार्थसिद्धि विमान में।
पन्द्रह बहत्तर में बनेगी बात वन सुनसान में ॥ ३४ ॥

मुक्ति-प्रसाद

समय को मुक्ति प्रसाद ॥ ३८ ॥

टीका—समयस्य मुक्तिप्रसादं दास्यति ददाति वा स्वसमयः, स्वसमयं, स्वसमयेन. स्वसमयाय, स्वसमयात्, स्व समयस्य, स्वसमये इति। हे समय ! स्व समय-प्रसादं वितरतु ! ॥ ३८ ॥

काव्य

मुक्ति प्रसाद समयं ददाति स्वं स्वयं विभुः।
षट्कारक सिद्धिः स्यात् स्वात्मनि स्वात्मनस्तथा ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ—समय का मुक्ति प्रसाद है ॥ ३८ ॥

टीका अर्थ—समय का मुक्ति प्रसाद देगा, देता है, अपना समय, अपने समय को, अपने समय के द्वारा, अपने समय के ही लिये, अपने समय से, अपने समय का, अपने समय में। हे समय ! अपने समय का प्रसाद वितरण करो ॥ ३८ ॥

काव्य अर्थ—मुक्ति का प्रसाद अपने समय को स्वयं ही वह वैभव सम्पन्न विभु देता है। इस सूत्र में छहकारकों की सिद्धि अपनी आत्मा से ही होती है।

विशेषार्थ—श्रीगुरु महाराज इस सूत्र में समय का मुक्ति प्रसाद जो उन्हें प्राप्त हुआ, उसी की चर्चा इस सूत्र में करते हैं। इस मुक्ति के प्रसाद को ही इस पूरे ग्रन्थ में उन्होंने वितरण किया है। अनेक बार लेहुरे, लेहुरे, शब्दों द्वारा जो लेने का आग्रह किया है, वह यही मुक्ति का प्रसाद है। ग्रन्थ में जहाँ भी प्रसाद शब्द आवे उसे मुक्ति का प्रसाद ही समझिये।

पद्यानुवाद

आत्मा की मुक्ति का यह दान है परसाद है।
जो पसारे हाथ वह पाता यही परसाद है ॥ ३५ ॥

सिद्धपद

सुखेन सिद्धं ध्रुवं इति तिलक बहत्तर को ॥ ३९ ॥

टीका—सुखेन सिद्धं ध्रुवपदं करिष्यति प्राप्तमयमात्मा। इति तिलक द्विसप्ततिः सूचयति ॥ ३९ ॥

काव्य

सुखेन सौख्येन ध्रुवान्तरात्मा,
सिद्धिः स्वयं स्वानुभवे प्रसिद्धिम्।
प्राप्नोतु तिलकं तीर्थंकराणाम्,
समाप्ति संसार पदस्य तिलकं ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थ—सुख से सिद्ध ध्रुवपद को यह आत्मा प्राप्त होगा। इस प्रकार से हमारा तिलक बहत्तर का है ॥ ३९ ॥

टीका अर्थ—सिद्ध ध्रुवपद को सुखपूर्वक प्राप्त करेगा। यह आत्मा इस प्रकार यह तिलक बहत्तर का सूचित करता है ॥ ३९ ॥

काव्य अर्थ—सुख से, सौख्य से यह अन्तरात्मा ध्रुव सिद्धि को जो कि स्वयं अपने अनुभव में प्रसिद्धि को प्राप्त हो रही है। उसे प्राप्त करे। यही तीर्थंकरों का तिलक है उसे यह आत्मा प्राप्त करे, संसार की समाप्ति का नाम तिलक है। उसे यह आत्मा प्राप्त करेगा ॥ ३७॥

विशेषार्थ—कितनी दृढ़ आत्म प्रतीति है। अपने परिपूर्ण शुद्ध ध्रुव पद की कितनी निर्मल अनुभूति है। भविष्य में प्राप्त होने वाली परिपूर्ण शुद्ध-पर्याय अनुभव में तो वर्तमान में ही उपस्थित है। यही साक्षात्कार है। जीवन्मुक्त अवस्था है। जो आशीर्वाद पूर्ण पद का दूसरों को दिया जाता है पहले अपने स्वरूप को मिल रहा है। सं० ७२ के तिलक का चित्र सामने है। पूरे जीवन भर उसे एक क्षण को भी नहीं भूले हैं। इसका अर्थ मृत्यु का भय न समझें। प्रत्युत उसके आने के पूर्व ही जो करना है, उसमें किसी भी प्रकार की कमी और त्रुटि न रहे।

इस सूत्र में फिर सं० १५७२ के तिलक का स्मरण किया है। भावना भाई है कि तिलक समाधि सुखेन सिद्धं ध्रुवं, सुख पूर्वक हो और सिद्ध ध्रुव स्वभाव मेरे स्वरूप में वर्तमान रहे ॥ ३९ ॥

पद्यानुवाद

सुख से बनो ध्रुव सिद्ध सुख से तिलक होगा आपका।
सम्वत् बहत्तर में सफल होगा वचन यह आपका ॥ ३६ ॥

आशीर्वाद

ॐ उवन उवन उवं उवनं—
उवनं सोई लोय नन्त प्रवेशं ॥
उवन शरण सोई विलयं—
उवन सुई तारकमल मुक्ति विलसन्ति ॥ ४० ॥

टीका—ॐ ओंकार शुद्ध स्वभावः। उवं स्वभावे। उवन उवन उवयत्युवयति। उवनं उवनं तं उवय स्वरूपं दीप्तस्वभावं। सोई लोय तमवलोकयामि। नन्तप्रवेशं अनन्तप्रवेशं तं स्व-स्वभावे पश्यामि। एवं

उवने शरण सोई विलयं-जन्ममरणभावविलयानन्तरोवयस्वरूपे उवने तारकमल स्वामीतारणतरणदेवः स्वसमय मुक्ति विलसन्ति त्रिकाल शुद्धस्वभावं ॥ ४० ॥

काव्य

ओंकारं उवनं स्वरूप उवनं शुद्धस्य उवनं स्वयं ।
स्वानन्तस्य चतुष्टये प्रविशनं स्वान्तः सुखे ऊवनं ॥
श्री तारणतरणश्च तारकमलो विलसन्ति मुक्ति स्वयं ।
संसारस्य अनादिभाव विलयन् उवनोवनं शाश्वतं ॥

सूत्रार्थ—शुद्धात्मा का उदय हो रहा है। उदय हो रहा है। अपने आत्मा में उस उदय का, उस अनन्त का प्रकाश प्रवेश हो रहा है, मैं देख रहा हूँ। संसार के शरण का विलय करके उसका उदय हो रहा है। अतएव उसी उदय में, सर्वोदय उवन स्वभाव में तारकमल तारण-तरण अपनी मुक्ति का विलास करेंगे ॥ ४० ॥

टीका अर्थ—ॐ ओंकार शुद्धस्वभाव। उव—स्वभाव में। उवन उवन—उदय हो रहा है, उदय हो रहा है। उवनं उवनं—उस उदय स्वरूप देदीप्यमान स्वभाव को। सोई लोय—अवलोकन कर रहा हूँ। उस अनन्त प्रवेश को स्व स्वभाव को मैं अपने शुद्ध चिद्रूप में देख रहा हूँ। इस प्रकार के उवन में जन्म-मरण भाव को विलय करके अपने स्वरूप में उदय हुये चिदानन्द चैतन्य में तारकमल-स्वामी तारणतरण देव अपनी मुक्ति को विलसेंगे, विलास करेंगे अनन्तकाल तक उसी में रमेंगे, रमण करेंगे ॥ ४० ॥

काव्य अर्थ—ओंकार को, उसके उदय को, अपने स्वरूप के उदय को स्वयं शुद्धात्मा के उदय को अपने अनन्त चतुष्टय में प्रवेश करता हुआ, अपने आनन्दस्वरूप में अनुभव कर रहा हूँ मुक्ति अपने तारण-तरण तारकमल को स्वयं विलसेगी, विलास करेगी। जब कि संसार के जन्म-मरण का अनादि भाव नष्ट हो रहा है, और शाश्वत्त अपना उवन स्वयं उदय हो रहा है, फिर मैं क्यों मुक्ति की प्रतीक्षा करूँ?

वह तो स्वयं मुझे स्वीकार करेगी ही। इस प्रकार शुद्धात्मा को आत्मा का आशीर्वाद है ॥ ३८ ॥

विशेषार्थ—अन्त मंगल आशीर्वाद स्वरूप प्रथम अध्याय का यह अन्तिम सूत्र है। आत्मा के संसार परिवर्तनों का विलय होकर अपना स्वरूप अपने में जब उदय होगा, उस समय क्या होगा? श्री तारकमल स्वामी तारणतरणदेव अपने स्वयं स्वरूप में उदय होकर, स्वसमय की मुक्ति का विलास करेंगे, उसमें रमण करेंगे ॥ ४० ॥

पद्यानुवाद

अपने उवन से उवन बन ले ली समाधी उवन में।
सुई समय मुक्ति विलास तारणतरण जिनवर उवन में ॥ ३७ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

●

द्वितीयोऽध्यायः

मङ्गलम्

ॐ नमः उवन सिद्ध नमो नमः ॥ १ ॥

टीका—ओंकार-निज-निराकार-निर्विकार-नित्य-निरंजन-निज-निजा-नन्द-निर्भरनिःशेष द्रव्यभावनोकर्माविरहित शुद्धस्वभाव भावस्य चिच्चैतन्यात्मनः ओंकार स्वभावस्यैव पर्यायवाची ॐ इति। तस्मै ओंकाराय शुद्धस्वरूपाय नमो नमस्कारं करोमि। शुद्धस्वभावं स्वभावे प्रतिष्ठाप्यतमेव तस्मिन्नेव वा स्वरूपाचरणं करणीयमितिनिश्चय मंगलं भाव-नमस्कारमिति सिद्धं। स्वरूपे स्वात्मनिस्वरूपस्योदयं प्राप्तः इति उवन नाम स एवानादि शुद्धसिद्धात्मानिश्चयेन, तं उवन सिद्धं तस्मै उवन सिद्धाय नमोनमः। निजात्मने परम स्वरूपाय नमः ॥ १ ॥

काव्य

ओंकाराय च सिद्धाय उवनाय नमोनमः।
स्वानुभूत्यां प्रसिद्धाय स्वसिद्धाय नमोनमः ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—ओंकार शुद्धात्मा को नमस्कार हो। मेरे उवन सिद्ध शुद्ध स्वभाव को नमस्कार हो ॥ १ ॥

टीका अर्थ—ओंकार निज निराकार निर्विकार नित्य निरंजन निज निजानन्द निर्भर सर्व द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म से रहित शुद्ध स्वभाव के, चिच्चैतन्य आत्मा के ओंकार स्वभाव के ही पर्यायवाची ॐ इस प्रकार उस ओंकार शुद्धस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। शुद्ध स्वभाव को अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित करके उसको ही उसमें ही अपने स्वरूप का आचरण करणीय है। यही निश्चय मंगल है, भाव नमस्कार है। अपने आत्मा में अपने स्वरूप का उदय प्राप्त हो, उसे ही उवन नाम से कहते हैं। वही अनादि शुद्ध सिद्धात्मा निश्चय से है। उस उवन को, उवन सिद्ध को नमस्कार हो, निजात्मा के परम स्वरूप को नमस्कार हो ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—ओंकार सिद्ध को नमस्कार हो। उवन सिद्ध को नमस्कार हो। अपनी अनुभूति में प्रसिद्ध अपने सिद्ध को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥ १ ॥

विशेषार्थ—सिद्धों को नमस्कार करके फिर अपने उवन स्वरूप सिद्ध को नमस्कार किया। एवं अपने उवन स्वभाव में सिद्धों को विराजमान किया, यही परम मंगल है। अपने स्वयं सिद्ध स्वरूप की प्रतीति के साथ सिद्धों को वन्दना करना परमसम्यक्त्व का चिह्न है ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

ओंकार सिद्ध स्वरूप मुझ में है हुआ श्रद्धान यह।
उवन को हो नमन हो, मेरा रहे नित ध्यान यह ॥ १ ॥

स्वामी तारणतरण का समवशरण

उत्पन्न स्वामी तारणतरण केवली समय—पाँच लाख त्रेपन हजार तीन सौ उनईस। अन्मोय कमलावती रुइया-जिन ॥ २ ॥

टीका—स्वामी तारणतरण केवलीसमये समवशरणे समस्त द्वादश-कोष्ठ-प्रकोष्ठाविविभागेषु समप्रवेशमानवानां संख्या नवैक-त्रि-त्रि-पंच-पंचेति भविष्यति। कमलावती नामा महाविदुषी साध्वी, रुइया-जिन विद्वच्छिरोमणिः, अनयोर्द्वयोरनुमोदनास्ति तारणतरण समवशरणे ॥ २ ॥

काव्य

तारणस्तरणः स्वामी भविष्यन्ति ते केवली।
यदा समवशरणे दिव्यवाणी प्रकाशकः ॥ २ ॥
पञ्चलक्षास्त्रिपञ्चाशत्त्रिशतैकोनविंशतिः।
एषा संख्या सभायां च रुइया कमलावती ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—स्वामी तारणतरण केवली का समय पाँच लाख, त्रेपन

हज़ार, तीन सौ उनईस का उत्पन्न होगा। श्री कमलावती और रुइयाजिन की अनुमोदना होगी ॥ २ ॥

टीका अर्थ—स्वामी तारणतरण केवली के समवशरण में समस्त द्वादश कोठादि विभागों में सर्वदेव और मनुष्यों की संख्या नौ-एक-तीन-तीन-पाँच-पाँच होगी अर्थात् पाँच लाख त्रेपन हजार तीन सौ उन्नीस की संख्या होगी। श्री कमलावती महाविदुषी और रुइयाजिन इन दोनों की अनुमोदना है और होगी ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—स्वामी तारणतरण जब अपने समवशरण में दिव्य-वाणी का प्रकाश करने वाले केवली होंगे, उस समय उनका समवशरण पाँच लाख त्रेपन हज़ार तीन सौ उन्नीस भव्य जीवों की संख्या से सुशोभित रहेगा, अनुमोदना करने वाले कमलावती श्री तथा रुइयाजिन भी रहेंगे ॥ २–३ ॥

विशेषार्थ—स्वामी तारणतरण केवली के समय उनके समवशरण में ५,५३,३१९ जीवों का समुदाय रहेगा। इस समुदाय में कौन-कौन कितनी संख्या में रहेंगे ? इसका समाधान आगे तीसरे और चौथे सूत्र में होगा।

श्री गुरु महाराज ने इस सूत्र में अपना भविष्य कथन किया है। यह कथन अवधिज्ञान का विषय है मति और श्रुतज्ञान तो परोक्ष ज्ञान हैं। इतना सूक्ष्म आगामी भवों का प्रत्यक्ष वर्णन प्रत्यक्ष ज्ञान के सामर्थ्य की ही बात है। यह तो अभी अपने विषय का भविष्य वर्णन किया है। आगे अपने शिष्यों के विषय में भी पृथक्-पृथक् भविष्य का विवेचन करेंगे कि–कितने शिष्य ज्योति केवली होंगे ? कितने मनःपर्ययज्ञानी होंगे ? कितने प्रतिगणधर होंगे ? आदि विवेचन आगामी सूत्रों में आ रहा है।

इस द्वितीय सूत्र में और आगे भी सभी सूत्रों में श्री कमलावती और रुइयाजिन की अनुमोदना लिखी है। सो ये दोनों ही प्रमुख थे, और अनेक सूत्रों में इन्हें गणधर शब्द से सम्बोधित किया है। आगे भविष्य में ये दोनों शिष्य गणधर होंगे यह तो सत्य है, किन्तु श्री गुरु महाराज के

वर्तमान जीवन में उनके पूरे श्रीसंघ के ये बहुत बड़े प्रमुख रहे हैं। तारण साहित्य में कमलावती और श्री रुइयाजिन का नाम छाया हुआ है ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

तारणतरण के समवशरण समूह की गिनती यहाँ।
कमलावती रुइया रमण अन्मोय की विनती महा ॥ २ ॥

उन्तालीस सौ उन्नीस की संख्या

विधि—ज्योति केवली ७०० । मनपर्जयज्ञानी ५०० । गणधर ११ । प्रति गणधर १४०० । अवधिज्ञानी १३०१ । सन्तत केवली ३ । अनवधि केवली ३ । राजादानपति १ ॥ एवं उन्तालीस सौ उनईस सुखेन सुखेन मुक्तिगामिनो ॥ ३ ॥

टीका—सूत्रेऽस्मिन्विशेषपदधारिजीवानां संख्या निरूपणम् । नवैक नवत्रिसंख्या सर्वा। संख्येयमन्तर्गत सर्वे सुखेन-सुखेन मुक्तिगामिनो भवन्तु ॥ ३ ॥

काव्य

तृतीयेऽस्मिन्नियं संख्या सूत्रे या च प्रकाशिता।
विशेष पद धारीणां ते सर्वे मुक्तिगामिनः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—समवशरण के ५,५३,३१९ जीवों में से ३९१९ विशेष पद-धारी जीवों की संख्या पृथक्-पृथक् इस प्रकार है—इस विधि से है—ज्योति केवली ७०० । मनपर्ययज्ञानी ५०० । गणधर ११ । प्रतिगणधर १४०० । अवधिज्ञानी १३०१ । सन्तत केवली ३ । अनवधि केवली ३ । राजा दानपति १ । इस प्रकार ३९१९ सुखपूर्वक, सुखपूर्वक मुक्तिगामी हों ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—इस सूत्र में विशेष पदवीधारी जीवों की संख्या निरूपित है। ३९१९ वह संख्या है। इस संख्या के अन्तर्गत सर्व जीव सुख से, सुखपूर्वक मुक्तिगामी हों ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—इस तृतीय सूत्र में यह संख्या जो ३९१९ जीवों की प्रकाशित है, ये सब जीव विशेष पदधारी जीवों में गिने जाते हैं। ये सब सुख से, सुख सहित मुक्तिगामी हों ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में समवशरण के विशेषपदधारी जीवों की गणना है, जो कि तीर्थंकर प्रभु के निकटवर्ती जीव हैं। यह संख्या ३९१९ प्रमाण है। इनमें ज्योति केवली साक्षात् केवलज्ञान के स्वामी हैं। मनः-पर्ययज्ञानी ये भी केवलज्ञान के सन्मुख हैं। गणधर-प्रतिगणधरों का तो प्रमुख स्थान है ही। ये अवधिज्ञानी तपश्चर्या के द्वारा क्षायोपशमिक अवधिज्ञान को प्राप्त करते हैं, न कि भवप्रत्यय। अतएव यह विशेष पद है। सन्तत केवली भी केवलज्ञान के सन्मुख हैं। अनवधि केवली जिन्हें श्रुतज्ञान के पश्चात् ही केवलज्ञान हुआ, अवधिज्ञान के बिना ही जो केवली हो गये वे अनवधि केवली हैं। राजा दानपति जो तीर्थंकर को दीक्षा के पश्चात् प्रथम आहार दान देवें। इन सब विशेष पुण्यशाली, सातिशय मुक्तिगामी जीवों की गणना इनके विशेष गुणों के कारण पृथक् से हुई है। परन्तु ५,५३,३१९ जीवों की गणना में ये जीव सम्मिलित हैं। अब आगे के सूत्र में उसी पूरी गणना का विवरण दे रहे हैं ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

उन्नीस ऊपर शतक उन्तालीस की गिनती यहाँ।
ये मुकुटमणि हैं समवशरण स्वरूप की ज्योती महा ॥ ३ ॥

समवशरण की पूर्ण गणना

सौधर्म स्वर्गी ८००० । जतिसिद्धगति ८००० ।
अनुत्तरगतवैक्रियक ४००० । पूर्वधर ३००० ।
अर्जिका ३६००० । श्राविका ३००००० । श्रावक
१००००० । साधक ९०००० । कुवादी जय ४००
इति ॥ ४ ॥

टीका—शेषविशेषजीवानां संख्या शून्य-शून्य-चत्वारि-नव चत्वारि

पंचेत्यस्मिन्सूत्रे गणना कृता। सुखेन-सुखेन एते सर्वे जीवाः मुक्तिगामिनो भवन्तु ॥ ४ ॥

काव्य

तृतीये वा तुरीये वा सूत्रे संख्या निरूपिता।
पृथक्पृथक् स्वरूपेण ज्ञातव्यास्ति मुमुक्षुभिः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—सौधर्मस्वर्गीय ८००० । जतिसिद्धगति ८००० । अनुत्तरगत-वैक्रियक ४००० । पूर्वधर ३००० । अर्जिका ३६००० । श्राविका ३००००० । श्रावक १००००० । साधक ९०००० । कुवादीजय ४०० । इस प्रकार ये सब और तृतीय सूत्र के ३९१९ ये सब मिलकर ५५३३१९ पूरी संख्या है ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—शेषविशेष जीवों की संख्या ५४९४०० की इस सूत्र में गणना की है। ये सर्व जीव सुख से मुक्तिगामी हों।

काव्य अर्थ—तीसरे या चौथे सूत्र में जो संख्या निरूपित है उसे पृथक् पृथक् रूप में जानकर एकत्र संख्या ५५३३१९ यह पूरे समवशरण की गणना समझना चाहिये ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—३९१९ की संख्या तीसरे सूत्र की तथा ५४९४०० की संख्या इस सूत्र की, इस प्रकार इन दोनों संख्याओं को मिलाने से यह पूरे समवशरण की संख्या ५५३३१९ इस प्रकार बनती है। इस सूत्र की संख्या में सर्वसाधारण देव, मनुष्य, मुनि, श्रावक आदि सभी हैं। श्री तारण-तरण केवली के समवशरण में यह संख्या प्रमाण भव्य जीव एकत्रित होंगे ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

है शेष गणना समवसृत की पूर्णता इस सूत्र में।
तारणतरण जिन केवली का कथन होगा सूत्र में ॥ ४ ॥

पारणा और योग ध्यान बिन

पारणाबिन पैंतालीस ॥ ५ ॥
योग ध्यान बिन छह ॥ ६ ॥

**सुखेन सुखेन उन्तालीस सौ उनईस, अन्मोय कमला-
वती रुइयाजिन ॥ ७ ॥**

टीका—यदा सार्धैकमासोपवासदिवसानन्तराहारं करिष्यन्ति श्रीतारणतरणजिनवरेन्द्रस्तदाहारदिवसस्य नाम पारणा-दिनेति पंचाश्चर्यादिमहोत्सवैर्ख्यातो भविष्यति, योगध्यानं तु केवलज्ञानप्राप्ति पूर्वं यद्ध्यानं करिष्यन्ति तस्य नाम योगध्यानेति प्रसिद्धं। दिनानां संख्या षडेति। सुखेन सुखेनैकोनचत्वारिंशदेकोनविंशति संख्यानन्तर्गत जीवानामनुमोदकौ कमलावती रुइयाजिनौ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

काव्य

**पारणा च योगध्यानदिनानां गणना कृता।
कमलावती जिनो रुइया तावनुमोदकौ ॥ ६ ॥**

सूत्रार्थ—पारणादिन पैंतालिस, योगध्यान दिन छह सुखपूर्वक सुखपूर्वक उन्तालीस सौ उन्नीस जीवों की अनुमोदना कमलावती और रुइयाजिन कर रहे हैं।

टीका अर्थ—जब ४५ दिवस के उपवास के अनन्तर श्रीतारणतरण जिनवरेन्द्र आहार करेंगे, उस आहार दिवस का नाम पारणादिन इस प्रकार पंचाश्चर्यादि महोत्सवों के द्वारा प्रसिद्ध होगा। और योगध्यान केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व जो ध्यान होगा उसके दिनों की संख्या ६ होगी। सुख सहित ३९१९ जीवों की अनुमोदना कमलावती और रुइयाजिन कर रहे हैं ॥

काव्य अर्थ—इन सूत्रों में पारणा और योगध्यान के दिनों की गणना बताई है। कमलावती और रुइयाजिन सबके अनुमोदक हैं ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—तीर्थंकर प्रभु दीक्षा कल्याणक में दीक्षा लेते ही जो कुछ दिन मासादि के लिये अनशन तप धारण करते हैं और आहारदान के दिन तक जितने दिनों की तपस्या होती है वही पाँचवें सूत्र में कही गई है।

योग ध्यान दिन क्षपक श्रेणी की तैयारी के ध्यान दिवस छह् होंगे। जो ३९१९ जीवों की संख्या तीसरे सूत्रमें कही गई थी। यहाँ सुख-पूर्वक मुक्ति प्राप्त करने का आशीर्वाद उन्हें दिया है। अनुमोदक हैं कमलावती और रुइयाजिन।

पद्यानुवाद

पारणा दिन पंच चालिस दिवस का होगा सुनो !
है योग ध्यान प्रमाण दिन छह् का हृदय में ही गुनो ॥ ५ ॥
सुखेन मुक्ति स्वभाव उन्तालीस सौ उन्नीस ये।
अन्मोय कमलावती रुइया जिन प्रमुख दो शिष्य ये ॥ ६ ॥

सातसौ ज्योति केवली

सातसौ ज्योति केवली संसर्ग सर्वमुक्तिगामिनो सुखेन सुखेन ॥ विधि—उत्पन्न संसर्ग ज्योति रुइया-जिन ॥ ८ ॥

टीका—सप्तशतसंख्या ज्योतिकेवलिनः सुखेन-सुखेन-मुक्तिगामिनश्च ते भविष्यन्ति श्रीतारणतरणसमवशरणपरिषदि। एवं प्रकारेण संसर्गेति एकस्मिन्नेव समये सर्वे भविष्यन्ति ज्योतिकेवलिनस्तेषां मध्ये रुइयाजिनोऽपि ज्योतिकेवलीपदप्राप्ति करिष्यन्ति। वक्ष्यमाण सूत्रेषु सप्तदशशक्तिसंज्ञकाश्च ताः कमलावत्यादि सप्तदशार्जिका-समूहोऽपि ज्योतिकेवलिपदप्राप्तियोग्यतासम्पन्नो भविष्यति श्रीगुरुदेव समये समवशरणे वा ॥ ८ ॥

काव्य

केवलिनो शतः सप्त ज्योतिरित्यभिधीयते।
ज्योतिः सप्तदशा शक्तिः समासेन प्ररूप्यते ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—एक साथ विराजमान सातसौ ज्योति केवली सर्वमुक्तिगामी हैं। इस प्रकार इनके साथ ही सुख से श्री रुइयाजिन ज्योति केवली भी मुक्तिगामी उत्पन्न होंगे ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—तारणतरण जिनकी समवशरण परिषद में ७०० मुक्तिगामी ज्योति केवली होंगे। इस प्रकार एक साथ एक ही समय में एक ही जगह में सर्व ज्योतिकेवली होंगे, उनमें ही रुइयाजिन ज्योति केवली भी उत्पन्न पद प्राप्त करेंगे। आगे सूत्रों में १७ शक्तियों की नाम संज्ञा युक्त कमलावती आदि १७ अर्जिकाओं का समूह भी ज्योति केवली पद को प्राप्त होगा। श्रीगुरुदेव के समय में, समवशरण में यह भाव है॥ ८॥

काव्य अर्थ—सातसौ केवली ज्योति इस नाम से कहे जावेंगे उनमें ही १७ शक्तियों की जो ज्योति होंगी, उनका संक्षेप में निरूपण करते हैं॥ ७॥

विशेषार्थ—सातसौ ज्योतिकेवली जो मुक्ति प्राप्त करेंगे उनमें श्री रुइयारमणजी भी ज्योति केवली होकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। सो सबको और उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया गया है। इसी प्रकार आगे के १७ सूत्रों में ज्योति केवली होनेवाली १७ विदुषी साध्वी आत्माओं के नाम आ रहे हैं जिन्हें १७ शक्तियों के रूप में पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। वास्तव में नाम तो १७ शक्तियों के हैं, परन्तु १७ विदुषियाँ श्रीसंघ में श्री कमलावती आदि थीं, उनको ज्योति केवली पद प्राप्त होगा यह जानकर शक्तियों के नाम उन्हें प्रदान कर सन्मानित किया है। आगे के सूत्रों में १७ शक्तियों का शक्तियों के रूप में ही वर्णन होगा, १७ साध्वियाँ और १ श्री रुइयाजिन ऐसे १८ जीव ज्योति केवली होनेवाली आत्माओं को ७०० ज्योति केवलियों के साथ ही सर्व शब्द के अन्तर्गत करके यहाँ आशीर्वाद दिया गया है। आगे के सूत्रों को शक्तियों के ही प्ररूपक समझना चाहिये॥ ८॥

पद्यानुवाद

रुइयारमण आदिक अठारह शिष्य ज्योती केवली।
होकर बनेंगे मुक्तिगामी आतमा सुखमें ढली॥ ७॥

सप्तदश शक्तिप्ररूपणा

१. कमलावती शक्ति

उत्पन्न संसर्ग ज्योति कमलावती ॥ ९ ॥

टीका—अनन्तशक्तिस्वरूपोऽयमात्मा। अनन्तशक्तीनामादि- शक्तिर्ज्योतिः कमलावती। अनन्तगुणसंसर्गे वर्तमानापि पृथक्स्वरूपेति। संसर्गज्योतिः चिदात्मन्युपादाने वा उत्पन्ना, कीदृशी कमलावती शक्तिः? आत्मन्यनन्तगुणाः। सर्वेगुणाः एकक्षेत्रावगाहसम्बन्धिनोऽपि पृथक्-पृथक् स्वरूपं-लक्षणं धरन्ति। एवं च गुणः प्रत्येकः कमलवत्प्रफुल्लतां प्राप्नोति, अतएव गुणानां प्रत्येकानां किं वा सामूहिकानन्तगुणप्रसन्नतां स्पष्टी- करोति—प्रकटीकरोति, कमलावती कमलवद्गुणे विकसिते प्रफुल्लिते सति वा स्वसुरभिगुणैः प्रसरति चिद्रूपस्यान्तरुपवने ॥ ९ ॥

काव्य

कमलावती कमलपुष्प समा प्रसन्ना,
सर्वे हसन्ति स्वगुणा अनया प्रसन्नाः।
चैतन्यभाव परद्रव्य स्वभाव भिन्नः,
सर्वान्गुणान् कमलतां कमले! कुरु त्वं ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्तशक्तियों के साथ एक कमलावती नाम की शक्ति ज्योतिस्वरूपा उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—अनन्तशक्ति स्वरूप यह आत्मा है। अनन्तशक्तियों की आदि शक्ति ज्योतिस्वरूप कमलावती है। अनन्त गुणों के साथ वर्तमान होते हुये भी भिन्नस्वरूप है। सहवर्ती गुणों के साथ रहने वाली यह ज्योति चेतन्यात्मा उपादान में उत्पन्न होने वाली है। कैसी है कमलावती शक्ति? आत्मा में अनन्त गुण हैं। सर्वगुण एकक्षेत्रावगाही है। फिर भी पृथक्-पृथक् स्वरूप लक्षण को प्रत्येक गुण धारण करता है। इस प्रकार प्रत्येक गुण कमल के समान प्रफुल्लता को प्राप्त होता है। अतएव प्रत्येक गुण की प्रफुल्लता अथवा समस्त अनन्त गुणों की प्रफुल्लता

को स्पष्ट करने वाली प्रगट करने वाली कमलावती, कमल पुष्प के समान प्रफुल्लित होने पर अपनी सुरभि सुगन्धि को फैलाती है, कहाँ ? अपने चिद्रूप के अन्तरंग उपवन में ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—यह कमलावती कमल पुष्प के समान स्वयं प्रफुल्लित है। इसके द्वारा ही अपने समस्त गुण प्रफुल्लित होते हैं। चैतन्यभाव परद्रव्य के स्वभाव से भिन्न है ऐसा बोध करने वाली हे कमलावती ! मेरे समस्त गुणों को कमल के समान ही प्रसन्न करो, प्रफुल्लित करो ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—उपादान में कमलवत् अपने गुणों को प्रफुल्लित करने की कमलावती शक्ति यदि न हो तो फिर निमित्तों में ऐसा कौनसा निमित्त है जो केवलज्ञानादि गुणों को प्रगट करेगा ? तीन लोक में ऐसा कोई निमित्त नहीं जो उपादान का किंचित् कोई भी काम करे। उपादान का काम उपादान स्वयं करता है, पर वस्तुयें तो निमित्त बन कर बाहर उपस्थित रहती हैं। कमलावती शक्ति एक गुण को और अनन्त गुणों को भी एक सा प्रफुल्लित करती है। एक गुण में या अनन्त गुणों में जो प्रगट होने की या खिलने की शक्ति है उसी का नाम कमलावती है। यह षट्-कमलों से सुशोभित है। इसको प्रफुल्लित करने वाले छत्तीस अर्क—सूर्य हैं ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

है आत्मा की शक्ति कमलावती कमल स्वरूप ये।
पर से करेगी भिन्न निज को, यही इसका रूप ये ॥ ८ ॥

२. चरणावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति चरणावती ॥ १० ॥

टीका—चैतन्यज्योतिश्चरणावती चिदात्मन्येवोत्पन्ना भवति, अनन्त-गुणेष्वभिन्नापिलक्षणभेदेन भेदस्वरूपास्तिका स्वरूपा सा चरणावती ? स्वरूपाचरणोदये स्वचिद्रूपेऽनन्तगुणानुभवकारणा चरणावती। इयमेता-

दृशोज्ञप्तिः एषा विना न सम्यग्दर्शनमुदयति, नोपशम, क्षपकश्रेण्यामारोहति जीवः। जयस्वरूपा जयवन्ता शक्ति ॥ १० ॥

काव्य

चरणावती गुणसमाचरणे समर्था,
चेता निजात्मनि गुणाचरणं करोति ।
निखिलान्निजात्मनि स्वशक्त्यनुभूतिमार्गे,
सर्वान्गुणाश्चरणतां चरणे ! कुरु त्वं ! ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों के साथ चरणावती नाम की शक्ति ज्योति स्वरूपा उत्पन्न होती है। ॥ १० ॥

टीका अर्थ—चैतन्य ज्योति चरणावती आत्मा में ही उत्पन्न होती है। अनन्त गुणों से अभिन्न होने पर भी लक्षणभेद से भेद स्वरूपा है। कैसा स्वरूप है उस चरणावती का ? स्वरूपाचरण के उदय में अपने अनन्त गुणों को एक साथ अनुभव कराने वाली यह चरणावती है। यह ऐसी शक्ति है, कि जिसके बिना सम्यग्दर्शन का उदय नहीं होता। उपशम तथा क्षपकश्रेणी पर भी आरोहण नहीं होता। जय स्वरूप जयवन्त यह शक्ति है ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—अपने अनन्त गुणों को अपने आचरण में लाने की सामर्थ्य ही चरणावती है। आत्मा अपने आत्मा में अपने गुणों का आचरण करता है। अतएव समस्त शक्तियों को अपने अनुभूति मार्ग में लाने के लिये मेरे समस्त गुणों को हे चरणावती ? आचरण में आने की सामर्थ्य को प्रदान करो ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—ज्ञायक भाव अपने निज गुणों में जब स्थिर हो तो उसे स्वरूपाचरण कहते हैं। अपने स्वरूप को आचरण करना स्वरूपाचरण है। स्वरूपाचरण को चारित्र कहते हैं। यह गुण चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। और अन्त में यथाख्यात बनकर आत्मा को अपनी पूर्ण अवस्था में स्थिर कर देता है। चतुर्थ गुणस्थान से इसी एक गुण का आश्रय पाकर

आत्मा ऊपर के गुणस्थानों को प्राप्त करता है यदि बाह्यचारित्र हो और स्वरूपाचरण न हो तो फिर गुणस्थान का तो नाम ही नहीं रहेगा। स्वरूपाचरण की वृद्धि से ही गुणस्थान बढ़ते हैं। अतएव चारित्रगुण का नाम ही चरणावती है। स्वरूपाचरण से ही गुणस्थान बनते हैं। अतएव यह चरणावती नाम की शक्ति आत्मा के चारित्रगुण को प्रगट करने वाली है। स्वरूपाचरण के अनुसार बाह्यचारित्र तो अपने आप बनता है। बाह्यचारित्र को द्रव्यचारित्र कहते हैं। यदि बाहर का चारित्र व्रतादि और मूलगुणादि सब हों और स्वरूपाचरण न हो तब उस बाह्यचारित्र का नाम ही द्रव्यलिंग है और उसका पालने वाला द्रव्यलिंगी है, अतएव स्वरूपाचरण के बिना बाह्यचारित्र संसार का हेतु है। स्वरूपाचरण ही भावलिंग है। इस भावलिंग को ही प्रगट करने वाली यह शक्ति है ॥१०॥

पद्यानुवाद

चरणावती शक्ती स्वरूपाचरण की जननी महा।
सम्यक्त्व से प्रारम्भ इसका कार्य होता है यहाँ ॥ ९ ॥

३. करणावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति करणावती ॥ ११ ॥

टीका—करणावतीचैतन्यज्योतिश्चिवात्मनिगुणानन्तसंयुक्ता सह वर्तमानापि स्वलक्षणेन विभूषिता भवत्युत्पन्ना स्वशुद्ध स्वभावे। करणावतीशक्तिश्चैतादृशी परिपूर्णस्वतन्त्रता सम्पन्ना या स्वकारणेनैव स्वकार्यं करोति। करणकारकस्यप्रमुखतायुता। शब्दानामनेकार्थत्वा-त्करणपरिणामाश्च पंचलब्धयः करणलब्धिर्वा। करणकारकेणैवात्मात्म-नैवात्मानं प्राप्नोति अनन्तगुणविभूषितात्मनः गुणप्रत्येकस्यसामर्थ्यं प्रकटीकरोति करणावती ॥ ११ ॥

काव्य

करणावती करण कारकमभ्युपैति,
स्वं स्वेन स्वे स्वकरणं प्रकटीकरोति।

शक्तिश्च लब्धिकरणा करणावती सा,
सर्वान्गुणान् करणतां करणे ! कुरु त्वं ।। १० ।।

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों के साथ करणावती नामकी शक्ति ज्योतिस्वरूपा उत्पन्न होती है ।। ११ ।।

टीका अर्थ—चैतन्य ज्योति करणावती आत्मा में अनन्त गुणों के साथ वर्तमान होते हुये अपने स्वतन्त्र लक्षणों को लेकर प्रगट होती है। करणावती शक्ति ऐसी है कि परिपूर्ण स्वतन्त्रता सम्पन्न जो अपने कारण से ही अपना कार्य करती है। करणकारक की प्रमुखता सहित है। शब्दों के अनेक अर्थ होने से करण नाम परिणामों का है और करणलब्धि का है। करण कारक से ही आत्मा, आत्मा के द्वारा आत्मा को प्राप्त करता है। अनन्त गुण विभूषित आत्मा के प्रत्येक गुण की सामर्थ्य को करणावती प्रगट करती है ।। ११ ।।

काव्य अर्थ—करणावती शक्ति करण कारक को प्राप्त होती है। अपने को अपने द्वारा अपने में अपने करण को प्रकट करती है। यह शक्ति करणलब्धि को देती है आत्मा का समस्त कार्य करती है। अतएव हे करणावती मेरे समस्त गुणों को करणरूप करो ।। १० ।।

विशेषार्थ—करणावती शक्ति व्याकरण के षट् कारकों में से केवल तीसरे करण कारक के अर्थ में ही अपना प्रयोजन रखती है। इस कारक में जो शब्द का रूप बनता है, उसका अर्थ "द्वारा" होता है आत्मा का कार्य आत्मा के द्वारा होना, यही इस शक्ति का अभिप्राय है। तीसरे कारक का अर्थ अपने द्वारा होने से छहों कारकों का अर्थ बदल जाता है। जैसे—अपना, अपने को, अपने द्वारा, अपने लिये, अपने से, अपना, अपने में कार्य होना। जहाँ करण कारक में अपने द्वारा कार्य हुआ कि फिर परद्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यही स्वाश्रय का पाठ करणावती शक्ति जीव के समक्ष रखती है। जीव का काम स्वतः जीव करता है ।। ११ ।।

पद्यानुवाद

करणावती निजभाव को निज से मिला देती सदा ।
आत्मा स्वतन्त्र त्रिकाल है डंका बजा देती सदा ॥ १० ॥

४. विन्दावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति विन्दावती ॥ १२ ॥

टीका—निजनिर्विकल्पशक्तिःज्योतिर्विन्दावती, भावमुक्तिप्राप्तिस्वरूपोत्पन्ना, विन्दावती निजनिर्विकल्पैकस्वभावः। विन्देति प्राप्ता। अद्वितीयस्वभावोऽनन्यभावश्च। जीवन्मुक्तस्वभावोभावमोक्षसमापआत्मा विन्दावती युक्तः। जीवस्यानन्तगुणा सर्वेऽपि विन्दावतीशक्ति संयुक्ताः सन्ति। सर्वेगुणाश्च स्वरूपे प्राप्ताः। सर्वेषां तेषां गुणानांविकासं करोति विन्दावती। प्रकटीकरोति विन्दुस्वभावमनन्यभावमात्मनः। ज्ञायते वा तया विन्दुलक्षणं गुणानां लक्ष्यविन्दोरपि। विद्यते स्वशुद्धस्वभावे एतादृशी शक्तिर्विन्दावती ॥ १२ ॥

काव्य

विन्दावती सकलविन्दुस्वभावभावे,
भावे भवन्ति गुणसर्वं, विभाव मुक्तं ।
मुक्ति ददाति निजप्राप्ति स्वरूपविन्दा,
विन्दा करोति मम शून्य मयं स्वभावम् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों के साथ ज्योतिस्वभावा विन्दावती नाम की एक शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—अपनी निर्विकल्प शक्ति ज्योति स्वरूपा विन्दावती है। यह भावमुक्ति स्वरूप उत्पन्न होती है। निर्विकल्प एक स्वभाव, अद्वितीय स्वभाव, अनन्यभाव स्वभाव संयुक्ता यह विन्दावती है। इस शक्ति से संयुक्त जीव जीवन्मुक्त अवस्था वाला होता है। जीव के समस्त गुण इस शक्ति से व्याप्त हैं उन सभी गुणों का विकास यह शक्ति करती है। विन्दुस्वभाव अनन्य भाव को प्रगट करती है। विन्दु स्वभाव या लक्ष्य

बिन्दु जाना जाता है। ऐसी यह शक्ति शुद्धस्वभाव आत्मा में विद्यमान है ॥ १२ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा के भाव में जो समस्त विन्दु स्वभाव है वही विन्दावती शक्ति है। अपने भाव में सर्वविभावों से मुक्त अपने गुणों को प्रगट करती है। निज प्राप्ति स्वरूप यह शक्ति मुक्ति को देती है। और यही शक्ति मेरे स्वभाव को परभावों से शून्य करती है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—अपने मुक्ति स्वभाव की प्राप्ति यह विन्दावती शक्ति है। प्रत्येक गुण इस शक्ति से सम्पन्न है, मुक्तिस्वभावयुक्त है। इस प्रकार आत्मा और आत्मा के अनन्त गुण आत्मा में ही प्राप्य हैं। यह शक्ति अपने स्वरूप से मिलाती है। परद्रव्यों से आत्मा को पृथक् करती है। शून्य समाधि में आत्मा के स्वभाव को स्थापित करती है ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

विन्दावती निजलक्ष्यविन्दु स्वनिर्विकल्प समाधि का।
देती, तथा है दुःख खोती आधि-व्याधि उपाधि का ॥ ११ ॥

५. भक्तावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति भक्तावती ॥ १३ ॥

टीका—ज्योतिर्ममभक्तावत्युत्पन्ना स्वभावे शुद्धात्मप्रदेशे। गुणानां-विभागं लक्षणभेदेन करोतीति भक्तावती। एतादृशी शक्तिर्भक्तावती एषा विना न परिचयं प्राप्नोति पृथक्-पृथक् गुणानां। गुणस्वरूपेचैतन्यपिण्ड-शुद्धस्वभावे भेदज्ञानस्य जननी भक्तावती ॥ १३ ॥

काव्य

भक्तावती विभजते गुण राशि मध्ये,
सर्वैर्गुणैर्निजनिजं भजते प्रकाशम्।
भक्ति करोति गुण पिण्ड स्वरूप भावे,
भक्ता करोति निज भक्तिमतः स्वभावे ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों के साथ एक भक्तावती नाम की शक्ति ज्योति स्वरूपा उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—अपने स्वभाव में शुद्धात्म प्रदेशों में मेरी आत्मज्योति भक्तावती उत्पन्न होती है। यह भक्तावती लक्षण भेद से गुणों का विभाग करती है। यह ऐसी शक्ति है कि इसके बिना भिन्न-भिन्न गुणों का पृथक् रूप में परिचय नहीं मिलता। अपने गुण स्वरूप चैतन्य पिण्ड में, अपने भाव में भेदज्ञान की जननी यही है ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—गुणों की राशि में भक्तावती प्रत्येक गुण का ज्ञान पृथक्-पृथक् कराती है और प्रत्येक गुण अपना-अपना प्रकाश अपने आप में प्रकाशित करता है। अतः गुणों के पिण्ड चैतन्य स्वरूप में और उसके निज-स्वभाव में भक्ति करने वाली यह भक्तावती शक्ति है ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—अनन्त गुणों में परस्पर अभिन्न एक क्षेत्रावगाह निवास करते हुये भी पृथक्-पृथक् अपने स्वतन्त्र लक्षणों से संयुक्त जानने में आने की शक्ति है, इसी का नाम भक्तावती शक्ति है। भक्तावती अनन्त गुणों को पृथक्-पृथक् रूप में पहिचान कराने वाली है। यदि गुणों में यह शक्ति न होती तो अनेक गुणों में से एक गुण को अलग से जानना असम्भव होता और ऐसा होने से अपने स्वयं स्वरूप की प्राप्ति का मार्ग ही न रहता। श्रद्धा गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण ये आत्मा के गुण हैं। इनसे ही परिचित होकर जीव अपने पूर्ण स्वरूप में पहुँचता है। अतएव भक्तावती शक्ति आत्मा में, आत्मा के प्रत्येक गुण में विद्यमान होने से वह गुण बहुत शीघ्र अनुभव में आता है ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

कौन गुण ज्ञातव्य था ? रहते हुये भी पास में।
भक्तावती शक्ती न होती आत्मा के पास में ॥ १२ ॥

६. जयनावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति जयनावती ॥ १४ ॥

टीका—जयवती जयनावती, ज्योतिस्वरूपा जयति घात्यघाति-कर्मरिपूनिति जयनावती। स्वरूपे एवोत्पन्ना भवति। स्वप्रत्येक चिद्गुणेस्वप्रतिपक्षि कर्मघ्नाशक्तिर्विद्यते। यथा—मिथ्यात्वनाशकत्व-शक्तिर्विद्यते सम्यक्त्वगुणे, अज्ञाननाशकत्वशक्तिस्तु ज्ञाने। जयनशीला-स्वभावाशक्तीनां प्रकाशिका जयनावती ॥ १४ ॥

काव्य

जयनावती जिनयति प्रतिपक्षिभावान्,
सर्वे गुणाः जयनशीलस्वभावयुक्ताः।
शक्तिर्ददाति पदमव्ययमात्मशान्तिम्,
शक्तिर्ददाति जयवंत पदं जिनेन्द्रम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों में एक जयनावती नाम की शक्ति ज्योति स्वरूपा उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥

टीका अर्थ—जयवती जयनावती ज्योतिस्वरूपा शक्ति घाति अघाति कर्मों को जीतती है, स्वरूप में उत्पन्न होती है। अपने प्रत्येक चिद्गुण में अपने प्रतिपक्षि कर्म को नाश करने की शक्ति उपस्थित है। जैसे मिथ्यात्व को नाश करने की शक्ति सम्यक्त्व में है। अज्ञान को नाश करने की शक्ति ज्ञान में है। जयनशीला सर्व शक्तियों को प्रकाशित करने वाली महाशक्ति जयनावती है ॥ १४ ॥

काव्य अर्थ—जयनावती शक्ति अपने प्रतिपक्षी कर्मों की विजय करती है। सर्व गुण जयनशील स्वभाव से युक्त है। यह शक्ति अव्यय पद और आत्मशान्ति को देती है। और जयवन्त जिनेन्द्र पद को देती है ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—जीव को जिन बनाने वाली जयनावती शक्ति है। जयतीति जिनः। जयनशीलस्वभावसंयुक्तो जिनः। जीव के अपने स्वभाव

में विभाव से जूझकर जीतने की शक्ति है। यह शक्ति न होती तो जिनमार्ग की प्राप्ति भी न होती। चौथे गुणस्थान से इस महाशक्ति का प्रारम्भ या प्रादुर्भाव होता है और आगे क्रम से बढ़ते हुये तेरहवें पर पहुँच कर जिनेन्द्र पद की प्राप्ति कर लेना इसी शक्ति का प्रताप है। यह शक्ति शक्ति रूप में प्रत्येक जीव में विद्यमान है। जिस जीव ने इसको व्यक्त कर लिया वह जिनेन्द्र हो गया। "जिन" यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, इस शक्ति को व्यक्त करने वालों का ही नाम जिन है। ऐसी यह शक्ति जयनावती है ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

ज्योति जयनावती शक्ती जूझती है कर्म से।
जीत कर जिनवर बनाती निज गुणों के मर्म से ॥ १३ ॥

७. सुवनावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति सुवनावती ॥ १५ ॥

टीका—अर्हत्प्रवचनादागता ज्ञाता ज्योतिःस्वरूपा सुवनावती शक्तिः। सुष्ठुप्रवचने वक्तव्या सुवयना। श्रुतज्ञानेन प्रकाशिता सुवना। श्रोतृत्वशक्तियुक्ता सुवना। दिव्यवाणीविभूषिता स्वयं सुष्ठुप्रवचना सा सुवनावती। आत्मनः स्वगुणाः शक्तयो वा सन्ति स्वपरैर्वक्तव्याः। गुणानां वक्तव्यता, सप्तभंग-स्याद्वादवचनैर्ज्ञायते अनेन श्रुतज्ञानेन तन्नाम सुवनस्वभावः श्रोताभावस्तदेवशक्तिः सुवनावती नाम ॥ १५ ॥

काव्य

वक्तव्यमस्ति तत्सर्वगुण स्वरूपं,
जैनेन्द्र दिव्यवचनैः प्रकटी भवन्ति।
सुवनावती सुवयना शुद्धस्वभावा,
वक्तव्यता मम गुणेषु ददाति शक्तिः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों के साथ सुवनावती नाम की शक्ति ज्योतिस्वरूपा उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—अर्हत्प्रवचन से आई और जानी गई ज्योति सुवनावती शक्ति है। श्रेष्ठप्रवचन में वक्तव्य सुवयना है। श्रुतज्ञान के द्वारा प्रकाशित सुवनावती है। श्रोतृत्वशक्ति युक्त सुवनावती है। दिव्यवाणी से विभूषित स्वयं श्रेष्ठ प्रवचना वह सुवनावती है। आत्मा के अपने गुण वा शक्ति स्वपर के द्वारा भी वक्तव्य हैं। गुणों की वक्तव्यता सप्तभंग, स्याद्वाद वचनों से जिसके द्वारा या जिस श्रुतज्ञान के द्वारा जानी जावे उसका नाम सुवन स्वभाव है, वही श्रोता भाव है, वही सुवनावती नाम की शक्ति है॥ १५॥

काव्य अर्थ—अपनी आत्मा के समस्त गुण कथन करने के योग्य हैं, जिनेन्द्र की दिव्यवाणी से प्रगट हैं। सुवनावती यह सुवचना शुद्धस्वभाव वाली है। मेरे समस्त गुणों में यह वक्तव्यता प्रदान करती है॥ १४॥

विशेषार्थ—श्रवण करने वाले श्रोता को सुवन कहते हैं। श्रुतज्ञान संयुक्त को सुवन कहते हैं। सम्यक् वचनों को सुवयनावती शक्ति कहते हैं। सुवनावती शक्ति अरहन्तावस्था में प्रगट होती है। दिव्यवाणी के द्वारा शुद्धात्मा के स्वरूप को कहना सुवनावती है।

सुवन स्वभाव तो जीवमात्र का है। श्रुतज्ञान का विकास होने पर जब वह अपने स्वरूप की ओर लौटता है तब अन्तर्मुहूर्त में अपने स्वयं स्वरूप को पाता है। विचार करने का कार्य, वितर्क करने की शक्ति श्रुतज्ञान की है। यही श्रुतज्ञान सुवन स्वभाव है, क्योंकि श्रुत शब्द का अर्थ भी सुना हुआ होता है। द्वादशांग का पूरा ज्ञान सुना हुआ है, अतएव श्रुतज्ञान है।

विचार या वितर्क शक्ति जीव में न होती तो जीव अपने हित की बात कैसे सोचता, यही श्रुतज्ञान की शक्ति है। इस शक्ति के जागृत होने पर जीव जागता है। सम्यक्त्व के सन्मुख करने वाली, अपना विचार कराने वाली, ज्ञान से मिलाने वाली जिनवचन को समझने, समझाने वाली यही शक्ति सुवनावती जीव के स्वरूप में विद्यमान है॥ १५॥

पद्यानुवाद

निज के समस्त अनन्त गुण दिव्यध्वनी के कथन से ।
हों श्रवण शक्ति स्वरूप शुभ सुवनावती के मथन से ॥ १४ ॥

८. विगसावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति विगसावती ॥ १६ ॥

टीका—दिव्यदेदीप्यमानात्मनःगुणानां विकासं करोति विगसावती, सा तु स्वयं ज्योतिःस्वरूपास्वस्वभावे उत्पन्ना भवति। जीवानामनन्त-गुणाः विकसितुं योग्याः सामर्थ्य-शक्ति संयुक्ताः सन्ति। सामर्थ्य योग्यता विकासं करोति या शक्तिः सा विगसावती। अनन्तगुणानां स्वभाव प्रकाशनं करोति च ॥ १६ ॥

काव्य

चैतन्य ज्ञानादि गुणाः स्वभावाः,
विकास युक्ताश्च करोति शक्तिः ॥
यथाफलं चिर्भटिका स्वभावात्,
शक्ते! विकासं कुरु सर्व भावे ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा के अनन्त गुणों में एक विगसावती नाम की शक्ति है, जो ज्योति स्वरूप आत्मा में ही उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

टीका अर्थ—यह विगसावती शक्ति आत्मा के दिव्य देदीप्यमान गुणों का विकास करती है। अपने-अपने भावों में वह स्वयं ज्योतिवंत उत्पन्न होती है। जीवों के अनन्त गुणों में अपना-अपना विकास करने की सामर्थ्य-शक्ति विद्यमान है। इस सामर्थ्य योग्यता का जो शक्ति विकास करती है वह विगसावती है। अनन्त गुणों के स्वभाव को प्रकाशित करती है ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—वह विगसावती शक्ति चैतन्य के ज्ञानादि गुण स्वभाव को विकास शक्ति सम्पन्न करती है। जैसे चिर्भटिका (डंगरा) ताल का

फल परिपाक काल में स्वयं विकसित होता है। हे शक्ते ! सर्व भावों का विकास करो ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—यह आठवीं विगसावती शक्ति है। जीव जब अपने अतीन्द्रिय आनन्द को पहिचानता है उस समय अपने स्वभाव में विगसता है, विभोर होता है। संसार को, समस्त पर द्रव्यों को भूल जाता है। पर पदार्थों से दृष्टि को मोड़ लेता है। जब तक अपने स्वरूप को समझ कर उसमें आनन्द की अनुभूति नहीं होगी तब तक ऊपर के गुणस्थानों में बढ़ना असंभव है। अन्तर के आनन्द को यही शक्ति देती है।

भीतर के आनन्द से जीव विगसता है, यह शक्ति भीतर ही भीतर विगसाती है। जब आनन्द भीतर नहीं समाता है तब वह छद्मस्थ जीवों में प्रसन्नता के रूप में बाहर फूटकर निकलता है। यहाँ डंगरा (फूट) नाम के फल का उदाहरण इस शक्ति को ठीक लागू होता है। वह फल अपनी परिपक्व अवस्था में फूट पड़ता है, इसी को विगसना कहते हैं। उस फल की यह विगसने की क्रिया भीतर से हुई है। यह क्रिया पुनः भीतर नहीं जाती है, इसी प्रकार एक बार विगसनेवाला जीव फिर संसार की ओर नहीं लौटता, आगे ही बढ़ता है, मुक्ति प्राप्त कर लेता है। ऐसा यह विगसावती का स्वरूप है ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

विगस, विगस, अनन्त गुण विगसावती से प्रगट हों।
इस शक्ति से ही गुप्तनिधियाँ घट स्वघट में प्रगट हों ॥ १५ ॥

९. रमणावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति रमणावती ॥ १७ ॥

टीका—निजात्मनिज्योतिःस्वरूपाशक्तिः रमणावती, रमणीयेषु-चिद्गुणेषुरमणस्वरूपा रमणावती। रमणीयानन्तगुणाः। गुणाश्च रमणीया आत्मारमणस्वभावः। रमणरमणीययोः संयोगं करोति रमणावती। आत्मनः गुणानां च रमणीयस्वभाव प्रकटीकरोति रमणा-

वतो। शक्तेर्बिना न स्वरूप लभते, न ध्यानमुत्पादयति, न योगी योगं साधयति ॥ १७ ॥

काव्य

शुद्धस्वभाव रमणीय तदीय भावाः,
रमणावती रमणतां भावे करोति।
दिव्येषुभाव रमणेषु समाविशन्ति,
जीवान्गुणान् रमणतां रमणा करोति ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों में ज्योतिवंत रमणावती नाम की शक्ति प्रगट होती है ॥ १७ ॥

टीका अर्थ—अपनी आत्मा में ज्योतिस्वरूप शक्ति रमणावती है। रमणीय चैतन्य गुणों में रमण स्वरूपा यह शक्ति है। आत्मा के अनन्त गुण रमणीय हैं। आत्मा के गुण रमणीय और आत्मा रमण स्वभाव है। रमणावती रमण और रमणीय का संयोग कराती है। आत्मा के और गुणों के रमणीय स्वभाव को रमणावती प्रगट करती है। इस शक्ति के बिना न स्वरूप को प्राप्त किया जाता, न ध्यान ही उत्पन्न किया जाता, न योगी योग साधन करते ॥ १७ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा का रमणीय शुद्ध स्वभाव आत्मा के समस्त भावों को भावों में ही रमण रूप करता है। रमणावती ही दिव्य भावों में प्रवेश करती है। और समस्त जीवों के गुणों में रमणीयता को लाने वाली रमणावती है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—रमणीय आत्मा के प्रिय गुणों में रमण कराने वाली यह रमणावती शक्ति है। रमण करने योग्य रमणीय वस्तु केवल एक है आत्मा और उसके गुण। एकाग्र कर देने वाली वस्तु रमणीय होती है। आत्मा के अपने गुणों में यदि यह शक्ति न होती तो पर पदार्थों की रमणीयता की आसक्ति को छोड़ना असम्भव हो जाता। अपने सुन्दर से सुन्दर और एक से एक बढ़कर गुणों के समूह में जब आत्मा एकाग्र होकर

रमता है और वहाँ से हटना नहीं चाहता तब अपना परिपूर्ण ज्ञान स्वभाव केवलज्ञान बन कर आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये आता है, यह रमणावती निज शक्ति के विकास का परिणाम है जीव मात्र का स्वभाव रमण करने का है, परन्तु अनन्तानन्त जीवों को अपने रमणीय का पता ही नहीं कि कहाँ रमण करें ? इसीलिये परद्रव्यों के चक्र में पड़ा प्राणी अपना काल चक्र पूरा कर रहा है ॥ १७ ॥

पद्यानुवाद

इन्द्रिय सुखों में रमण करना क्षणिक इनमें क्या रखा ?
देख रमणावती को सुख चाहता हो, हे सखा ! ॥ १६ ॥

१०. **दिप्तावती शक्ति**

उत्पन्न ज्योति दिप्तावती ॥ १८ ॥

टीका—स्वयं दीप्तिमान्गुणान्वितोऽयमात्माज्ञातादृष्टगुणप्रत्येके दीप्तिस्वभावो वर्तते । अनन्तगुणानां देदीप्यमान स्वभावो यदा व्यक्ती-भविष्यति, कोदृक्स्वरूपोऽसौ तदा भविष्यति स्वरूपेऽयमात्मा ? शक्ति-र्दीप्त्यावत्यस्यैतादृशी यद्विना न दृश्यते आत्मात्मनैव । गुण-गुणीस्वभावं प्रकाशयति दिप्तावती शक्तिः ॥ १८ ॥

काव्य

देदीप्यमान गुणराजि विराजमाना,
दीप्ति ददाति स्वगुणान्दिप्तावती सा ।
दीप्तावती विमल शक्तिमुपेत्य जीवाः,
प्रविशंत्यशंक निज रूप स्वरूप भावे ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा की अनन्त शक्तियों में ज्योति स्वरूप दिप्तावती नाम की शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥

टीका अर्थ—स्वयं देदीप्यमान गुणों से सुशोभित यह आत्मा ज्ञाता दृष्टा है । आत्मा के प्रत्येक गुण में दीप्तिस्वभाव वर्तमान है । अनन्त

गुणों का यह तेजः पुञ्ज स्वभाव जब प्रगट होगा तब अपने स्वयं स्वरूप में कितना प्रिय होगा यह आत्मा। यह दिप्तावती ऐसी शक्ति है कि इसके बिना आत्मा आत्मा को नहीं देखता। यही शक्ति गुण और गुणी को प्रकाशित करती है ॥ १८ ॥

काव्य अर्थ—दैदीप्यमान गुणों की पंक्तियों से शोभायमान आत्मा को और उसके समस्त गुणों को प्रकाशित करनेवाली यह दिप्तावती शक्ति है। इस विमल शक्ति को पाकर जीव निज रूप स्वरूप भाव में निशंक रूप से प्रवेश करते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—प्रकाश में ही हर एक पदार्थ अपने-अपने वास्तविक स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। अन्धकार में तो केवल अन्धकार ही नजर आता है। आत्मा ने आत्मा को अभी तक देखा नहीं इसका कारण कोई अन्धकार था। उस अन्धकार के दूर होते ही अपना दैदीप्यमान स्वरूप दिप्तावती शक्ति के द्वारा स्वयं चमकने लगता है। वस्तु और उसके गुणों में दीप्तिमान प्रकाश न होता या वे स्वयं दीप्त स्वरूप न होते तो देखने वाला भी क्या देखता? अतएव उपादान स्वरूप में यह दिप्तावती नाम की महाशक्ति विद्यमान है, जो सम्यक्त्व होते ही आत्मा के वास्तविक स्वरूप को आत्मा के सामने प्रकाशित करती है। कोटि सूर्य के प्रकाश की जो उपमा दी जाती है वह चर्म चक्षु की अपेक्षा से नहीं परन्तु ज्ञान स्वभाव की अपेक्षा से ही दी जाती है। ज्ञान में ही कोटि सूर्य का प्रकाश है ॥ १८ ॥

पद्यानुवाद

इस आत्मा के गुण सभी दैदीप्यमान स्वरूप हैं।
दिप्तावती देती प्रगट कर दिव्य गुण के रूप हैं ॥ १७ ॥

११. **भुक्तावती शक्ति**

उत्पन्न ज्योति भुक्तावती ॥ १९ ॥

टीका—शुद्धस्वभावस्य भोक्ता परंज्योतिश्चिदात्मा। भुक्तावती

शक्तिः स्वभावे ज्योतिस्वरूपोत्पन्ना भवति। आत्मनस्तु भोक्तात्मैव निश्चयेन। यावन्नात्मनः भोक्तात्मा तावदेव कर्मफल भोक्तास्ति। गुणी-गुणाश्च सर्वे हि भुक्तावतीशक्तिसम्पन्नाः। सिद्धावस्थायामपि अनन्त-कालपर्यन्तेऽनयाशक्त्या स्वभाव सुखभोक्तात्मा मोक्षस्थाने निवसति, भुञ्जन्नात्मन्यनन्तसुखं ॥ १९ ॥

काव्य

अद्यापि स्वात्मोत्थ सुखं न भुक्तम्,
सुधा न पीता च त्वया निजोत्था।
भुक्ता सुसौख्यं च ददाति पूर्णम्,
भोक्तु क्षमोऽहं च कदा भवामि ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ—भुक्तावती नाम की शक्ति ज्योतिः स्वरूपा उत्पन्न होती है ॥ १९ ॥

टीका अर्थ—शुद्ध स्वभाव का भोक्ता परं ज्योति चैतन्य आत्मा है। भुक्तावती शक्ति स्वभाव में ज्योति स्वरूपा उत्पन्न होती है, निश्चय से आत्मा का भोक्ता आत्मा ही है। जब तक आत्मा का भोक्ता आत्मा नहीं बनता तब तक ही आत्मा कर्मफल का भोक्ता है। गुणी आत्मा तथा उसके अनन्त गुण सभी भुक्तावती शक्ति से सम्पन्न हैं। सिद्धावस्था में अनन्त काल तक इसी शक्ति से अपने स्वभाव सुख का भोक्ता होकर यह आत्मा रहता है ॥ १९ ॥

काव्य अर्थ—आज तक अपना आत्मीय सुख नहीं भोगा, आत्मीय सुधा का अमृत पान नहीं किया, अतएव यह भुक्तावती शक्ति परिपूर्ण सुख स्वरूप को देती है। अपना आत्मीक सुख भोगने में मैं कब समर्थ होता हूँ ॥ १८ ॥

विशेषार्थ—चिदानन्द चैतन्य अपने शुद्ध स्वभाव का भोक्ता है। अपने निज स्वभाव के भोग करने की सामर्थ्य का नाम ही भुक्तावती है। यह शक्ति एक समय में अनन्त गुणों का स्वाद आत्मा को प्रदान करती

है। यदि आत्मा में यह शक्ति न होती तो मुक्ति भी न होती। मुक्ति की प्रतीक यह शक्ति चतुर्थगुणस्थान से अपना कार्य प्रारंभ करती है। अतीन्द्रिय सुख का स्वाद लेना इसका काम है। इन्द्रिय सुखों से भुक्तावती शक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं। अरहन्त और सिद्ध अवस्था में अनन्त सुख का भोग कराने वाली यही शक्ति अनन्त काल तक साथ रहती है। ऐसी यह शक्ति है जिसका अनुभव गुरुदेव ने किया। यह आत्म ज्योति को उत्पन्न करती है॥ १९॥

पद्यानुवाद

भुक्तावती से भोग करना सीख ले निज भाव का।
क्षणिक भोगों को हटा ले स्वाद शुद्ध स्वभाव का॥ १८॥

१२. अतुलावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति अतुलावती॥ २०॥

टीका—अनन्तज्ञानाद्यतुल्यगुणानां ज्योतिः शक्तिः स्वरूपे भवत्युत्पन्नेप्यतुलावती ज्ञायकभावादभिन्नात्मनः गुणाः सर्वेऽतुल्याः भवन्ति। सर्वगुणानामतुल्यतां प्रकाशयति शक्तिरात्मनः॥ २०॥

काव्य

तुल्याः भवन्ति न गुणास्तु परस्परे ते,
सर्वे गुणास्त्वतुलतां त्वयि प्राप्नुवन्ति।
अतुला प्रदर्शयति वस्तु गुणं स्वतन्त्रम्,
सर्वान्गुणानतुलतामतुला करोति॥ १९॥

सूत्रार्थ—ज्योतिःस्वरूप अतुलावती आत्मा में उत्पन्न होने वाली शक्ति है॥ २०॥

टीका अर्थ—अनन्त ज्ञानादि अतुल्य गुणों की ज्योति-शक्ति अपने स्वरूप में उत्पन्न होती है वह अतुलावती है, ज्ञायक भाव से अभिन्न आत्मा के सर्व गुण अतुल्य होते हैं। और समस्त गुणों की अतुल्यता को यह आत्मशक्ति अतुलावती प्रकाशित करती है॥ २०॥

काव्य अर्थ—आत्मा के वे गुण परस्पर में तुल्य नहीं हैं। सर्वगुण अपने आपमें अतुल्य शक्ति को प्राप्त होते हैं। यह अतुलावती शक्ति वस्तु के गुणको और उसकी स्वतन्त्र अतुल्य शक्ति को प्रदर्शित करती है। अतुलावती समस्त गुणों को अतुल्यता प्रदान करती है ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—आत्माके समस्त गुण एकक्षेत्रावगाही हैं किन्तु एक दूसरे की समानता करने वाला कोई गुण नहीं। ज्ञान दर्शन के समान नहीं। दर्शन सुख के समान नहीं। ज्ञानका जो स्वरूप है वह सुख का नहीं। लक्षण की अपेक्षा सर्व गुण अतुल्य है। प्रत्येक गुण के साथ अतुलावती शक्ति है। सम्यग्दृष्टि जीव ही इस शक्ति का एक-एक गुणमें प्रत्यक्ष अनुभव करता है। एक-एक गुण की ज्योति को तथा सब मिलाकर अनन्त गुण संयुक्त आत्म ज्योति को उत्पन्न करने वाली यह शक्ति है। अपने अतुल्य गुणों का चिन्तन करने वाला भव्य ही इस शक्ति को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

पद्यानुवाद

है एक क्षेत्र निवास फिर भी लक्षणों से भिन्न है।
अतुलावती से तौल तू निज गुण सदैव अभिन्न है ॥ १९ ॥

१३. लखनावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति लखनावती ॥ २१ ॥

टीका—ज्ञायकभावो यथाज्ञाता तथा दृष्टाप्यस्तिस्वभावे। दृश्यन्ते गुणाः सर्वे, दृष्टा पश्यति स्वात्मनि। गुणाश्चदर्शनीयाः दर्शकोऽस्तिगुणी सदा। दृष्टि ददाति लखनावती शक्तिः। स्वानन्तदर्शनगुणकारणाशक्तिः लखनावती ॥ २१ ॥

काव्य

ज्ञाता यथा भवति सो दृष्टा तथैव,
दृश्यं तु पश्यति स्वयं स्वयमेव दृश्यम्।
ज्योति ददाति लखनावति चिन्मयंतम्,
सर्वान्गुणान् लखनतां लखना करोति ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिवन्त लखनावती शक्ति उत्पन्न है ॥ २१ ॥

टीका अर्थ—आत्मा का ज्ञायक भाव जैसे अपने स्वभाव में ज्ञाता है, वैसे ही दृष्टा भी है। आत्मा में समस्त गुण तो दृश्य हैं, देखने योग्य हैं तथा दृष्टा आत्मा देखने वाला है गुण दर्शनीय हैं गुणी दर्शक है। यह लखनावती शक्ति दृष्टि देती है। अनन्तदर्शन गुण की कारण यह शक्ति है ॥ २१ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा जैसे ज्ञाता है वैसे ही दृष्टा भी है। स्वयं दृश्य को देखता है तथा स्वयमेव ही दृश्य है। यह लखनावती चिन्मय स्वरूप को ज्योति प्रदान करती है। यह शक्ति समस्त गुणों को दर्शनीय बनाती है ॥ २० ॥

विशेषार्थ—लखन शब्द के दो अर्थ हैं दोनों ही अर्थ शक्ति के स्वरूप में घटित होते हैं, पहला अर्थ है लखन अर्थात् देखना या दिखना। आत्मा में एक शक्ति है यह लखनावती इसके द्वारा आत्मा अपने प्रत्येक गुण स्वभाव को देखने में समर्थ होता है। गुणों को पृथक्-पृथक् रूप में या अनन्त गुणों के साथ देखना दोनों ही रूप में यह शक्ति अपना काम करती है। दूसरा अर्थ है लखन अर्थात् लक्षण, यह लक्षणावती नाम भी इसी का है। आत्मा के प्रत्येक गुण का लक्षण है, स्वरूप है। अनन्त गुणों के अनन्त लक्षण हैं। और अनन्त गुणमय आत्मा का एक लक्षण है। प्रत्येक गुण अपने लक्षण से, कार्य से ही जाना जाता है। अतएव लखनावती देखने अर्थ में तथा लक्षणावती लक्षण अर्थ में प्रयोग किये जाने योग्य है ॥ २१ ॥

पद्यानुवाद

दृष्टा यदी है आतमा तो देख ले निज रूप को।
लखनावती शक्ती लखाती पूर्ण शुद्ध स्वरूप को ॥ २० ॥

१४. उल्हसावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति उल्हसावती ॥ २२ ॥

टीका—इन्द्रियातीतोल्लासमानन्दं प्रकटयतिपरंज्योतिः स्वरूपा-शक्तिहुंलसावती-उल्हसावती वा स्वस्वरूपे उत्पन्ना। शृण्वन्ति भव्याः शक्तेः स्वरूपम्। यदा स्वभावे निजोल्लासभावो आगच्छति तदैव शुद्धो-पयोगसमाधि गच्छन्ति भव्याः सम्यग्दृष्टयो वा चतुर्थगुणस्थानादिभूमि-कायां शुद्धस्वभावे क्रीडन्त्यानन्ताःगुणाः अनयैव शक्त्या ॥ २२ ॥

काव्य

अतीन्द्रियोल्लासप्रकाशिकाया,
गुणानुभूतेर्निज कारणा वा।
हुलसावती-उल्लसति स्वभावे,
सर्वान्गुणानुल्लसतां करोति ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिः स्वस्वरूपा उल्हसावती शक्ति उत्पन्न होती है, अपने स्वरूप में ॥ २२ ॥

टीका अर्थ—इन्द्रियातीत उल्लास को, आनन्द को प्रकट करने वाली परंज्योति स्वरूप शक्ति उल्हसावती है। अथवा हुलसावती स्वरूपा अपने स्वरूप में उत्पन्न होती है। भव्य जीव ही उल्हसावती का स्वरूप सुनते हैं। जब स्वभाव में निजोल्लास आता है, उसी समय शुद्धोपयोग समाधि को भव्य प्राप्त होते हैं, अथवा सम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानादि भूमिका में प्राप्त होते हैं। अपने स्वरूप में उल्लास को प्राप्त करते हैं। अपने शुद्ध स्वभाव में अनन्त गुण क्रीड़ा करते हैं, ऐसी यह शक्ति उल्हसावती ॥ २२ ॥

काव्य अर्थ—अतीन्द्रिय उल्लास का प्रकाश करने वाली, गुणों की अनुभूति में, अपनी प्राप्ति में कारण उल्हसावती अपने स्वरूप में उछलती है। वह शक्ति समस्त गुणों को उल्लास प्रदान करती है ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—उल्लास गुण के द्वारा आत्मा के समस्त गुण अपने स्वरूप में उछलते हैं। उनमें उछाल आता है। उल्हसावती यह शक्ति है। इससे प्रत्येक गुण अपने आप में सार्थक हैं। अपने स्वरूप का उल्लास भाव ही अपने स्वभाव में स्थिर होने में सहायक है। अतीन्द्रिय सुख का उल्लास

इस शक्ति से प्राप्त होता है। सम्यक्त्व का और इस शक्ति का अविनाभावी सम्बन्ध है। बिना सम्यक्त्व का उल्लास उल्लास ही नहीं है। आनन्द की अनुभूति ही उल्लास है। यह शक्ति निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों को स्वरूप में स्थिर करती है ।। २२ ।।

पद्यानुवाद

उल्लास है वैभव हृदय का शक्ति है उलहसावती।
इससे सभी गुण उछलते यह शक्ति है मन भावती ।। २१ ।।

१५. विलसावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति विलसावती ।। २३ ।।

टीका—स्वचतुष्टयविलासिनी, निजनिर्विकारस्वरूपप्रकाशिनी, परंज्योतिस्तेजः पुञ्जविकासिनी, विलसावती भवनाशिनी शक्तिःस्वरूपे उत्पन्नाभवति अनन्तसुखादिगुणानां साफल्यं तेषां विलासेऽनुभूत्या वर्तते। यथास्वरूपेऽनन्तसुखादिशक्तयोविद्यमानास्तथैव स्वभावे तेषां विलासानुभवस्यापिशक्तिर्वर्तमानास्ति शुद्धस्वभावे प्रविशति शक्ति ।। २३ ।।

काव्य

विलसंत्यनन्तसुख भूमि स्वतः स्वभावे,
शक्तिर्गुणेषु विलसावति विद्यमाना।
शुद्धोपयोगविमलं निज निर्विकारं,
जीवाः भजन्ति निज शक्त्यनुकूलतायां ।। २२ ।।

सूत्रार्थ—विलसावती ज्योति शक्ति उत्पन्न होती है ।। २३ ।।

टीका अर्थ—अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप स्वचतुष्टय तथा अनन्तज्ञानादि स्वचतुष्टय का विलास करने वाली अपने निर्विकार स्वरूप का प्रकाश करने वाली, परंज्योति तेजः पुञ्ज का विकास करने वाली, भवविनाशिनी शक्ति स्वरूप में उत्पन्न होती है। अनन्तसुखादि गुणों की सार्थकता, सफलता, उनके विलास में अनुभूति में वर्तमान है। जैसे स्वरूप में अनन्त सुखादि शक्तियाँ विद्यमान हैं, वैसे ही स्वरूप में उनके विलास

करने की या अनुभव करने की भी शक्ति वर्तमान में यह विलसावती शक्ति शुद्ध स्वभाव में प्रवेश करती है ॥ २३ ॥

काव्य अर्थ—अनन्त सुख की भूमि जो अपना स्वभाव उसमें स्वतः अपना स्वभाव ही विलास करता है। अपने समस्त गुणों में विलसावती शक्ति विद्यमान है। इस शक्ति की अनुकूलता में ही जीव निर्मल निर्विकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

विशेषार्थ—पन्द्रहवीं विलसावती नामकी शक्ति है। इसका कार्य है अपने स्वभाव में ही विलास करना, अपने गुणों को विलसना। प्रत्येक गुण का उपयोग करना, उस गुण का जो कार्य है उसे उसी रूप परिणत करना आदि सब अन्तरंग के कार्यों को करने वाली यह विलसावती है। यह शक्ति है जो सिद्ध भगवन्तों को अपने स्वरूपमें अनन्त काल पर्यन्त विलास कराती है। सांसारिक भोग और विलासों से इस शक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं, केवल सम्यग्दृष्टि ही इस शक्ति का अनुभव कर सकते हैं। ऐसी है यह शक्ति विलसावती ॥ २३ ॥

पद्यानुवाद

आत्मा के पूर्ण वैभव को विलसता क्यों नहीं।
विलसावती निज शक्ति है, निज को समझता क्यों नहीं ॥ २२ ॥

१६. हर्षावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति हरषावती ॥ २४ ॥

टीका—बाह्यवस्तुषु समवशरणादिमहामहिमासु, आन्तरिकहर्षप्रकर्षं निजानन्दमानन्दं प्रकटीकरोति शक्तिर्हर्षावती परंज्योतिमती। स्वभावे उत्पन्ना भवति। स्वात्मनि यदा निजनिजानन्दवैभवमनन्तचतुष्टयादि-सम्पत्तिं प्रकटीकरोति स्वयमात्मा, तदा बाह्यविभूतिरूपेणगन्धकुटी, शतेन्द्रागमनं, समवशरणादिमहामहिमास्वरूपमपि प्रभावमतिशय प्राप्ति करोति। अन्तर्बाह्यवैभवं भव्यजनानन्दकरं ददाति हर्षावती ॥ २४ ॥

काव्य

सौख्यानुभूति निज हर्ष प्रकर्षमाना,
प्रभाविता भवति दिव्यविभूति वृन्दा ।
हर्षावती स्वपर हेतु जगत्त्रयेऽस्मिन्,
हर्षे ! कुरुत्वमतिहर्षमयं समस्तम् ।। २३ ।।

सूत्रार्थ—हर्षावती ज्योति उत्पन्न होती है ।। २४ ।।

टीका अर्थ—बाह्यवस्तुओंमें समवशरणादि महामहिमाओं में आन्तरिक हर्ष प्रकर्ष को, निजानन्द आनन्द को हर्षावती शक्ति प्रगट करती है। परंज्योतिमती शक्ति अपने स्वभाव में उत्पन्न होती है। अपने आत्मा में निजनिजानन्द वैभव अनन्तचतुष्टयादि सम्पत्ति को स्वयं आत्मा जब प्रगट करता है, तब बाह्य विभूति रूपमें गन्धकुटी, शतेन्द्रागमन, समवशरणादि महामहिमा स्वरूप को, प्रभाव को, अतिशय को, और अन्तर्बाह्य समस्त वैभव को आत्मा प्राप्त करता है जो कि भव्यजनों को आनन्द रूप करने वाला है ।। २४ ।।

काव्य अर्थ—अन्तरंग आत्मा में जब स्वानुभूति जनित हर्ष प्रकर्षता को प्राप्त होता है तब बाह्य में दिव्य विभूतियाँ प्रभावित होती हैं। यह हर्षावती स्वपर हर्ष का कारण है। हे हर्षे ! मेरे समस्त स्वरूप को हर्षमय करो ।। २३ ।।

विशेषार्थ—सोलहवीं शक्ति हर्षावती है। इस शक्ति का बड़ा विचित्र स्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप बाह्य वैभवों को प्रभावित करता है। समवशरणादि विभूतियों में हर्षावती शक्ति ही अन्तरंग का आनन्द बरसाती है। यदि अन्तरंग में अतीन्द्रिय आनन्द न हो तो बाहर का प्रभाव आवेगा ही कहाँ से। बाह्य में अन्तरंग का प्रभाव स्वयं होता है, पुण्य प्रकृति स्वयं उदय में आती है। ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द की जननी यह शक्ति है ।। २४ ।।

पद्यानुवाद

अपना अतीन्द्रिय हर्ष ही आनन्द परमानन्द है।
अन्तर्जगत् से बाह्य तक छा जाय परमानन्द है ।। २३ ।।

१७. विज्ञावती शक्ति

उत्पन्न ज्योति विज्ञावती, सुवन जिन !!! ।। २५ ।।

टीका—हे सुवन जिन !!! ज्ञायकभावस्यज्योतिरियं विज्ञावती शक्तिः। उत्पन्नास्ति निजस्वभावे एव। परस्परोभिन्नस्वरूपाः सप्तदशशक्तयः। स्वरूपादात्मनोऽप्यभिन्नाःसर्वाःशक्तयः। विज्ञावती जानाति स्व-स्वरूपं पर विषयं च। जानातिप्रत्यक्षपरोक्षरूपेण, नयप्रमाणरूपेण, स्याद्वाद सप्त भंगस्यादस्ति स्यान्नास्तिरूपेणेत्यादि। अनन्तशक्तीनांमध्ये सर्वोपरि सर्वप्रथमाच स्वपरज्ञायका विज्ञावती। ज्ञानलक्षणात्मा विज्ञावती शक्त्यैव सुशोभति। ज्ञानेनैवात्मापूर्णतामेति ।। २५ ।।

इति विज्ञावती शक्तिः। सप्तदश शक्त्यश्चेति।

काव्य

जानन्स्वयं परमपि परमार्थ हेतुम्,
ज्ञानं स्वज्ञायक स्वभाव स्वयं स्वयुक्तः।
विज्ञापयति च विज्ञवतिः पदार्थम्,
विज्ञे ! कुरु स्व विज्ञानमयं समस्तम् ।। २४ ।।

सूत्रार्थ—हे सुवन जिन ! विज्ञावती शक्ति ज्योति आत्मा में उत्पन्न, आत्मा का ही स्वरूप है ।। २५ ।।

टीका अर्थ—हे सुवन जिन ज्ञायक भाव की ज्योति यह विज्ञावती शक्ति है। अपने स्वभाव में ही उत्पन्न होती है ये समस्त १७ शक्तियाँ परस्पर में अभिन्न स्वरूप हैं। आत्मा के स्वरूप से भी सर्व शक्तियाँ अभिन्न हैं। विज्ञावती ही अपने स्वरूप को तथा परस्वरूप को जानती है, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानती है। नय और प्रमाणरूप से जानती है। स्याद्वाद सप्तभंग-स्यादस्ति, स्यान्नास्ति रूप से जानती है, इत्यादि।

अनन्त शक्तियों के बीच में सर्वोपरि सर्व स्वपर ज्ञायक शक्ति विज्ञावती है। ज्ञानलक्षणात्मा, विज्ञावती से ही सुशोभित है। ज्ञान स्वभाव से ही आत्मा पूर्णता को प्राप्त होता है। इस प्रकार विज्ञावती शक्ति तथा समस्त १७ शक्तियों का विवेचन समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

काव्य अर्थ—स्वयं को जानते हुये पर को भी, परमार्थ के कारण स्वरूप स्वज्ञान को भी जानती है। अपना ज्ञायक स्वभाव अपने आप से संयुक्त है। और यह विज्ञावती पदार्थ के स्वरूप का अपने में अनुभव करती है। हे विज्ञावती ! समस्त गुणों को विज्ञानमय करो ॥ २४ ॥

विशेषार्थ—१७ वीं, अन्तिम शक्ति यह विज्ञावती है। यह शक्ति आत्मा के सम्यग्ज्ञान स्वरूप में अपने अनन्त गुणों का विज्ञापन करती है। इस शक्ति को चाहे विज्ञावती कहो, चाहे ज्ञायक भाव कहो या सम्यग्ज्ञान कहो। विज्ञावती विज्ञानवती है। इस शक्ति का लक्षण-स्वरूप अन्य शक्तियों में या गुणों में नहीं पाया जाता। क्योंकि आत्मा के ज्ञान गुण को छोड़कर शेष गुणों की संख्या अनन्त है परन्तु वे गुण कुछ जानते नहीं हैं। उनमें जानने की शक्ति नहीं है। जानने की शक्ति ज्ञान में ही है। ज्ञायक भाव से अभिन्न होने पर भी अपना-अपना कार्य अबाध रूप से सभी गुण करते हैं। ज्ञान गुण प्रमुख गुण है। आत्मा को विषय करने वाला अनन्त गुणों का ज्ञायक ज्ञान है। दूसरी कोई शक्ति आत्मा को जानने वाली आत्मा में भी नहीं है। जब तक ज्ञान आत्मा को नहीं जानता तब तक वह अज्ञान है। जिस समय आत्मा की यह विज्ञावती शक्ति सम्यक्त्व के साथ आत्मा में जागृत होती है, तब सबसे पहिले आत्मा को ही जानने का कार्य करती है। यह ज्ञानवती, विज्ञानवती, विज्ञावती, प्रज्ञावती आदि नाम से कही जाने वाली शक्ति जब तक स्वरूप में जागृत नहीं होगी आत्मा को जानने वाला आत्मा में भी फिर कौन है ? अतएव आत्मा को जानने के लिये सबसे प्रथम विज्ञावती-ज्ञान शक्ति को जागृत होना चाहिये। तथा सम्यक्त्व प्राप्त हो तब आत्महित का प्रारम्भ हो ॥ २५ ॥

पद्यानुवाद

आतमा में स्वपर का करती सु विज्ञापन यही ।
जीव को जिनवर बना पहुँचायगी अष्टम मही ॥ २४ ॥

सप्तदश शक्ति प्ररूपणाः समाप्ता

●

उपसंहार

इति ज्योति संसर्ग अतिशय गामिनो ॥ २६ ॥

टीका—एवं प्रकारेण सप्तदशज्योतयः शक्तयः इति समाप्ताः । प्ररूपणा समाप्ता । संसर्गातिशयगामिनः सप्तशतज्योतिकेवलिनो रुइयाजिनादि कमलावती जिनार्जिकादिमुक्तिगामिनो जयो जय जय नमोऽस्तु ॥ २६ ॥

काव्य

ज्योतिः संसर्गगामीनां शक्तीनां च प्ररूपणा ।
भवन्तु मुक्ताः सुखेन, वन्दे श्रीगुरुतारणम् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—इस प्रकार ज्योतिः केवली सात सौ के संसर्ग में अतिशय गामी, १७ शक्तियों की प्ररूपणा जिनके नाम से प्ररूपित हुई, ऐसी श्री कमलावती आदि सत्रह अर्जिकाएँ तथा रुइयाजिन ये सर्व मुक्तिगामी जीव जयवन्त हों ॥ २६ ॥

टीका अर्थ—इस प्रकार से १७ ज्योतियों शक्तियों का वर्णन समाप्त हुआ । एक साथ अतिशयगामी ७०० ज्योति केवली, जिनरुइया, रमणादि जिन, कमलावती अर्जिकादि ये सब मुक्तिगामी होंगे । ये सब जयवन्त हों । जय नमोऽस्तु ॥ २६ ॥

काव्य अर्थ—७०० ज्योतियों के साथ रहने वाले, मुक्तिगामी तथा १७ शक्तियों की प्ररूपणा में जिनका नाम कारण है । वे सब सुख से मुक्तिगामी हों । इस आशीर्वाद के प्रदाता श्रीगुरुदेव को वन्दन करता हूँ ॥ २५ ॥

विशेषार्थ—आत्मा की १७ शक्तियों ज्योतियों का संसर्ग अपने अतिशय से मुक्तिगामी पद प्रदान करता है। जो भव्य इन १७ शक्तियों का संसर्ग करेंगे वे मुक्तिगामी होंगे, अतिशयगामी होंगे। साथ ही ७०० ज्योति केवलियों के साथ संसर्ग में रहने वाले रुइयाजिन, कमलावती आदि १८ जीव ज्योतिकेवली होकर मुक्तिगामी होंगे। ये सब मुक्तिगामी हों। अतिशयगामी हों। सब जयवंत हों ॥ २६ ॥

पद्यानुवाद

संसर्ग से इन ज्योतियों के पूर्ण अतिशयवन्त हों।
निश्चित बनेंगे मुक्तिगामी जीव ये जयवन्त हों ॥ २५ ॥

५०० मनपर्ययज्ञानी

मनःपर्ययज्ञानी पाँचसौ अन्मोय कमलावती रुइया-जिन सुखेन सुखेन मुक्तिगामिनो ॥ विधि—विप्नजिन। कलन जिन। अगम जिन। रमण जिन। सुख रमण। सहज जिन। रमण श्रेणि रायचंद ॥ २७ ॥

टीका—पञ्चशतमनःपर्ययज्ञानिनस्तेषां मध्ये सप्तशिष्यसंख्येव कमलावती रुइयाजिनानुमोदनाभागिनः सुखेन-सुखेन मुक्तिगामिनो भवन्तु। तेषां नामावली निम्न प्रकारेण ज्ञातव्या।

१. दिव्यज्योति सम्यक्त्वगुणसम्पन्नो विप्तिजिनः।
२. निजनिर्विकल्प समाधिध्यानयुक्तः कलनजिनः।
३. अगम्यस्वरूपात्मनिगमयत्यगमो जिनः।
४. निजनिर्विकारस्वरूपे रमयति सो रमणो जिनः।
५. अतीन्द्रियसुखेरमणं करोति सुखरमणो जिनः।
६. सहजानन्दस्वरूपः सहजो जिनः सहज स्वरूपः।
७. जिनश्रेण्यां रमणशीलो जिनः श्रेणिरायो रायचंद्रः।

काव्य

सप्तशिष्य समूहोऽयं मनःपर्ययज्ञानिनः।
कमलावती रुइया, जिनानुमोदना युताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—पाँचसौ मनःपर्ययज्ञानियों में उत्पन्न होने वाले दिप्तजिन आदि सात शिष्य जिनकी अनुमोदना कमलावती रुइयाजिन कर रहे हैं वे सब मुक्तिगामी बनेंगे—इस विधि से उनके नाम हैं—१. दिप्तजिन, २. कलनजिन, ३. अगमजिन, ४. रमणजिन, ५. सुखरमण, ६. सहजजिन, ७. रमणश्रेणि रायचंद्र। ये सात शिष्य मनःपर्ययज्ञानी मोक्षगामी बनेंगे ॥ २७ ॥

टीका अर्थ—पाँच सौ मनःपर्ययज्ञानियों में सात शिष्य कमलावती रुइयाजिन की अनुमोदना के भागी सुख से मुक्तिगामी होंगे। उनकी नामावली निम्न प्रकार है—

१. दिव्य ज्योति सम्यक्त्व गुण सम्पन्न दिप्तजिन।
२. निजनिर्विकल्प समाधि और ध्यान सहित कलनजिन।
३. अगम्य स्वरूप आत्मा में गमन करने वाले अगमजिन।
४. निजनिर्विकार स्वरूप में रमण करने वाले रमणजिन।
५. अतीन्द्रिय सुख में रमण करने वाले सुखरमणजिन।
६. सहजानन्द स्वरूप सहजजिन सहज स्वरूप।
७. जिनश्रेणि में रमणशील जिन श्रेणि रायचन्द्र।

काव्य अर्थ—यह सात शिष्यों का समूह मनःपर्ययज्ञानियों में होगा। कमलावती और रुइयाजिन की अनुमोदना इन्हें प्राप्त होगी ॥ २६ ॥

विशेषार्थ—आत्मा की १७ शक्तियों ज्योतियों का संसर्ग अपने अतिशय से मुक्तिगामी पद प्रदान करता है। जो भव्य इन १७ शक्तियों का संसर्ग करेंगे वे ५०० मनःपर्ययज्ञानियों का संसर्ग प्राप्त करेंगे।

इस सूत्र में ५०० मनःपर्ययज्ञानी जीवों में उत्पन्न होने वाले सात शिष्यों को रुइयाजिन और कमलावती जी की अनुमोदना सहित आशीर्वाद है। सुख से, सुखपूर्वक मुक्तिगामी बनो, अतिशयगामी बनो ॥ २७ ॥

पद्यानुवाद

पञ्च शतचउ ज्ञानधारी मुक्ति सुख को पायेंगे।
कमलावती रुइयारमण अनुमोदना बरसायेंगे ॥ २६ ॥

उनमें इन्हें गिन लीजिये ये मुक्तिगामी जीव हैं।
विप्तजिन ये आदि सातों नाम सुख की नीव हैं ॥ २७ ॥

१४०० प्रतिगणधरों में

प्रतिगणधर चौदह सौ सुखेन मुक्तिगामिनो अन्मोय कमलावती रुइया जिन ॥ विधि—पं० श्री धर्मचन्द्र। पं० श्री मलदास। पं० श्री खेमचन्द्र। पं० श्री भीखम। सुहगावती। गुप्तरूपा। विगसरंज। मिलन। धर्मश्री। अभयावती। भीखा पद्मावती। चरणावती। हियनन्दकुमार। हला ममलावती। मनोवती। खेउ-रंज पांडे। हरसिनि। महाश्री। भावश्री। इति प्रतिगणधर ॥ २८ ॥

टीका—प्रतिगणधरदेवाः शतचतुर्दशसंख्यकाः सुखेन मुक्तिगामिनो भवन्तु। कमलावती रुइयाजिनानुमोदना सहितास्ते सर्वे। अष्टादशशिष्य-संख्यापि प्रतिगणधरदेवेषु भविष्यति प्रतिगणधर पदे। शिष्याणां नामावली सूत्रे निर्दिष्टैव क्रमबद्धानिबद्धा ॥ २८ ॥

काव्य

सप्त द्वयशत संख्या प्रतिगणदेवानुमोदना प्राप्ता।
कमलावति रुइयाजिन शिष्याष्टादश जिनाश्चते देवाः ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ—प्रतिगणधर १४०० सुखेन मुक्तिगामी होंगे। तथा उन्हें कमलावती रुइयाजिन की अनुमोदना प्राप्त होगी। इस विधि नाम हैं—

१. पं० श्री धर्मचंद्र	२. पं० श्री मलदास	३. पं० श्री खेमचंद्र
४. पं० श्री भीखम	५. सुहगावती	६. गुप्तरूपा
७. विगस रंज	८. मिलन	९. धर्मश्री
१०. अभयावती	११. भीखा पद्मावती	१२. चरणावती
१३. हियनन्दकुमार	१४. हला ममलावती	१५. मनोवती
१६. हरसिनि	१७. महाश्री	१८. भावश्री।

इस प्रकार ये १८ भव्य प्रतिगणधर पद को प्राप्त करेंगे।

टीका अर्थ—प्रतिगणधरदेव चौदहसौ सुख से मुक्तिगामी होंगे। कमलावती रुइयाजिन की अनुमोदना सहित होंगे। अठारह शिष्यों का समूह प्रतिगणधर पद को प्राप्त होगा। उक्त शिष्यों की नामावली सूत्र और सूत्रार्थ में निर्दिष्ट-क्रमबद्ध-निबद्ध है ही।

काव्य अर्थ—१४०० प्रतिगणधर देव कमलावती रुइयाजिन की अनुमोदना सहित मुक्ति को प्राप्त होंगे। उन्हीं में १८ शिष्य उक्त नामधारी भी होंगे। प्रतिगणधर पद प्राप्त करेंगे॥ २७॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में १४०० प्रतिगणधरों में उत्पन्न होने वाले पं० श्री धर्मचन्द्रादि १८ शिष्यों को आशीर्वाद प्रदान किया गया है। आशीर्वाद सभी को एक सा है। सुख से मुक्तिगामी बनो।

पद्यानुवाद

पण्डित धरमचन्द्रादि ये प्रतिगणधरों में होंयगे।
इस सूत्र के ये नाम अष्टादश दुखों को खोंयगे॥ २८॥

सौधर्म स्वर्ग में छत्तीस शिष्य

सौधर्म स्वर्गो आठ सहस मुक्तिगामिनो॥ विधि—पं० श्री मैनरंज सुखेन। सिंघई रूपरंज सुखेन। पं० श्री नेमिदेव सुखेन। जैनश्री सुखेन। रूपनिधि सुखेन। भुवा सुखेन। भावश्री सुखेन। हियरंज रूवा सुखेन। कलनश्री सुखेन। श्रीवृतिसुखेन। रूपन महरी सुखेन। ब्रह्मदेव सुखेन। महाश्री सुखेन। रतनश्री सुखेन। माडन सुखेन। चौधरी राजधर सुखेन। चरणावती चन्द्रा सुखेन। हंसावती सुखेन। कमलश्रेणि। वैन कुमार। राइचन्द्र। विरउ ब्रह्मचारी। नयनश्री। पालने। महाश्री। हंसा। कुँवर श्री। पाताले।

बैद्य । मनसुख । इन्द्र अजिक रूव । अमरदेव ।
डालू । विरऊ । जैना अखयावती अलाहो ॥ २९ ॥

टीका—सौधर्मस्वर्गीयाष्टसहस्राणां मध्ये षट्त्रिंशत्संख्याशिष्य-समूहोऽपि सौधर्मस्वर्गे गताः । परम्परामुक्तिगामिनो भवन्तु । नामावली सूत्रेनिर्दिष्टानुसारेणैव ज्ञातव्या भवति ॥ २९ ॥

काव्य

सौधर्म स्वर्गीया देवाः सहस्राष्टसंख्यामिताः ।
षट्त्रिंशत्संख्येय शिष्या मुक्तिगामी भवन्तु ते ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—सौधर्म स्वर्गीय आठ हजार देव परम्परा मुक्ति होंगे । उनमें ये ३६ नाम जिन शिष्यों के हैं, वे भी मुक्ति सुख के अधिकारी होंगे ॥२९॥

टीका अर्थ—सौधर्म स्वर्गीय आठ हजार में छत्तीस शिष्यों का समूह भी सौधर्म स्वर्ग को प्राप्त हुआ है । ये ८००० और इनमें ही ये ३६ शिष्य परम्परा मुक्तिगामी बनेंगे । इन छत्तीस शिष्यों की नामावली सूत्र में क्रम से निर्दिष्ट है । वहाँ से जानने योग्य है ॥ २९ ॥

काव्य अर्थ—सौधर्म स्वर्गीय देव आठ हजार उस समवशरणमें आवेंगे । उनमें श्री गुरुदेव के ये ३६ शिष्य भी रहेंगे । वे सब मुक्त होंगे ॥ २८ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में ३६ शिष्य और शिष्याओं के नाम हैं । ये सब सौधर्म नाम के प्रथम स्वर्ग में देव हुये हैं । परन्तु भव्य हैं । अतएव मुक्ति-गामी होंगे । इन्हें भी वही आशीर्वाद प्रदान किया है—सुख से मुक्तिगामी बनो ॥ २९ ॥

पद्यानुवाद

छत्तीस हैं शुभनाम पहिले स्वर्ग में ये जांयगे ।
शिष्य हैं गुरुदेव के सब मुक्ति के सुख पांयगे ॥ २९ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

ॐ

तृतीयोऽध्यायः

मंगलम्

ॐ नमः सिद्धं ॥ १ ॥

टीका—ॐ शुद्धात्मने सिद्धं सिद्धस्वरूपाय नमः नमोऽस्तु, नमस्कारं करोमि। शुद्धस्वरूपं सिद्धस्वभावं स्वीकरोमि ॥ १ ॥

काव्य

ॐ नमः सिद्धेभ्यः मन्त्रं स्मरामि मनसि सदा ।
नमः शुद्धात्मने सिद्धं सोऽहं सिद्धोऽस्मि निश्चय; ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—ओंकार शुद्धात्मस्वरूप सिद्धस्वभाव को नमस्कार हो ॥ १ ॥

टीका अर्थ—ओंकार शुद्धात्मा को सिद्धस्वरूप को नमस्कार हो। शुद्धस्वरूप और सिद्धस्वभाव को मैं अपने स्वरूप में स्वीकार करता हूँ ॥१॥

काव्य अर्थ—ॐ नमः सिद्धेभ्यः मन्त्र को हृदय में निरन्तर स्मरण करता हूँ, सिद्ध शुद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ। निश्चय से मैं वही सिद्ध-स्वभाव हूँ।

विशेषार्थ—ॐ शुद्धात्मा के स्वरूप को तथा सिद्ध भगवान् को इस सूत्र में नमस्कार किया गया है अपने आत्मा को मानने वाला सिद्धों को नमस्कार करता है, यहाँ प्रश्न होता है कि "अब यहाँ, पर दृष्टि हुई या नहीं ? उत्तर है—परदृष्टि नहीं हुई। क्योंकि—नमस्कार करने के पूर्व अपने सिद्धस्वभाव की श्रद्धा आई, जैसा अपना सिद्धस्वभाव है, हमारा निश्चय में जो स्वरूप है वैसा परिपूर्ण स्वरूप जिनका प्रगट हो गया, द्रव्य, गुण, पर्याय जिनके तीनों एक हो गये, ऐसा जानकर उन सिद्धों के प्रति उल्लासभाव पूर्वक बहुमान का भाव आता है। उनको नमस्कार और अपनी अनुभूति दोनों साथ हैं। जितना भक्ति का भाव सिद्धों के प्रति

प्रगट हो रहा है, उतनी ही अपनी अनुभूति और सिद्धों के स्वभाव से अपनी तुलना अर्थात् अपने शुद्धस्वभाव की तुलना हो रही है। इससे अपने सम्यक्त्व भाव की अनन्त दृढ़ता हो रही है ॥ १ ॥

इस तुलनात्मक स्वानुभूति से अपने अनुभूति में भी यही बात उतरती है कि सम्यग्दृष्टि आत्मदर्शी निर्ग्रन्थों की नमस्कार भी असाधारण अर्थ को रखती है। सिद्धस्वरूप के ज्ञाता सिद्धों को नमस्कार करें तो वह नमस्कार भी कैसा होगा ? अतएव नमस्कार करनेवाले को अपना नमस्कार हो ॥१॥

पद्यानुवाद

आत्मा में स्थापना कर शुद्ध-सिद्ध स्वभाव को।
गुरुदेव करते हैं नमन यह वन्दना निज भाव को ॥ १ ॥

मैं और जिनवर

जिनवर स्वामी तू बड़ो मैं जिनवर हों भलो ॥ २ ॥

टीका—हे जिनवर ! हे स्वामी ! त्वं (तू) महानसि अत्र सूत्रे तू शब्दस्य प्रयोगमति निकटवर्तिता प्रतिपादनाय, ज्ञापनार्थमात्मीयता प्रतीको वा। जिनवरस्वामीपदं निजानुभूत्यां ज्ञातं, पदं मदीयमिति। एतादृशमभिन्नमनुभवं कृतं, स्वानुभवे प्रतीत्यां त्वं (तू) शब्देन जिनवरं निजस्वरूपं वा सम्बोधितं। अहमपि भलोवरोऽस्मि जिनवरोऽस्मि। शुद्धनिश्चयनयापेक्षयाद्रव्यदृष्ट्यावा अहमपि जिनवरोऽस्मि। इति स्वानुभूतिः। अत्र तु देशभाषायाभलोशब्दस्यविचारणा कर्तव्या। महत्पुरुषाणां सज्जनानां प्रति अथवा धनधान्यादिसम्पन्नतापेक्षया वा भलो शब्दस्य प्रयोगो भवति। भलो इति वरोऽस्मि ॥ २ ॥

काव्य

जिनवरेया स्यादस्ति विद्यते प्रभुता मयि।
अहं जिनवरोऽस्मीति निश्चयेन यथार्थता ॥ २ ॥

सूत्रार्थ—हे जिनवर ! हे स्वामी ! आप बड़े हैं। मैं भी जिनवर हूँ, भला हूँ ॥ २ ॥

टीका अर्थ—हे जिनवर! हे स्वामी! आप महान् हैं। यहाँ सूत्र में त शब्द का प्रयोग अति निकटता प्रतिपादन के लिये, या आत्मीयता का प्रतीक है यह ज्ञात कराने के लिये किया है। जिनवर स्वामी पद को अपनी अनुभूति में जाना है, यह पद मेरा है ऐसा अभिन्न अनुभव किया है। अपने अनुभव में या प्रतीति में लाकर तू शब्द से अपने वा जिनवर के स्वरूप को सम्बोधित किया है। मैं भी भला हूँ, जिनवर हूँ। शुद्ध निश्चय-नय की अपेक्षा, द्रव्यदृष्टि से मैं भी जिनवर हूँ। यह स्वानुभूति है। यहाँ देशभाषा के भलो शब्द की विचारणा करना चाहिये, महापुरुषों को, सज्जनों को अथवा धनधान्यादि सम्पन्न जनों को भलो शब्द से सम्बोधित किया जाता है। भलो यह वर हूँ, उत्तम हूँ इस अर्थ में बोला जाता है॥ २॥

काव्य अर्थ—जिनवर में जो प्रभुता विद्यमान है वह मेरे में भी है॥ मैं जिनवर हूँ इस प्रकार की यह निश्चय से यथार्थता है॥ २॥

विशेषार्थ—लीजिये पहिले सूत्र की बात इस सूत्र में और भी स्पष्ट होती है। "जिनवर स्वामी तू बड़ो, मैं भी जिनवर हूँ भलो" इन शब्दों के भीतर के अर्थ को लेकर फिर जरा एक बार गुरु महाराज के भावों में चलिये, देखिये कितनी दृढ़ता से अपने स्वरूप को जिनवर की साक्षी से जिनवर घोषित कर रहे हैं। जिनवर स्वामी तो बड़े हैं। यह निश्चयनय की अनुभूति का ग्रन्थ है अतएव इस नय की मुख्यता से ही यहाँ का अर्थ समझना चाहिये। इन मंगल सूत्रों में जो स्मरण है वह स्वानुभूतिपूर्वक है॥ २॥

पद्यानुवाद

जिनवर प्रभू तू है बड़ो पाया बड़ा निज रूप है।
स्वामित्व निज का पा लिया, मम लक्ष्य बिन्दु स्वरूप है॥
है विद्यमान स्वरूप में जिनवर प्रभू की उपस्थिति।
शब्दानुभव से मैं स्वयं जिन हूँ भलो, मेरी स्थिति॥

समाधिमरण-दिवस

बहत्तरि बहत्तरि बहत्तरि । चौवन उत्पन्न । बहत्तरि बहत्तरि बहत्तरि । इकतीसा एक ॥ ३ ॥

टीका—द्विसप्ततिर्द्विसप्ततिर्द्विसप्ततिः । पञ्चदशशतद्विसप्ततिः सम्वत्सरे प्राप्ते शरीराद्भिन्नोऽहं भविष्यामि, भविष्यामि, भविष्यामि । चतुःपञ्चाशत् संवत्सरोत्पन्नश्च वर्तमाने । स्मरामि सावधान स्वरूपोऽहं भवामि, द्विसप्ततिर्द्विसप्ततिर्द्विसप्ततिः । एकत्रिंशद्वर्षाणां इकतीसा एकेति, एकत्रिंशद्वर्षाभ्यन्तरसमयेऽनेकानां शिष्याणां समाधिः स्वर्गवासो वा भविष्यतीति निश्चितरूपेण ज्ञातव्यास्ति । पञ्चदशभूतद्विसप्ततितः षोडशशतत्रिवर्षपर्यन्तेसम्वत्सरे आभ्यन्तरैकत्रिंशद्वर्षाणां समये इति इकतीसा एक ॥ ३ ॥

काव्य

संवत्सरे द्विसप्ततिपञ्चदशसु समाधि शय्यायां ।
निश्चित वस्तुस्वरूपे भविष्यकाले भविष्यामि ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—बहत्तर, बहत्तर, बहत्तर । चौवन उत्पन्न हो गया है । बहत्तर बहत्तर बहत्तर । इकतीस वर्षों का एक "इकतीसा" है ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—बहत्तर बहत्तर बहत्तर । पन्द्रह सौ बहत्तर सम्वत्सर में शरीर से मैं भिन्न हो जाऊँगा, हो जाऊँगा, हो जाऊँगा । इस समय वर्तमान में पन्द्रह सौ चौवन सं० उत्पन्न हो चुका है । मैं स्मरण करता हूँ, सावधान स्वरूप होता हूँ । बहत्तर बहत्तर बहत्तर । इकतीस वर्षों का एक "इकतीसा" आने वाला है, सं० १५७२ से १६०३ तक इस इकतीस वर्ष के आभ्यन्तर समय में अनेक प्रमुख शिष्यों की समाधि-स्वर्गवास भी होगा, यह निश्चित रूप से जानने योग्य है । सं० १५७२ से १६०३ वर्ष पर्यन्त, सम्वत्सर के भीतर इकतीस वर्ष का समय इकतीसा एक होगा ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—सम्वत् १५७२ में मैं समाधि शैय्या में निश्चित वस्तु स्वरूप को भविष्य में प्राप्त करूँगा ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में अपने समाधि सम्वत्सर का अत्यन्त वीतराग भाव से स्मरण किया है। अभी समाधि सम्वत्सर को अठारह वर्ष का समय शेष है। आयु का ४९ वाँ वर्ष चल रहा है। सं० १५५४ में यह बात कही जा रही है। सूत्र में स्पष्ट कथन है। एक और नवीन बात सूत्र में कही गई है—इकतीसा एक अर्थात् इकतीस वर्षों का एक इकतीसा होगा। ज्ञात होता है कि श्री गुरुदेव ने अपने अनेक शिष्यों की समाधि का समय भी जान लिया था। वह समय १५७२ से १६०३ तक का है। आगे पीछे का होता तो सूत्र में संकेत अवश्य होता। अपनी मृत्यु का समय ज्ञात हो जावे और उस पर स्वयं का विश्वास जम जावे, फिर तो सुलटाने के लिये उपदेश की भी आवश्यकता नहीं, शिष्यों को उनका समय बताकर उनके वीतरागभावों को अत्यन्त दृढ़ कर दिया। स्वामी जी बार-बार सम्वत् ७२ को स्मरण करते हैं। इसका एक ही प्रयोजन है कि अपना व अपने शिष्यों के वीतराग भाव दृढ़ बने रहें। अपने अविनाशी स्वरूप का ध्यान रहे ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

इकतीस-एक, बहत्तरी अपने समाधी समय का।
शुद्धोपयोग हुआ, कि आया स्मरण अपने समय का ॥ ३ ॥

दो शिष्यों की जिनश्रेणि

गणधर कलनावती रुइयाजिन, जिनश्रेणिकू उत्पन्न भये ॥ ४ ॥

टीका—स्वरूपसम्मुखो यो—जिनश्रेणिसंयुक्तः सः। जिनश्रेणिरिति चतुर्थगुणस्थानादारभ्य चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्ता जिनश्रेणिः। तस्यां जिनश्रेण्यांगणधरस्वरूपा कलनावती रुइयाजिनश्च द्वावुत्पन्नौ शिष्य संघे ॥ ४ ॥

काव्य

श्री रुइयाजिनःश्रेण्यां, श्रेष्ठा सा कलनावती ।
आत्मसन्मुखतावाप्तिः, भवाब्धौ निकटे तटे ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—गणधर कलनावती और रुइयाजिन ये दोनों जिनश्रेणि को प्राप्त हुये । इन्हें सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान तथा चारित्र उत्पन्न हुआ ॥४॥

टीका अर्थ—जो स्वरूप के सन्मुख हैं वह जिनश्रेणि संयुक्त है । यह जिनश्रेणि चौथे गुणस्थान से चौदहवें पर्यन्त है । उस जिनश्रेणि में गणधर स्वरूप कलनावती और रुइयाजिन ये दोनों शिष्य उत्पन्न हुये ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—श्री रुइयाजिन तथा श्रेष्ठा कलनावती ये दोनों जिन-श्रेणि में उत्पन्न हुये हैं । इन्हें आत्म सन्मुखता प्राप्त हुई है । ऐसा तभी होता है जब संसार का तट निकट आता है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—गणधर कलनावती जी तथा रुइयाजिन ये दोनों जिन-श्रेणिजू प्रगट हुये हैं । इनको जिनश्रेणि में सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र का लाभ हुआ है । वैसे तो जिनश्रेणि के गुणस्थान चौथे से १४वें तक ११ होते हैं । परन्तु इस काल में सातवें गुणस्थान तक ही पहुँच सकते हैं । आगे और भी अनेक सूत्रों में जिनश्रेणि का वर्णन होगा, सब जगह सातवें तक का भाव समझना चाहिये । क्योंकि जहाँ तक की प्राप्ति है वहीं तक की बात सूत्रों में है । इन शिष्यों को जिनश्रेणि हुई, इसका अर्थ है चौथे से सातवें तक चार गुणस्थानों में से ही योग्यतानुसार गुणस्थान प्राप्त हुये । यदि चौथा भी हुआ तो जिनश्रेणि हुई ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

जिनश्रेणि में उत्पन्न गणधर दो हुये इस समय के ।
कलनावती, रुइयारमण जिन मुकुटमणि निज समय के ॥ ४ ॥

शून्य स्वभाव

सोवत का हो रे । उठ कलश लेहु । सत्ता एक सुन्न बिन्द । उत्पन्न सुन्न स्वभाव ॥ ५ ॥

टीका—स्वपिषि किं रे ! उत्तिष्ठत ! शून्यस्वभावस्य षट्त्रिंशदर्क-स्वभावस्य, चतुःषष्ठिकलशं वा लेहि-स्वीकुरु-गृहाण। आत्मनस्तु-एकमात्र स्वसत्ता शून्यस्वभावः। विन्दुस्वभावः। निर्विकल्पस्वभाव एव शून्य-स्वभावः। शून्यस्वभावोऽयं भावमोक्षः। ध्रुवद्रव्यदृष्टिर्वा। आत्मन्यु-त्पन्नः शून्यस्वभावः। ममेति भावः ॥ ५ ॥

काव्य

एकमात्र स्व सत्तायां, स्वभावे शून्यता भवेत् ।
शुद्धोपयोगोऽयं शून्य, स्वभावो मुक्तिकारणम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—सोते क्या हो रे ! उठो कलश लो ! एकमात्र सत्ता ही शून्य स्वभाव है। विन्दु स्वभाव है। उत्पन्न हुआ है शून्य स्वभाव ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—सोते क्या हो रे ! उठो ! शून्य स्वभाव के, ३६ अर्कों के स्वभाव कलश लो; चौंसठ कलश लो, स्वीकार करो, ग्रहण करो। आत्मा की एकमात्र अपनी सत्ता ही शून्य स्वभाव है। विन्दु स्वभाव है। निर्वि-कल्प स्वभाव ही शून्य स्वभाव है। शून्य स्वभाव यह भावमोक्ष है। अथवा ध्रुव द्रव्यदृष्टि भावमोक्ष है। आत्मा में उत्पन्न हुआ है शून्य स्व-भाव। गुरुदेव का शून्य स्वभाव उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—एकमात्र अपनी सत्ता हो, वहाँ शून्यता होती है। अपने स्वभाव में यह शुद्धोपयोग ही तो शून्य स्वभाव है। यही मोक्ष का कारण है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—सोते क्या हो रे ! उठो कलश लो ! यहाँ सोते क्या हो से प्रयोजन है—अपने स्वरूप को भूल कर मोहनिद्रा में क्यों सोते हो ! उठो, अपने स्वरूप में जागो। कलश लो। आगे चौथे अध्याय के ५ वें सूत्र में कलशों का वर्णन आवेगा। वहाँ जिनश्रेणि में चौंसठ कलश बताये हैं। वे ही चौंसठ कलश लेने का उपदेश यहाँ भी है।

ये चौंसठ कलश जिनश्रेणि में ही होते हैं। अतएव जिनश्रेणि और कलश दोनों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है:—जिनश्रेणि—सम्यग्दर्शन

होते ही जहाँ जिन संज्ञा प्राप्त होती है, चौथे गुणस्थान से जिनश्रेणि प्रारम्भ होकर चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त ग्यारह गुणस्थानों की जिनश्रेणि होती है। परन्तु यह जिनश्रेणि चार विभागों में समझने योग्य है। प्रथम—चौथे से सातवें गुणस्थान तक। द्वितीय—आठवें से ग्यारहवें तक उपशम श्रेणी। तृतीय—आठवें, नौवें, दशमे, और बारहवें की क्षपकश्रेणी। चतुर्थ—तेरहवें और चौदहवें की—जिनेन्द्र पद श्रेणी। इस प्रकार चार तरह से जिनश्रेणि को समझना चाहिये।

इस पंचम काल में केवल चौथे से सातवें तक (स्वस्थान अप्रमत्त गुणस्थान तक) चार गुणस्थान ही होते हैं। अतएव पहला विभाग यह चार गुणस्थानों का ही यहाँ वर्तमान काल में प्रयोजन है। इन चार गुणस्थानों की जिनश्रेणि में ही चौंसठ कलश होते हैं। इन कलशों को लेना चाहिये। वे कलश अपने स्वरूप में ही प्राप्त होते हैं। प्राप्त होने पर स्वरूप में ही ढलते हैं। चौंसठ कलशों की क्रमवार संख्या इस प्रकार है। चार गुणस्थानों के ६४ —

१. चौथे गुणस्थान में तीन सम्यक्त्व के तीन कलश—उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व।
२. पाँचवें गुणस्थान में देशव्रत के ५ कलश।
३. छठवें गुणस्थान में २८ मूलगुणों के २८ कलश।
४. सातवें गुणस्थान में निश्चय मूलगुणों के २८ कलश।

इस प्रकार सब मिलाकर ३–५–२८–२८=६४ कलश जो जिस गुणस्थान पर है, उस पर वहाँ के उतने ही कलश ढलते हैं। सातवें गुणस्थान पर पूरे ६४ ढलते हैं श्री गुरु स्वामी जी पर ६४ कलश ढलते थे।

इसी सूत्र में—"सत्ता-एक-सुन्न-विन्द" का बड़ा ही सुन्दर और यथार्थ स्वरूप बताया है। शून्य स्वभाव का स्वरूप क्या है? तो कहते हैं—जहाँ एक की सत्ता हो, दूसरी वस्तु ही जहाँ न हो वहाँ शून्य स्वभाव होता है। आत्मा में जिस समय आत्मा के सिवाय कोई न रहे तब समझें कि वह

शून्य स्वभाव है। इसी का नाम शुद्धोपयोग समाधि है। यही निर्विकल्प समाधि है ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

मोह निद्रा में शयन करते रहोगे कब तलक।
सत्ता सम्हालो शून्य-बिन्द, स्वभाव की खोलो पलक ॥ ५ ॥

तीन – अर्थ

अर्थ, त्रि अर्थ, शुद्धं ध्रुवं ॥ ६ ॥

टीका—अयं वस्त्वात्मपदार्थः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि त्रि-अर्थ समूहं यदा प्राप्नोति, शुद्धस्वरूपां सिद्धिं तदाध्रौव्यमविनाशीपदं प्रकाशयति स्वरूपे ॥ ६ ॥

काव्य

अयमहो मम शून्य स्वभावतः,
निज गुणा रत्नत्रयमुक्तिदाः।
ध्रुवपदोऽयमनन्त स्वभावजः,
भवति सद्गुरुदेव प्रसादतः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—प्रयोजन भूत अर्थ—पदार्थ तीन हैं। यही शुद्ध, ध्रुव और अविनाशी हैं ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—यह आत्म वस्तु स्वयं पदार्थ अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीन अर्थों को जब प्राप्त करता है तब शुद्धस्वरूपा सिद्धि को ध्रौव्य अविनाशी पद को अपने स्वरूप में प्रकाशित करता है ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—अहो! यह मेरे शुद्ध स्वभाव से ही शून्य अवस्था, अपने गुण, मुक्ति का मार्ग रत्नत्रय, यह अनन्त स्वभाव से संयुक्त ध्रुव पद इन सबकी प्राप्ति श्री सद्गुरुदेव के प्रसाद से ही होती है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—प्रयोजनभूत त्रि अर्थ, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र ये तीन हैं। वैसे तो त्रिअर्थ के और भी अनेक अर्थ हैं। ॐ ह्रीं

थीं, देवगुरुशास्त्र आदि तीन की संख्या जिनकी हो वे त्रिअर्थ कहे जा सकते हैं। त्रिभंगी सार में तो तीन-तीन भंग के सैकड़ों त्रि अर्थों का विवेचन है।

इस सूत्र के लक्ष्य—त्रि अर्थ हैं—सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय, इनसे बड़ा प्रयोजन जीव का दूसरा नहीं। जिस जीव को इन तीनों अर्थों की प्राप्ति हुई, उसने ही अपना पूर्ण विकास किया। अर्थ शब्द का दो बार प्रयोग करने का आशय यही है कि प्रयोजनभूत और तीन अर्थ स्वरूप। इन तीन अर्थों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है। और जब एक या दो होंगे साधक तो बना रहेगा मुक्ति नहीं होगी। ये तीन रत्नत्रय-त्रि अर्थ ही जिनशासन का मूल है, लक्ष्य है, सर्वस्व है ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

त्रय अर्थ हैं निज अर्थ के यह शुद्ध हैं ध्रुव हैं अटल।
यह मार्ग तेरी मुक्ति के गुण व्यक्त इनसे ही सकल ॥ ६ ॥

उवन-ध्रुव

उव उवन उवन शुद्धं ध्रुव शाश्वतं ॥ ७ ॥

टीका—उव शुद्धस्वरूपस्य, उवन उदितात्मावस्थां, उवनशुद्धं ध्रुव-शाश्वतं पदं प्राप्नोति जीव स्वसन्मुखता युतः, सम्यग्दृष्टिः ॥ ७ ॥

काव्य

उव उवन्न उवन्न ध्रुवं पदम्,
निजस्वभाव महामहिमोदयम्।
अहः ! शाश्वत शुद्धस्वचिन्मयम्,
उपगतोऽहमनन्त चिदात्मकम् ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—मेरे उदय हुये स्वरूप में, मेरे उवन की शुद्धात्मा की निर्मलता-शुद्धता भरी है। मेरा वह उवन ध्रुव है, शाश्वत है ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—उव शुद्धस्वरूप की, उवन उदयावस्था को उवन शुद्ध ध्रुव शाश्वत पद को सम्यग्दृष्टि अपने सन्मुख हुआ जीव ही प्राप्त करता है ॥७॥

काव्य अर्थ—अहो! मेरे उवन ध्रुव पद को मैंने प्राप्त किया। उत्पन्न किया। निजस्वभाव की महामहिमा के उदय को, शाश्वत शुद्ध अपने चिन्मय को, अनन्त चैतन्य स्वरूप को प्राप्त किया। मैं अपने समीप पहुँचा ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—श्री गुरु महाराज के कुछ उनके अपने शब्द हैं जो उनकी प्रत्येक शब्द रचना में प्रयुक्त होते हैं। जैसे उत्पन्न शब्द का प्रयोग इस ग्रन्थ में लगभग ३०५ बार किया है। जैसे उत्पन्न शब्द उनका निज का बन गया, ठीक इसी प्रकार उवन शब्द भी उनका निजी शब्द है और भी अनेक शब्द हैं।

आत्म स्वरूप के महत्त्वपूर्ण प्रकरण में उवन शब्द अवश्य आता है। इस सूत्र में उव-उवन की शुद्धता ध्रुवता और शाश्वत अवस्था को कहा है। श्रीगुरु अपने उवन की ध्रुव अवस्था का तो मंत्र के समान जाप कर रहे हैं। अपने ध्रुव स्वभाव को वे एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहते। जैसे उदय होते हुये सूर्य की शोभा अवर्णनीय है, इसी प्रकार उदय होते हुये आत्मा को चित्रित करने के लिये गुरुदेव ने उवन शब्द को चुना है। इस शब्द के द्वारा वे आत्मा की अवर्णनीय शोभा को देखते हैं।

उदय हुआ मेरा आत्मा शुद्ध है, ध्रुव है, शाश्वत है। सूर्य का तो अस्त होता है। परन्तु उदय हुये आत्मा का कभी अस्त होता ही नहीं, इसीलिये आत्मा को अर्क कह कर सम्बोधित किया है। अर्क नाम भी तो सूर्य का है ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

उव उवन है शुद्धात्मा ध्रुव शाश्वते गुण का धनी।
क्षेत्रावगाह अनन्तगुण फिर भी स्वतंत्र स्वगुण गुणी ॥ ७ ॥

बहत्तर-सुमन

बहत्तर सुमन चतुष्टय ॥ ८ ॥

टीका—स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्स्वचतुष्टयस्तेषां द्रव्यादिचतुष्टय-भेदानामष्टादशाष्टादशभेदैर्द्विसप्ततीनां दोषाणामभावे गुणाः प्रफुल्लतां यान्ति चतुष्टयभेदाद्विसप्ततिर्दोषाणां स्थाने द्विसप्ततय एव सुमन-स्वभावाः गुणाः विकासं प्रफुल्लतां यान्ति ॥ ८ ॥

काव्य

> **द्विसप्ततीनां दोषाणामभावे सन्ति सद्गुणाः ।**
> **तेषां पुष्पप्रसन्नानां सुगन्धिः स्वचतुष्टये ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ—चतुष्टय के बहत्तर सुमन हैं ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भेद से अपने चतुष्टय ये चार हैं। इन चारों के अठारह-अठारह भेद से बहत्तर प्रभेद हैं। आत्मा के अठारह दोषों के अभाव में, अठारह-अठारह स्वगुण प्रफुल्लित होते हैं चतुष्टय के भेद से बहत्तर दोषों के स्थान में ये बहत्तर सुगन्धित सुमन खिलते हैं। अतएव स्वानुभूति में शुद्धात्मा के ये ७२ सुमन चतुष्टय हैं ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—बहत्तर दोषों के अभाव में बहत्तर गुण उत्पन्न होते हैं उन प्रफुल्लित गुणों-पुष्पों की सुगन्धि से अपने उक्त चारों चतुष्टय सुगन्धित हो रहे हैं ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—यहाँ आत्मा में अपने गुणों के बहत्तर सुमनों से अपने स्वचतुष्टयों को श्रृंगारित किया है। सुसज्जित किया है। अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना काल और अपना भाव ये स्वचतुष्टय हैं, दूसरे अपने आत्मा के स्वभाव में अनन्तज्ञानादि स्वचतुष्टय हैं। अठारह दोषों को चतुष्टय के प्रत्येक भेद से नष्ट किये जाने की अपेक्षा से और उनकी जगह उनके प्रतिपक्षी गुणों के प्रगट होने से ७२ भेद होते हैं।

शुद्ध द्रव्य की अनुभूति के ये मार्ग हैं, शुद्धोपयोग को स्थिर रखने के लिये ये अनुभूतियाँ ही परम श्रेष्ठ साधना हैं ॥ ८ ॥

पद्मानुवाद

द्रव्यादि स्वचतुष्टय जनित हैं भेद सुमन स्वरूप में।
ज्ञान दर्शन वीर्य सुख सुरभित हुये निज रूप में ॥ ८ ॥

अनन्त भव

चौरासी उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न अनन्त भव ॥ ९ ॥

टीका—जीवाश्चतुरशीतिलक्षासुयोनिसु पुनः पुनः उत्पन्नोत्पन्नोत्पन्नोभूय, अनन्तभवेषु भ्रमणं कुर्वन्ति संसारसागरे भवाटव्यां वा ॥ ९ ॥

काव्य

चतुरशीति योनिसु भ्रमणानन्त कृतश्च सः।
जीवः स्वदुर्लभे काललब्धौ प्राप्तो जगत्तटम् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—चौरासी लाख योनियों में बारम्बार उत्पन्न हो, होकर, उत्पन्न हो, होकर अनन्त भव किये ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—जीव चौरासी लाख योनियों में पुनः पुनः उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न होकर अनन्त भव भ्रमण करता है। इस प्रकार संसार सागर या भव वन में भटक-भटक कर काल पूरा कर रहा है ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—चौरासी लाख योनियों में अनन्तभव भ्रमण करते हुए यह जीव अपने दुर्लभ काललब्धि के योग से संसार के तट को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—चौरासी लाख योनियों में अनन्तानन्त बार उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न हो होकर अनन्त भव किये। एक एक भव की कहानी का भी अन्त नहीं है। जिस जन्म मरण की सभी बातें अनन्त हैं, उसके अनन्त भवों के विषय में अब क्या विचार है ? क्या इसी प्रकार आगे भी इस अनन्त के चक्र को चालू ही रखना है। यह इस सूत्र के अन्तरंग में एक प्रश्न है, जो स्वामी जी अपने प्रिय जन रुइयाजिनादि से कर रहे हैं। शिष्यगण क्या कहें ? अतएव श्री गुरुपरमदयालु स्वयं आगे के सूत्र में ही मार्गदर्शन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

बीते अनन्तानन्त भव जीवन मरण के जाल में ।
यह लक्ष चौरासी मिटा, आकर स्वयं की चाल में ॥ ९ ॥

अपना उत्पन्न

आपनो आपनो उत्पन्न निमिष निमिष लेहु लेहु ।
जैसे ले सकहु लेहु ॥ १० ॥

टीका—आत्मनि उत्पन्नं स्वोदयं निर्विकारभावं निमिषे-निमिषे क्षणे-क्षणे स्वीकुरु, येनकेनोपायेन कथमपि तं स्वभावं स्वीकर्तुं प्रमादी मा मा भव ॥ १० ॥

काव्य

स्वकीयोत्पन्नं निमिषे निमिषे लेहि स्वीकुरु ।
येनकेन प्रकारेण प्रसादं सद्गुरोर्वर ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—अपना अपना उत्पन्न निमिष निमिष में लेओ लेओ, जैसे भी ले सकते हो लेओ ॥ १० ॥

टीका अर्थ—आत्मा में आत्मा के द्वारा आत्मा के अपने उत्पन्न को, उदय को, निर्विकार भाव को निमिष-निमिष में, क्षण-क्षण में लेओ, लेओ स्वीकार करो। जिस किसी प्रकार से, उपाय से, कैसे भी उस अपने भाव को स्वीकार करने में प्रमादी नहीं होना ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—अपने उत्पन्न को निमिष-निमिष में लेओ लेओ जिस प्रकार से ले सको उसी प्रकार से लेओ स्वीकार करो ॥ १० ॥

विशेषार्थ—यदि चौरासी का अनन्त भव भ्रमण को मिटाना है तो अब अपने एक-एक क्षण को व्यर्थ मत गमाओ। अपना-अपना उत्पन्न शुद्ध-स्वभाव एक-एक निमिष क्षण-क्षण में सम्हालो। जैसे भी जिस उपाय से भी अपना स्वभाव आप ले लें तब तो अनन्त भव का अन्त इसी भव में हो

गया समझिये। अन्यथा जो हो रहा है वह तो हो ही रहा है। इस भव में सावधान होने का समय है। यह समय फिर कब मिलेगा ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

क्षण क्षण स्वरूपाचरण को निज में सम्हालो भाव से।
जैसे बने ले लो तुरत निज भाव को निज दाव से ॥ १० ॥

अपने घर में प्रवेश करो

शंकविली उत्पन्न प्रवेश ॥ ११ ॥

टीका—शंकादोषं परित्यजतु, विलयं कुरु। शंकास्वसन्मुखतां नाशयति। संशयात्मा विनश्यतीति नीति निशंकितांगं निःशंकश्रद्धां स्वभावे कुरु। उत्पने प्रविशन्तु सर्वे, स्वरूपे निजगृहे इति भावः। गुप्तस्वभावस्य भावभासनायां गच्छन्तुत्यक्त्वाशंकां ॥ ११ ॥

काव्य

त्यक्त शंकां निजोत्पन्ने उत्पन्नार्थे प्रवेशनम्।
अत्रोत्पन्नस्य भावार्थः पारिणामिक भावना ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ—शंका को नाश करके अपने उत्पन्न स्वरूप में—शुद्धस्वभाव में प्रवेश करो ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—शंका दोष का परित्याग करो। शंका अपनी आत्म सन्मुखता को नाश करती है। संशय आत्मा पुरुष का विनाश होता है इस प्रकार की नीति है। निशंकित अंग को, निशंक श्रद्धा को अपने भाव में करो। अपने स्वभाव में जो उत्पन्न हो वही उत्पन्न है। अपने शुद्धात्म सदन में प्रवेश करो, अपने गुप्त स्वभाव की भाव भासना में जावो। प्रवेश करो ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—शंका त्याग कर अपने उत्पन्न में, अपने स्वरूप में, प्रवेश करो। यहाँ उत्पन्न शब्द का भावार्थ है—पारिणामिक भाव जो कि अपना निज भाव है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—शङ्का छोड़कर अपने उत्पन्न में प्रवेश करो, यह कितने दृढ़ विश्वास के शब्द हैं। आप यह सोचें कि यदि हम गुरु महाराज के कहने से अपने स्वभाव में चले गये तो कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय, यह सूत्र अपने स्वभाव में बैठकर के ही बनाया गया है, और वहीं से गुरुदेव पुकार रहे हैं—चले आओ, प्रवेश करो ! शंका छोड़कर चले आओ। अपने-अपने स्वभाव में जाने की बात है, एक बार जाकर तो देख ! तेरे स्वभाव की बात है। विभाव से उत्तर नहीं देना चाहिये। स्वभाव में जाने के लिये स्व-अपना भाव ही आप के पास है। स्वभाव में भाव को पहुँचाइये। यह तो प्रयोग करके देखने की बात है शब्दों में स्वभाव नहीं है। स्वभाव में शब्द नहीं हैं। शंकाविली उत्पन्न प्रवेश सूत्र को शंका त्याग कर मनन करो ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

छोड़ शंका तू चला जा कर प्रवेश स्वरूप में।
तेरा यही घर शाश्वता, क्यों घूमता बहुरूप में ॥ ११ ॥

अनन्तदुन्दुभी के शब्द

घन उत्पन्न कोड अनन्त दुन्दुही शब्द ॥ १२ ॥

टीका—चिद्घनचैतन्यपिण्डेस्वयमुत्पन्नः इति घनोत्पन्नः। अतीन्द्रियानन्द दुन्दुभिशब्दाः उत्पन्नाः कोडस्वभावाः सार्धत्रिकोटिरोमरोमेषु तत्रस्थात्मप्रदेशेषु निजानन्ददुन्दुभिशब्दोत्पन्नाः ॥ १२ ॥

काव्य

आनन्दघने चिति वा पिण्डे चैतन्य दुन्दुभिः शब्दाः।
उत्पन्नाश्चानन्ताः आनन्दा दुन्दुभि शब्दाः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—चैतन्य घन चित्पिण्ड के प्रत्येक प्रदेश में, ३॥ कोटि-रोम-रोम में अनन्त शुद्धस्वरूप की दुन्दुभी के आनन्दमय शब्द उत्पन्न हुये ॥ १२॥

टीका अर्थ—चिद्घन चैतन्य पिण्ड में स्वयं उत्पन्न ऐसा घन उत्पन्न

अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप दुन्दुभि शब्द उत्पन्न हुये। अपने कोड स्वभाव ३॥ कोटि रोम-रोम आत्मप्रदेशों में निजानन्द दुन्दुभी के शब्द उत्पन्न हुये यह भाव है॥ १२॥

काव्य अर्थ—आनन्दघन चैतन्यपिण्ड आत्मा में अपनी अनन्त स्वरूप दुन्दुभी के अनन्त-कोड-शब्द उत्पन्न हुये। अपने आप में प्रगट हुये॥ १२॥

विशेषार्थ—श्रीगुरु अपनी बात कह रहे हैं। चिदानन्द घनस्वभाव में अनन्त कोड दुन्दुभी के शब्द हो रहे हैं, भीतर ही उत्पन्न हो रहे हैं। भीतर ही सुनाई दे रहे हैं। सावधान करने के लिये दुन्दुभी बजती है, सबको आमन्त्रित करने के लिये दुन्दुभी बजती है। भीतर की दुन्दुभी अपने भीतर किसे सावधान करती है। किसे भीतर बुलाती है। अपने भीतर जाने वाला कौन है? उसे ही भीतर बुलाया जा रहा है। आत्मा की दुन्दुभी को अनन्त कोड शब्द का विशेषण लगा है। ३॥ कोटि रोम-रोम के उत्साह महोत्सव को कोड कहते हैं। इन अनन्त कोड दुन्दुभियों को सुनने वाला अनन्त नाथ एकबार भी अपनी दुन्दुभी बजा दे और अपने आपको ही सुना दे तो अनन्त भव का हिसाब एक भव में ही चुकता होता है॥ १२॥

पद्यानुवाद

जन्मकल्याणक हमारा हम मनाते आप में।
अन्तर्ध्वनी की दुन्दुभी हम ही सुनाते आप में॥ १२॥

तीन लयों का स्वरूप

रमणावतो तीन लय उत्पन्न हुई हैं॥ १३॥

टीका—रमणावतेस्त्रिलयोत्पन्नाः भविष्यन्ति। रमणावती शक्तिः शुद्धोपयोगभावस्य। त्रिलयभावाश्च स्वभावे एव भविष्यन्ति। लयेति तल्लीनताभावः। समलयभावः समयलयभावः समयध्रुवलयभावश्च एते त्रिलयभावानां त्रिभेदाः। अत्र समलयादिभावानां किञ्चिन्निरूपणम्।

१. समलय उत्पन्न

समभावे निमग्नः समलयोत्पन्नभावः। स्वसम्मुखभावः समलय

स्वभावः, प्रशमभावः, समतास्वभावः समप्रशमसमताभावेतन्मयता, एकाग्रचिन्तानिरोधः समलयध्यानम् ।

काव्य

समलये समभावविचारणम्,
विषमभाव विशेष निवारणम् ।
निज समस्त गुणेषु निमग्नता,
समलयं धर रे मन सत्वरं ॥ १३ ॥

२. समयलय उत्पन्न

स्वसमये स्वचिदात्मनि निर्विकल्पभावाभेदस्वभावेन शुद्धोपयोग-स्वभावेन वा एकाग्रभावस्य प्राप्तिः स्वानुभूतिर्वा स्वसमयलय ध्यानं ।

काव्य

समय वस्तु स्वरूप सु चिन्तनम्,
स्व समये परिपूर्ण निरन्तरम् ।
पर पदार्थ परे भव चिन्मय,
समयतां समतां धर सत्वरं ॥ १४ ॥

३. समयध्रुवलय उत्पन्न

समयध्रुवस्वभावे तल्लीनताभावः, निजध्रौव्यस्वभावेऽनन्तगुणपर्यय-समन्विते सत्स्वरूपे या निमग्नता सा समयध्रुवलय स्वरूपाशुद्धोपयोग-समाधिर्ध्रुवसमाधिर्वा ।

काव्य

गुणिगुणेषु निराकृतभेदताम्,
निजविभाव सुरां च बहिष्कृताम् ।
समयसार लये लयतां धर,
शृणु समस्त लयं धर सत्वरं ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—रमणावती की तीन लय उत्पन्न होंगी ।

टीका अर्थ—रमणावती की तीन लय उत्पन्न होंगी। शुद्धोपयोग भाव की यह रमणावती शक्ति है। और ये तीनलय के भाव स्वभाव में ही होंगे। लयनाम तल्लीनता भाव का है। समलय भाव, समयलय भाव और समयध्रुवलय भाव ये तीन लयों के भेद हैं। यहाँ समलयादि भावों का किंचित् निरूपण करते हैं।

१. समलय का स्वरूप

समभाव में निमग्न होना समलय है। अपना सन्मुख भाव, समलय-स्वभाव, प्रशम भाव, समता स्वभाव इन समप्रशम समताभावों में तन्मयता एकाग्र चिन्ता निरोध यही समलय ध्यान है।

काव्य अर्थ—समलय में समभाव की साधना होती है। और विशेष-कर विषम भावों का निवारण किया जाता है। अपने समस्त गुणों में में निमग्न होना यह समलय है। हे मन ! समलय को शीघ्र ही धारण कर॥ १३॥

२. समयलय का स्वरूप

स्वसमय में अपने चिदात्मा में निर्विकल्पभाव से अभेद भाव से अथवा शुद्धोपयोग स्वभाव से एकाग्र भाव की प्राप्ति अथवा स्वानुभूति की प्राप्ति ही समयलय ध्यान है।

काव्य अर्थ—अपने स्वसमय और वस्तु स्वरूप का चिन्तन करना, अपने समय में निरन्तर परिपूर्णता पूर्वक रहना समयलय है। हे चिन्मय ! पर पदार्थों से दूर होकर इस समयता को, समता को शीघ्र ही धारण कर॥ १४॥

३. समयध्रुवलय का स्वरूप

स्वसमय, ध्रुव स्वभाव में तल्लीनता का भाव समयध्रुवलय है। अपने ध्रौव्य स्वभाव में अनन्त गुण पर्यायों से सहित अपने सत्स्वरूप में जो निमग्नता है वह समयध्रुवलय स्वरूपा शुद्धोपयोग समाधि है अथवा ध्रुव समाधि है।

काव्य अर्थ—गुण और गुणी का विकल्पभेद जहाँ निराकृत हो गया

है। अपने विभाव की मदिरा का पूर्ण बहिष्कार जहाँ हो चुका है। ऐसी समय ध्रुवलय में, समयसारलय में तल्लीनता को प्राप्त कर। और सुन ! समस्त लयभावों को शीघ्र ही धारण कर ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में तीन लयों का स्वरूप विस्तार से पृथक्-पृथक् स्पष्ट किया गया है। विशेषार्थ में लिखने योग्य विशेष पहिले ही टीका और उसके स्पष्टीकरणों में लिख आये हैं।

तल्लीन होना समस्त प्राणियों का स्वभाव गुण है। किन्तु जिन सांसारिक इन्द्रिय विषयों में तल्लीनता होती है वहाँ से बदल कर अब अपने स्वरूप की ओर उसे मोड़ना है, बस, इतना यदि पुरुषार्थ यह जीव कर लेवे तो इसकी मुक्ति है। इस अभिप्राय से ही यह लय साधना बताई है ॥ १३-१४-१५ ॥

पद्यानुवाद

रमणावती की तीन लय उत्पन्न निज में हो रहीं।
समलय समयलय समयसार स्वरूप लयमय हो रहीं ॥ १४ ॥

१. समलय

आत्मा के गुणों में समभाव से लय हो यदा।
समलय यही है जीव को करती स्वसन्मुख सर्वदा ॥ १५ ॥

२. समयलय

गुण में गुणी में भेद से आनन्दमय जब लीन हो।
समयलय से भेदज्ञान स्वरूप में तल्लीन हो ॥ १६ ॥

३. समयध्रुवलय

सब भेद हों जब दूर निज के गुण गुणी ज्ञानादि में।
यह निर्विकल्प तृतीयलय शुद्धोपयोग समाधि में ॥ १७ ॥

इति तीन लय निरूपण

बहत्तर में समय लय

बहत्तर समय लय उत्पन्न ॥ १४ ॥

टीका—द्विसप्ततिर्यञ्चदशशतसंवत्सरे समयलयोत्पत्तिर्भविष्यति श्रीसंघे। श्रीगुरुदेव समाधिसमयानन्तरेऽनेकशिष्याणामपि समयलय समाधिर्भविष्यति। सर्वत्र वैराग्यभावः। सर्वत्र वीतरागपरिणतिर्भविष्यति तत्समये। भेदविज्ञानसम्पन्नजनसमूहेऽनेकशिष्याणां भावाः स्वात्मनि चिदानन्दचैतन्यस्वरूपे लय भावं समयलयभावं गमिष्यन्ति ॥ १४ ॥

काव्य

शताब्दिसाधोडसमीतिवृत्ता,
सम्वत्सरे शिष्य समाज भावाः।
भिन्नाः विभिन्नाः ह्यपेक्षभिन्नाः,
लयत्रयेऽनेक समाधि विज्ञा ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—सम्वत् १५७२ में समयलय की उत्पत्ति होगी। दूसरे अर्थ में—सं० १५७२ के समय को लेकर ही हम उत्पन्न हुये हैं ॥ १४ ॥

टीका अर्थ—१५७२ सम्वत्सर में समयलय की उत्पत्ति होगी। श्रीसंघ में गुरुदेव के समाधि समय के अनन्तर अनेक शिष्यों की भी समय समाधि होगी। सर्वत्र वैराग्यभाव रहेगा। श्री संघ में वीतरागपरिणति रहेगी। भेद विज्ञानी शिष्यों के भाव आत्मा में चिदानन्द चैतन्य स्वरूप में लय भाव-समयलय भाव को प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

काव्य अर्थ—सम्वत् १५७२ में शिष्य समाज के भाव भिन्न विभिन्न प्रकार के होंगे। अनेक शिष्यों के भाव अपने स्वरूप से अभिन्न होंगे। अनेक शिष्यों के भाव तीन लयों में मग्न होंगे। अनेक समाधि विज्ञ जन समाधि को प्राप्त होंगे। ऐसा वह १६वीं शताब्दि इतिहास बनाने वाला है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—सम्वत् बहत्तर के समय को लेकर हम उत्पन्न हुये हैं। श्री गुरु ने यहाँ फिर से बहत्तर का स्मरण किया है। अथवा सम्वत् ७२ में हम अपने समय में लीन होने के लिये ही आये हैं। सं० ७२ में हमारी समयलय होगी, समयध्रुवलय होगी। तीनों लयें होंगी। दोनों ही अर्थ आत्म-

स्वभाव को सावधान करने वाले हैं। जिनका आत्मा जिस अर्थ से सावधान हो उन्हें वही उपादेय है ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

ज्ञान में आया बहुतर भूलते उसको नहीं।
पर देखिये निज भाव निज से भिन्न होता ही नहीं ॥ १८ ॥

तीन ग्रीवक

ॐ ह्रीं श्रीं ग्रीवकं ॥ १५ ॥

टीका—ॐ शुद्धात्मा, ह्रीं अरहन्त परमेष्ठी, श्रीं द्वादशांगसरस्वती। ग्रीवायां तिष्ठतीति ग्रीवकं। वाच्यवाचकयोः स्थापनाकरणीया स्वकण्ठे। लयत्रिसाधनायां पदस्थध्यानस्य मन्त्रपदरूपेण ध्यातव्यमुक्तसूत्रम् ॥ १५ ॥

काव्य

ॐ ह्रीं श्रीं ग्रीवके तिष्ठेत्तेषां वाच्ये हृदि स्थिरे।
पदस्थध्याने उत्पन्ने शुद्धचिद्रूप साधना ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—ॐ ह्रीं श्रीं ये तीन ग्रीवक हैं, कण्ठ में धारण कराने योग्य हैं। यह पदस्थ ध्यान है। ये मंत्र शुद्धात्मा के वाचक हैं। शुद्ध स्वभाव ही इन मन्त्रों का वाच्य है ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—ॐ से शुद्धात्मा, ह्रीं से २४ जिन अरहन्त परमेष्ठी, श्रीं से द्वादशांग सरस्वती। ग्रीवा में बैठे सो ग्रीवक। उसे कण्ठ में स्थापित करो, वाच्य-वाचक दोनों को, तीन लय की साधना में पदस्थ ध्यान के मन्त्र पद रूप से उक्त सूत्र का ध्यान करना चाहिये ॥ १५ ॥

काव्य अर्थ—ॐ ह्रीं श्रीं ये तीनों तो कण्ठ में रहें और इनका वाच्य हृदय में रहे। यह पदस्थ ध्यान है। इसकी साधना ही आत्मा की साधना है ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—तीन ग्रीवक ॐ ह्रीं श्रीं को अपनी ग्रीवा में कण्ठ में रखने का उपदेश है। जो लयों का साधन नहीं कर सकते उनके लिये

पदस्थ ध्यान का उपदेश है। इस ध्यान में मन्त्रों को अपने-अपने कण्ठ कमल में जपना पदस्थ ध्यान का साधन है ॥ १५ ॥

पद्यानुवाद

ओंकार वा ह्रींकार श्री निज कण्ठ ग्रीवा में जपो।
यह आत्म साधक मंत्र हैं त्रयकर्म इनसे ही खपो ॥ १९ ॥

तीन गुप्ति से तीन लय

तीन लय उत्पन्न गुप्ति ॥ १६ ॥

टीका—त्रिगुप्तिगुप्तस्वरूपेणैव त्रिलयसाधनोत्पत्तिर्भवति आस्रव-निरोधकारणा गुप्तिः। शुद्धसंवरतत्त्वाश्रयेण शुद्धोपयोग समाधिः तथा निर्जरा ततश्च मुक्तिः ॥ १६ ॥

काव्य

गुप्तिगुप्त स्वरूपे सा लयोत्पन्ना निधिः स्वतः।
स्वरूपे शुद्धचिद्रूपे स्वयं सिद्धिर्ददाति सा ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ—तीन लयों की साधना में तीन गुप्ति उत्पन्न होती हैं ॥१६॥

टीका अर्थ—त्रिगुप्ति से गुप्ति स्वरूप के द्वारा ही तीन लयों की साधना उत्पन्न होती है। गुप्ति से आस्रव का निरोध होता है। शुद्ध संवर तत्त्व के आश्रय से शुद्धोपयोग समाधि होती है। उससे निर्जरा तत्पश्चात् मुक्ति होती है ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—गुप्ति से गुप्त स्वरूप में वह तीन लयों से उत्पन्न निधि अपने आप अपने शुद्ध चिद्रूप की स्वयं सिद्धि को देती है ॥ १८ ॥

विशेषार्थ—तीनलय का साधक गुप्ति उत्पन्न करे। निश्चय गुप्ति गुप्त स्वरूप शुद्धस्वभाव है। व्यवहार में मन वचन काय ये तीन हैं, इनको अपने वश में रखना, सुरक्षित रखना गुप्ति है। इनको वश में रखने के लिये ही व्रत समिति गुप्ति आदि का पालन किया जाता है। गुप्ति यह संवर तत्त्व का कारण है। वचन और काय का संचालक तो मन है।

पहले मन को ही वश में किया जाता है। मन भी भावमन और द्रव्यमन के भेद से दो प्रकार का है भावमन ही तो समस्त कार्यों का कर्ता है। द्रव्यमन तो जड़ है, पुद्गल है। भावमन को सम्हालने वाला ही गुप्ति को प्राप्त होता है। बिना गुप्ति के किसी भी ध्यान की सिद्धि असम्भव है। सबसे प्रथम मन का ही अभ्यास कार्यकारी है। अशुभ विचारों से बचना यह प्रथम कक्षा है। फिर सांसारिक शुभ विचारों से बचना यह दूसरी कक्षा है। तत्पश्चात् समस्त शुभाशुभ विचारों से मन को बचाना ही साधना है। शुद्धोपयोग है। लयसाधना का यही एक प्रयोजन है॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

तीन लय से तीन गुप्ति स्वरूप निर्मल योग हो।
तल्लीनता निज शुद्ध पद में शुद्ध ही उपयोग हो॥ २० ॥

अवकाश निधि

उत्पन्न औकास निधि॥ १७ ॥

टीका—अनन्तनिधिश्चैतन्यभावः प्रकाशयत्यवकाशदानशक्ति स्वभावे। निजशुद्धानन्तगुणनिधिमवकाशदाने सामर्थ्ययुक्तोऽयमात्मा। निजगुणप्रकाशनाशक्तिः अवकाशं विकासं ददाति, स्वगुणान् ज्ञानाद्य-साधारणस्वभावान् स्वविदात्मनीति अवकाशनिधिः। भांडागारगुण-रत्नाकरस्वभावः॥ १७ ॥

काव्य

यत्र सर्वे गुणाः स्थान दानं प्राप्नुवन्ति सा।
अवकाशनिधिः स्वस्य स्वभावे कल्पवृक्षवत्॥ १९ ॥

सूत्रार्थ—अपने स्वरूप में अपने समस्त गुण एवं शक्तियों को स्थान दान देने की, प्रकाशित रखने की योग्यता को अवकाश निधि कहते हैं। वह जहाँ उत्पन्न हुई है, वह अवकाश उत्पन्न निधि है॥ १७ ॥

टीका अर्थ—अनन्तनिधि चैतन्यभाव अपने स्वभाव में अवकाशदान शक्ति को प्रकाशित करता है। अपनी शुद्ध अनन्त निधियों को अवकाश

देने में समर्थ यह आत्मा है। अपने गुणों को प्रकाशन करने वाली शक्ति अवकाश को विकास को देती है। अपने गुणों को ज्ञानादि असाधारण स्वभावों को अपने आत्मा में अवकाश देने वाली शक्ति ही अवकाशनिधि है, भंडार है, रत्नाकर है ॥ १७ ॥

काव्य अर्थ—जहां समस्त गुण स्थान दान पाते हैं वह अवकाशनिधि अपने स्वभाव में कल्पवृक्ष के समान विद्यमान है ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—तीन लय का साधक अपने विचारों में स्वभाव में अवकाश दान प्राप्त करता है। अशुभ विचारों को तो किंचित् भी अवकाश नहीं देता। जिसका मन शुभाशुभ का त्याग करके अवकाशनिधि को प्राप्त कर चुका है वह अपने शुद्ध स्वभाव के निकट ही पहुँच चुका है। जिसमें अनेक निधियों का संग्रह किया जावे वह भी निधि है। चक्रवर्ती की ९ निधियों के समान यह अवकाशनिधि संपत्ति का वितरण करती है। निधि से तो वैभव प्राप्त होता है, ठीक ऐसी ही निधि यह चेतन्य का अवकाश है ॥ १७ ॥

पद्यानुवाद

अवकाश निज निधि गुण अनन्त स्वरूप में पाते रहें।
यह तीन लय का मार्ग हम शिवमार्ग में जाते रहें ॥ २१ ॥

आत्मा में तीन लोक

लय उत्पन्न स्कन्ध तीन ॥ १८ ॥

टीका—लयत्रिभावनाभावितभावेस्वभावे लोकत्रय महास्कन्ध स्वभावं संस्थानविचयधर्मध्यानं प्रकाशयति स्वचिदात्मनि चिदानन्दात्मा चैतन्यः ॥ १८ ॥

काव्य

लयोत्पन्ने स्वभावे च त्रैलोक्य स्कन्धधारणा।
संस्थान विचयं धर्मध्यानं ध्यानेषु ध्यायति ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—तीन लयों के उत्पन्न होने पर ध्यान में ही तीनों महास्कन्ध त्रैलोक्य का संस्थान विचय ध्यान अपने स्वरूप में आता है ।। १८ ।।

टीका अर्थ—तीन लय की भावना से भावित भावस्वभाव में तीन लोक महास्कन्ध स्वभाव को, संस्थान विचय धर्मध्यान को अपनी आत्मा में चिदानन्द आत्मा चैतन्य प्रकाशित करता है ।। १८ ।।

काव्य अर्थ—लयोत्पन्न स्वभाव में तीन लोक रूप महास्कंध की धारणा उत्पन्न होती है । संस्थान विचय धर्मध्यान को अपने ध्यान में ध्याता है ।। २० ।।

विशेषार्थ—तीन लय उत्पन्न हों तो तीन लोक तो अपने पास ही हैं । तीनों स्कन्ध-तीन लोक का प्रकरण संस्थान विचय धर्मध्यान में उपयोगी है, अतएव सूत्र में लिखा है । तीन लोक का विचार भी अपने स्वरूप की प्राप्ति का कारण है । यहाँ पर ध्यान की समस्त धारणाओं या सामग्रियों को क्रम-क्रम से उपस्थित कर रहे हैं । साधक को मार्गप्रदर्शन कराने वाली देशना है ।। १८ ।।

पद्यानुवाद

त्रैलोक्य की सब सम्पदा निज में प्रगट तब ही रहे ।
यह तीन लय की धार शुद्ध स्वरूप में बहती रहे ।। २२ ।।

कुज्ञान का हनन

तीनलय उत्पन्न कुज्ञान हननं ।। १९ ।।

टीका—कुमतिकुश्रुतंकुअवधिज्ञानं कुज्ञानं अज्ञानं च नाशयति हननं करोति लयोत्पन्नभावः एवं प्रकारेण कुज्ञान हननं करोति लय-स्वभावः ।। १९ ।।

काव्य

कुज्ञान हननं भवति स्वभावे,
भावे स्वभावे च शुद्धोपयोगे ।

श्री ज्ञानसूर्योदय सुप्रभाते,
सर्वानिधिर्भाति स्वतः स्वरूपे ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—तीन लय उत्पन्न होने से तीन कुज्ञानों का हनन होता है ॥ १९ ॥

टीका अर्थ—कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान को अज्ञान को लयोत्पन्नभाव नाश करता है। हनन करता है। इस प्रकार का हनन करता है लय स्वभाव ॥ १९ ॥

काव्य अर्थ—अपने स्वभाव में ही कुज्ञान का हनन होता है। अपने भाव स्वभाव शुद्धोपयोग में ही श्री ज्ञानसूर्य का उदय होता है जिससे सुप्रभात होता है उसके प्रकाश में ही आत्मा की समस्त निधियाँ स्वतः प्रकाशमान होती हैं ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—तीन लय का साधक अपने कुज्ञान का जड़मूल से हनन करता है। अर्थात् सर्वप्रथम अपने ज्ञान को सम्यग्ज्ञान बनाना चाहिये। बिना ज्ञान की साधना व्यर्थ है। ज्ञान ही आत्मा का कार्यकर्ता है। वह निर्मल रहे तो मोक्षमार्ग है। ज्ञान की मलिनता ही भव भ्रमण में कारण है ॥ १९ ॥

पद्यानुवाद

तीन लय कुज्ञान को करती हनन जड़मूल से।
निज ज्ञान सूर्योदय चमकता आत्मा के मूल से ॥ २३ ॥

जयनावती

तीन लय उत्पन्न जयनावती ॥ २० ॥

टीका—लयत्रयोत्पन्ने आत्मस्वरूपस्य प्रतिपक्षिकर्मजयनशील जयनावती भवत्युत्पन्ना ॥ २० ॥

काव्य

जयति स्वकर्मभावाऽजयनावलिशक्त्यभिन्न गुणभावे।
त्रिलयोत्पन्न स्वरूपे अनन्त शक्तेश्च समुदयो भवति ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ—तीन लय उत्पन्न होने से जयनावती शक्ति प्रगट होती है। यह कर्मों को जीतने वाली है ॥ २० ॥

टीका अर्थ—तीन लयों की उत्पत्ति में आत्मा का स्वरूप अपने विरोधी कर्मों को जयनावतो के द्वारा विजयी करता है ॥ २० ॥

काव्य अर्थ—आत्मा के अनन्त गुणों से अभिन्न जयनावती शक्ति कर्म शत्रुओं को जीतती है। तीन लयों के उत्पन्न होने से आत्म स्वरूप में अनन्त शक्तियों का उदय होता है ॥ २२ ॥

विशेषार्थ—तीन लयों की साधना जयनावती नाम की आत्मशक्ति को उत्पन्न करती है। जयनावती शक्ति ही तो कर्मों को जीतकर आत्मा को जिनेन्द्र बनाने वाली है। जीतने वाला जिन है, जिन है वह जयनशील है। जयन नाम जीतने का है। जीतने वाली जयनावती है ॥ २० ॥

पद्यानुवाद

जयनावती निजशक्ति यह जिनवर बनाती जीव को।
तीन लय से प्रगट पाते मुक्ति रमणी पीव को ॥ २४ ॥

छाया रहित दिव्य स्वरूप

तीन लय उत्पन्न छाया विमुक्त ॥ २१ ॥

टीका—त्रिलयोत्पन्नस्वरूपे छाया विमुक्तदिव्यातिशयस्वरूपं प्राप्नोति जीवः ॥ २१ ॥

काव्य

नास्ति छाया हि चिद्भावे लयोत्पन्नेऽतिशायिता।
शक्तिरूपाः गुणाः सर्वे भवन्ति व्यक्त रूपिणः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ—तीन लयों के उत्पन्न होने से आत्मा का छाया रहित स्वभाव उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥

टीका अर्थ—तीन लय उत्पन्न होने से आत्मा के स्वरूप में छाया-रहित दिव्य अतिशय की प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

काव्य अर्थ—आत्मा के स्वरूप में छाया नहीं है। यह स्वभाव तीन लयों के उत्पन्न होने पर अतिशय सहित प्रगट होता है। शक्ति रूप सर्व-गुण व्यक्त रूपी होते हैं ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—तीन लय से शुद्धात्म स्वभाव समस्त परपदार्थों से और उनकी छाया से विमुक्त होता है। जबतक आत्मस्वभाव के दर्शन नहीं हुये हैं तभी तक पर पदार्थों की छाया है। अपना स्वरूप अपने-अपने सन्मुख आते ही छाया विमुक्त है। आत्मा स्वयं छाया रहित है। फिर पर की छाया की क्या आवश्यकता है? छाया रहित स्वभाव पर की छाया में न जावे. यही प्रबुद्धता तीन लय साधना का अन्तिम सुफल है ॥ २१ ॥

पद्यानुवाद

तीन लय छाया रहित शुद्धात्मा के भाव को।
मिला देती आपमें अपना विशुद्ध स्वभाव को ॥ २५ ॥

आत्मा का स्फटिक स्वभाव

तीन लय उत्पन्न स्फटिक स्वभाव उत्पन्न प्रवेश ॥ २२ ॥

टीका—त्रिलयोत्पन्ने स्फटिकस्वभावं प्राप्नोत्यात्मा। तस्मिन्नेव प्रविशति, अत्यन्तविमलभावं स्वीकरोति चेत्यर्थः ॥ २२ ॥

काव्य

चैतन्यः स्फटिकमणिः स्वच्छः शुद्धश्च कर्ममल रहितः।
हे जीव सु स्वरूपे प्रवेशने किं विचारमाचरसि? ॥

सूत्रार्थ—समलय समयलय और समयध्रुवलय के अभ्यास से आत्मा का स्फटिक स्वभाव उत्पन्न होता है हे जीव! तू अपने शुद्धस्वभाव-स्फटिक स्वरूप में प्रवेश कर ॥ २२ ॥

टीका अर्थ—तीनलय उत्पन्न होने पर स्फटिक स्वभाव को आत्मा प्राप्त करता है उसमें प्रवेश करता है। अत्यन्त विमलभावको स्वीकार करता है ॥ २२ ॥

काव्य अर्थ—चैतन्य स्फटिकमणि है, स्वच्छ शुद्ध कर्म मल रहित है। हे जीव उस अच्छे स्वरूप के प्रवेश में क्या विचार करता है ? ॥ २४ ॥

विशेषार्थ—तीन लयों की साधना से आत्मा का स्फटिक स्वभाव प्रगट होता है। तथा आत्मा उस अपने स्वभाव में ही प्रवेश करता है। वहीं रहता है। आत्मदर्शी पुरुषों के रहने की जगह अपना निर्मल शुद्ध स्वभाव ही है। आत्म स्वरूप में एकाग्रता का साधन करना ही लयों की साधना है ॥ २२ ॥

पद्यानुवाद

निज भाव को तीनों लयों से भाव में पहुँचाइये।
शुद्धस्फटिक मणि से निजातम भाव में ले आइये ॥ २६ ॥

नाम का विलय

तीन लय उत्पन्न नाम विली ॥ २३ ॥

टीका—त्रिलयोत्पन्ने विलयति नाम भावः। देवोऽहं, मनुष्योऽहं, राजोऽहं, रंकोऽहं, पुरुषोऽहं, अहं च नारीत्यादि नामकर्मजनितभावं विलयति चैतन्यचिद्रूपेऽनुरक्तो भव्यः। विस्मरति नामभावं सावधानस्वभावे विचक्षणः सम्यग्दृष्टिः अन्तरात्मा अतः उदयाभावोक्षयं करोति नामकर्मस्य। द्वितीयार्थे मानकषायसम्बन्धिनामभावमपि विलयति लयभावे ॥२३॥

काव्य

नाम नामेति नामेति मान मानेति मन्नता।
हन्ति स्व ध्यान शस्त्रेण सर्व भावान्सुदृष्टयः ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—तीन लयों से नामकर्म और मानकषायसबंधी नाम का विलय होता है ॥ २३ ॥

टीका अर्थ—तीन लय उत्पन्न होने से नाम का भाव नष्ट होता है॥ मैं देव हूँ, मनुष्य हूँ, राजा हूँ, रंक हूँ, नर हूँ, नारी हूँ इत्यादि नामकर्म जनित भाव को चैतन्य चिद्रूप में अनुरक्त भव्य नाश करता है। नाम भाव

को भूल जाता है। अपने स्वभाव में सावधान सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा जन विचक्षण पुरुष ही ऐसा होता है, अथवा उदयाभावी नामकर्म का भी नाश करता है दूसरे अर्थ में मानकषाय सम्बन्धी नाम का भी लय भावों में विलय करता है ॥ २३ ॥

काव्य अर्थ—नाम नाम नाम इस प्रकार का मान मान मान यह मान्यता मानमग्नता है। स्व ध्यान शस्त्र से ही इन मानादि समस्त भावों को सुदृष्टि जन नाश करते हैं ॥ २५ ॥

विशेषार्थ—संसार अपने नाम के लिये सब कुछ करता है। आत्मदर्शी पुरुष नाम से दूर भागते हैं। नाम का मोह और मानकषाय से सन्मान की चाह उत्पन्न होती है। जहाँ मान अपमान को समानता दे दी समभाव हो गया, समलय का भाव हो गया वहाँ नाम का मोह समाप्त हो जाता है। नाम का विलय ज्ञान से होता है। सम्यग्दृष्टि विचारता है—मेरा सांसारिक नाम कुछ है ही नहीं। न मैं देव हूँ, न मैं मनुष्य हूँ, न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ। जब मैं संसार की किसी भी पर्याय का स्वामी नहीं हूँ, फिर नाम किसका ? तीर्थंकर प्रकृति भी नामकर्म का ही भेद है उससे भी मोह नहीं करना। यही यथार्थ में नाम विलय या लय साधना का साधन है ॥ २३ ॥

पद्यानुवाद

लय नाम की धुन से विलावे यहाँ के इस नाम को।
छद्मस्थवाणी में रमाले धुनी अपने काम को ॥ २७ ॥

आत्मा की निर्निमेष दृष्टि

निर्निमेष उत्पन्न ध्रुव अनन्त उत्पन्न प्रवेश ॥ २४ ॥

टीका—ध्रुवानन्तस्वभावे प्रविष्टा या दृष्टिः सा निर्निमेषा। स्वभावे उत्पन्ना स्वभावजा वा। निर्निमेषा ध्रुवदृष्टिः। निरन्तरस्वरूपसौन्दर्यदर्शिनोदृष्टिः निर्निमेषा, अपलकदृष्टिः स्वरूप सम्मुखा ॥ २४ ॥

काव्य

ध्रुवानन्ते प्रविष्टाया निर्निमेषा सुलोचना ।
दृष्टिर्भवति स्वात्मस्था कर्मशत्रु विदारिणी ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—निर्निमेष दृष्टि उत्पन्न हो तो ध्रुव अनन्त में अपना प्रवेश हो ॥ २४ ॥

टीका अर्थ—जो दृष्टि ध्रुव अनन्त स्वभाव में प्रविष्ट हो चुकी है वही निर्निमेषा है। स्वभाव में उत्पन्न है। निर्निमेषा यह ध्रुवदृष्टि अविनाशी दृष्टि का नाम है अथवा—निरन्तर स्वरूप के सौन्दर्य को निरखने वाली दृष्टि निर्निमेषा है। यह अपलक दृष्टि ही अपने स्वरूप के सन्मुख है ॥२४॥

काव्य अर्थ—ध्रुव अनन्त में प्रविष्ट जो निर्निमेष सुलोचना दृष्टि है वही अपने आत्म स्वरूप में रहने वाली होती है। और कर्म शत्रु का विदारण करती है ॥ २६ ॥

विशेषार्थ—अपने निर्निमेष स्वभाव की ओर अपलक दृष्टि से देखने वाला अपना ध्रुव और अनन्त स्वभाव की ओर जाता है। उसी शुद्ध स्वभाव में जाता है। प्रवेश करता है। आत्म स्वभाव का साधक प्रमादी नहीं होता, पलक नहीं लगाता, ऊँघता नहीं ॥ २३ ॥

पद्यानुवाद

अनिमेष दृष्टि अनन्त ध्रुव शुद्धात्मा को देखती ।
निज में प्रवेशोत्पन्न कर उत्पन्न को यह पेखती ॥ २८ ॥

आत्मा की व्युत्पन्नता

उत्पन्न व्युत्पन्न उत्पन्न जड़ उजड़ स्वामी ॥ २५ ॥

टीका—उत्पन्ना-व्युत्पन्नबुद्धिः जड़तां नाशयति उजड़ इति उजाड़-भावं विनाशं प्राप्नोति जड़ता। चैतन्यभावस्य हे स्वामी ! ॥ २५ ॥

काव्य

लयोत्पन्ने भावे भवति मति व्युत्पन्न विमला,
चिदानन्द स्वामी जड़-उजड़ गत चैतन्यभूमौ ।

प्रभो भावी तीर्थे भवति जिननाथो जिनवरः,
गुरो तारन्स्वामी वसतु हृदि मे पद्मनाभिः ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ—हे स्वामी ! व्युत्पन्नता उत्पन्न हुई है। अब जड़ता का उजाड़ होगा ॥ २५ ॥

टीका अर्थ—उत्पन्न हुई व्युत्पन्न बुद्धि जड़ता को नाश करती है। उजड़ का अर्थ है उजाड़ होना, वीरान होना, नाश होना। चैतन्यभाव का स्वामी हे स्वामी ! यह सम्बोधन है ॥ २५ ॥

काव्य अर्थ—तीन लय संयुक्त भाव में व्युत्पन्न विमल बुद्धि उत्पन्न होती है। तथा जड़ता का जड़ मूल से उजाड़ करती है। हे प्रभो ! भावी तीर्थ में आप जिननाथ हों, जिनवर हों। हे तारणस्वामी ! हे पद्मनाभि ! मेरे हृदय में आप निवास करो ॥ २७ ॥

विशेषार्थ—हे स्वामी ! अपने स्वभाव की व्युत्पन्नता उत्पन्न होते ही जड़ता उजड़ जाती है। जड़ता का नाश हो जाता है। यह व्युत्पन्नता ही अनन्त मूर्च्छा का नाश करती है ॥ २५ ॥

पद्यानुवाद

व्युत्पन्नता उत्पन्न हो तब जड़ उजड़ जावे स्वयं।
स्वामित्व निज सम्पत्ति का अध्यात्म का स्वामी स्वयं ॥ २९ ॥

तीन रमणादि

रमण तीन हुन्तकार सात समय वेक्षी सहो वेक्षी ॥ २६ ॥

टीका—निश्चयभावे रमणं, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावे रमणं, परिचयप्रवेशमिलनस्वरूपे रमणं, आचरणाराध्यालापस्वरूपे रमणं। इति रमणं। हुन्तकारा सप्त—वितिविप्सिसर्वांगानन्दकोडार्काधविम्बेति। समय-दृष्टा एव सत्यदृष्टेति ॥ २६ ॥

काव्य

रमणं हुन्तकारं च भावनीयः सदा हृदि ।
समयस्य दृष्टादृष्टा सत्यदृष्टा स्वभावत ।। २८ ।।

सूत्रार्थ—रमण तीन हैं । हुन्तकार सात हैं । इनके द्वारा समय को देखा और सही देखा ।। २६ ।।

टीका अर्थ—तीन लय भाव में रमण । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र स्वभाव में रमण । परिचय प्रवेश मिलन स्वरूप में रमण । आचरण आराध्य आलाप स्वरूप में रमण । इत्यादि रमण भाव । हुन्तकार सात हैं—दिति, दिप्ति, सर्वांग, आनन्दकोड, अर्क, अर्थ और विन्द इस प्रकार । स्वसमय को देखने वाला ही सत्य का दृष्टा है ।। २६ ।।

काव्य अर्थ—रमण और हुन्तकार भावों को मन में भाना चाहिये । समय का दृष्टा ही दृष्टा है । वह स्वभाव से ही सत्य का दृष्टा है ।। २८ ।।

विशेषार्थ—उक्त तीनों लयों का रमण, सात हुन्तकार ये अपने समय स्वरूप को, सत्यार्थ को दिखाने वाले हैं । सत्य का दृष्टा समय को देखता है ।। २६ ।।

पद्यानुवाद

रमण कर लो तीन में अरु हुन्तकार सम्हालिये ।
निज को समझ सम्यक्त्व प्राप्ती के नियम को पालिये ।। ३० ।।
निज समय शुद्ध स्वरूप को देखा जिन्होंने भाव से ।
सत्य के दर्शन उन्हें ही हो सके इस भाव से ।। ३१ ।।

वाणी के आधार

अविरल शब्द वाणी गणधर जिन साहु सतसई जिन
प्रतिगणधर ओंकास जिन ।। २७ ।।

टीका—अविरलशब्दवाणीदिव्यध्वनेः सर्वाधारकपेण गणधरदेवाः

जिनसाधवः सप्तशतज्योतिकेवलिनो जिनप्रतिगणधरदेवाश्चौकारजिनेति तीर्थंकरदेवाः एते सर्वेऽपि सन्ति ॥ २७ ॥

काव्य

अविरल शब्दवाणी गणधर सन्तत गणाधिपाधारः ।
जिनसाधु केवली श्रुत प्रतिगणदेवाः जिने मार्गे ॥२९॥

सूत्रार्थ—अविरल शब्दवाणी के आधार, कारण गणधर, जिनसाधु, सात सौ ज्योति केवली और जिन प्रतिगणधर तथा तीर्थंकर देव हैं ॥२७॥

टीका अर्थ—अविरल शब्दवाणी दिव्यध्वनि के सर्व आधार रूप से गणधरदेव, जिन साधु, ७०० ज्योति केवली, जिन प्रतिगणधर देव और औकास जिन तीर्थंकर ये सर्व ही हैं ॥ २७ ॥

काव्य अर्थ—अविरल शब्दवाणी के आधार—गणधर, सन्तत गणधर, जिन साधु, केवली, श्रुतकेवली, प्रतिगणधरदेव आदि ये सब जिन-मार्ग में वाणी के पूर्ण आधार स्वरूप हैं ॥ २९ ॥

विशेषार्थ—इस अन्तिम सूत्र में गणधर, जिन साधु आदि ये सब उस अविरल शब्दवाणी के आधार हैं, उसके प्रकाशक हैं।

ये सब मिलकर उस वाणी का प्रकाश करें जो वाणी भव्य जीवों के आत्म स्वरूप का प्रकाश करने में समर्थ है ॥ २७ ॥

पद्यानुवाद

जिनवाणि के आधार गणधर मुनि तथा श्रुतकेवली ।
आधार दीजे "कुंवर-जय" को हे जिनेश्वरकेवली ॥ ३१ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

●

ॐ

चतुर्थोऽध्यायः

३९१९ के अन्तर्गत शिष्यों के नाम

सन्तत गणधर उन्तालीस से के जुमले—कलनावती। रुइयाजिन। विप्तजिन। विगसजिन। अस्थान रंज स्वामीजू के गल कंठ लगि मिलि हुई। वान्वन भक्तावती। सुवनावती। रमणावती। हीरा। विगसावती। शिवकुमार। अतुलश्री। और आहि तो ऊर्ध धारो ॥ १ ॥

टीका—नवैकनवत्रिसंख्येयमुक्तिगामिजीवानां मध्ये संततगणधरादिसंख्यायामन्तर्गतज्ञातव्योऽस्ति द्वादशशिष्याणां नामावली—कलनावती रुइयाजिनोविप्तिजिनोविगसजिनोऽस्थान रंजनामशिष्येण स्वामी श्री गुरुदेवोमिलितः गलकण्ठेमिलित्वा मिलितः। वान्वनभक्तावतीसुवनावती रमणावतीहीराविगसावतीशिवकुमारोऽतुलश्री एवं शिष्यशिष्यासंख्योपरान्तेऽपि ये केऽपि मुमुक्षवः आगमिष्यंति ते सर्वे सम्मानपात्राः भव्याः जिनाश्च शिरोधार्याः ते स्वात्मनःशुद्धस्वभावं स्वीकरिष्यन्ति ॥ १ ॥

काव्य

आगमिष्यन्ति ये केऽपि श्रीसंघे च मुमुक्षवः।
धारयन्तु चिदानन्दं स्वभावं मुक्ति कारणम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—उन्तालीस सौ उन्नीस के अन्तर्गत तथा सन्तत गणधरादि में इस सूत्र के बारह नाम गर्भित जानना चाहिये। और भी कोई आवेंगे तो उन्हें शिरोधार्य करो। अस्थान रंज स्वामी जी के गले लगकर मिले ॥ १ ॥

टीका अर्थ—३९१९ संख्यक मुक्तिगामी जीवों के अन्तर्गत एवं सन्तत गणधरादि के अन्तर्गत यहाँ निम्नलिखित बारह शिष्य-शिष्याओं

की संख्या को जानना चाहिये। उनके नाम—१. कल्नावती २. रुइयाजिन ३. दिप्तजिन ४. विगसजिन ५. अस्थानरंज नाम के शिष्य स्वामी जी के गले लगकर मिले ६. चान्दन भक्तावती ७. सुवनावती ८. रमणावती ९. हीरा १०. विगसावती ११. शिवकुमार १२. अतुलश्री, इस प्रकार शिष्य-शिष्याओं की इस संख्या के अतिरिक्त भी जो कोई मुमुक्षु जीव आवेंगे वे सब सम्मान के पात्र भव्य शिरोमणि शिरोधार्य होंगे। वे सब अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव को स्वीकार करेंगे।

काव्य अर्थ—श्रीसंघ में जो भी कोई मुमुक्षु आवेंगे वे चिदानन्द के शुद्ध स्वभाव को धारण करें। वही मुक्ति का कारण है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—बारह शिष्यों के नाम सूत्र में जो दिये गये हैं, वे सन्तत गणधरादि ३९१९ के जुमले इसी संख्या के जोड़ में या अन्तर्गत हैं। स्वामीजी के गले से लगकर मिलने वाले शिष्य विगसजिन और स्थान रंज हैं, ये दोनों साधु थे. विद्वान् थे एवं गुरु के कृपापात्र प्रिय निकटवर्ती थे। ये बारहों भव्य विशेष पूज्य पद को प्राप्त करेंगे। इन्हीं १२ का स्मरण पाँचवें अध्याय के १९ वें सूत्र में बड़े ही गंभीर अर्थों के साथ किया है। अतएव बड़े शिष्य समुदाय में से चुने हुये ये बारह हैं ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

इस सूत्र में शुभ नाम हैं पद गणधरों के पायेंगे।
और जो आवें उन्हें ऊपर गिनों, शिव जायेंगे ॥ १ ॥

श्रीसंघ को आज्ञा

पुन—जो जानो, कोई आहि, तो अर्थजिन, उत्पन्न जिन ॥ २ ॥

टीका—पुनश्चयविभवद्भिर्ज्ञायते यःकोऽप्यागतोऽत्र तर्हि तं अयं जिनोऽस्ति, जिनोत्पन्नोऽस्त्येवमेव जानन्तु सर्वे। श्रीगुरुदेवावधिज्ञानादर्शे आगन्तुकानां जिनावस्था प्रतिफलति तेनैव कारणेन आज्ञापिताः श्रीसंघे शिष्याः सर्वे ॥ २ ॥

काव्य

ये जानन्ति स्वभावं स्वं स्वयमस्मि जिनो यथा ।
ईदृशा आगमिष्यन्ति श्रीसंघे वेद्मि सज्जनाः ॥ २ ॥

सूत्रार्थ—पुनः जो जानो, कोई आये, तो यह जिन है, जिन ही उत्पन्न हुआ है, उसे ऐसा जानो ॥ २ ॥

टीका अर्थ—फिर और यदि आप सब जानें कि यहाँ कोई आया है, तो उसको यह जिन है, जिन उत्पन्न हुआ इस प्रकार ही जानें । श्रीगुरु के अवधिज्ञान दर्पण में आगन्तुकों की जिनावस्था झलकती थी इसी हेतु श्रीसंघ में समस्त शिष्यों को आज्ञा दी ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—जो अपने को, अपने स्वभाव को जानते हैं कि मैं स्वयं जिन हूँ जैसे जिन हैं । ऐसे भव्य ही श्रीसंघ में आवेंगे । ऐसा मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

विशेषार्थ—गुरु महाराज के ज्ञान में आगामी प्रत्येक क्षण की स्थूल घटनाएँ पहिले ही झलक आती थीं । इस सूत्र में श्रीसंघ को सूचित किया है कि उक्त १२ शिष्यों के अतिरिक्त कोई आवें तो समझना कि यह जिन है, उत्पन्न जिन है । इसका अभिप्राय यह है कि अब जो आवेगा वह जिन ही आवेगा । और अगले ही सूत्र में देखिये कौन आया ? ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

यह जिन हि है जिन ही बनेगा पुनः जो आये यहाँ ।
जानो यही निश्चय विचारो आ गया, आया कहाँ ? ॥ २ ॥

इस पर गर्व है

भक्तावती मोकों आय मिली हों जानो इनही
पै गारो हो सो आय मिली ॥ ३ ॥

टीका—महाविदुषी शिष्या मिलिता आगता भक्तावती आगते मया गर्वितोऽहमेतस्यां कार्ये तेनैव हेतुना आगता मिलितेयं भक्तावती ।

भक्तावतीशक्तिवद्विभागं करोतीयं भक्तावतीदेहस्यात्मनश्चैतादृशी भेदज्ञानवती ॥ ३ ॥

काव्य

भक्तावती विभक्तेयं देहाद्भिन्न चिदात्मन-
श्चिन्तनं नित्य नित्यैवा गता सा मिलिता सती ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—भक्तावती मुझे आकर मिली, मैं जानता हूँ इनहीं पर गर्व होता है। सो आकर मिलीं ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—महाविदुषी शिष्या भक्तावती आई—मिली, मैं जानता हूँ मुझे गर्व है इनके कार्यों पर, इसी कारण आकर मिली। भक्तावती शक्ति के समान देह और आत्मा का विभाग करने वाली यह भेदज्ञानवती भक्तावती है ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—यह भक्तावती अपने देह से विभक्त है हमेशा आत्म-चिन्तन शीला सती आई, मिली ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—भक्तावती आकर मिलीं। १७ शक्तियों में इनका नाम है। ये ज्योति केवली होंगी। प्रथम सूत्र में जो भक्तावती हैं वे दूसरी हैं। यह तो जिन हैं, उत्पन्न जिन स्वरूप हैं ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

भक्तावती आकर मिली है गर्व इन पर भी मुझे।
ये सभी सन्मुख स्वयं के सब ज्ञात है यह भी मुझे ॥ ३ ॥

अपने स्वरूप को लीजिये

अबलेहुरे भाई लेहु जिहि लेने होहि सो लेहु ॥ ४ ॥

टीका—अधुनातु स्वीकुरु स्वरूपं रे बन्धो! लेहु-लेहु। स्वीकर्तु-मिच्छति यः स एव लेहु! ॥ ४ ॥

काव्य

लेहु भो बन्धो रे लेहु गृहीतुं चेत्त्वमिच्छसि।
लेहु शुद्धस्वभावं स्वं वस्तुमन्यत्किमिच्छसि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—हे भाई, अब लेओ ! लेओ ! जिसे लेना हो सो लेओ ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—हे बन्धु ! अब अपने स्वरूप को लेओ। स्वीकार करो, यदि स्वीकार करने की इच्छा है तो लेओ ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—लीजिये हे बन्धु लीजिये। यदि लेना चाहते हैं तो लीजिये, स्वशुद्ध स्वभाव को लीजिये। दूसरी और कौन सी वस्तु चाहते हो ! ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—इस अध्याय का ऋद्धि सूत्र है। इस सूत्र में श्री गुरु अन्तरात्मा से दे रहे हैं। ऋद्धि सिद्धि अभ्युदय निःश्रेयस जो तुम्हें लेना हो सो लेओ। इस सूत्र की गहराई में जाकर फिर अपने आप से पूछिये कि श्री गुरु आपको क्या दे रहे हैं ! शब्दों पर भी ध्यान दीजिये कि जिंहि लेने होहि सो लेहु। इस सूत्र के इन शब्दों को स्वीकार करने वाला समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

अब लेहु रे भाई जिन्हें लेना स्वपद स्वीकार है।
ले लीजिये निज सम्पदा यह समय का ही सार है ॥ ४ ॥

चौंसठ कलश

ए कलनावती और रुइयाजिन चौंसठ कलश जु
जिनश्रेणि उत्पन्न भये सो ए कलश ढलिहैं कि
नाहीं ॥ ५ ॥

टीका—ए कलनावती च रुइयाजिन ! जिनश्रेणिमार्गे चतुःषष्ठि-कलशा उत्पन्नाः ढलन्ति वा नवा कलश संख्या या निरूपिता ॥ ५ ॥

काव्य

जिनश्रेण्यां समुत्पन्ना रुइया कलनावती।
चतुःषष्ठि संख्यास्तेषां कलशानां ढलन्ति ते ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—हे कलनावती ! रुइयाजिन ! जिनश्रेणि में चौंसठ कलश जो उत्पन्न हुये हैं सो ये कलश ढलेंगे या नहीं ? ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—हे कलनावती रुइयाजिन ! जिनश्रेणि मार्ग में चौंसठ कलश उत्पन्न हुये हैं। ये ढलेंगे या नहीं, जो कलश संख्या निरूपित की गई है ? ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—हे कलनावती रुइयाजिन ! जिनश्रेणि में चौंसठ कलश जो उत्पन्न हुये हैं वे ढलेंगे ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—तीसरे अध्याय के पाँचवें सूत्र में जिनश्रेणि और ६४ कलशों का स्पष्टीकरण कर आये हैं। वे ही चौंसठ कलश यहाँ कहे गये हैं।

कलनावती और रुइयाजिन को सम्बोधन करने का कारण है—इन दोनों शिष्यों को जिनश्रेणि हो चुकी है। तीसरे अध्याय के चतुर्थ सूत्र में इनकी जिनश्रेणि की घोषणा हो चुकी है ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

कलनावती हे रमण रुइयाजिन कलश उत्पन्न हैं।
जिनश्रेणि में चौंसठ हुये ढलिहैं न वा उत्पन्न हैं ॥ ५ ॥

क्या करते हो ?

अंग आठ। हुन्नकार ग्यारह। सर्वांग हुन्नकार एक। विति विप्ति हुन्नकार दो। चुटकी पांच। उत्पन्न उत्पन्न तीन। महा उत्पन्न तीन। स्वयं उत्पन्न एक। उच्छाह तीन। शब्द तीन। लेहु रे लेहु काहो करतु हो ॥ ६ ॥

टीका—शरीरस्याष्टाङ्गाः। अष्टाङ्गैवात्मनश्च सम्यग्दर्शनादिसिद्धानामष्टगुणाः। हुन्नकारैकादश भेदाः। सर्वांगहुन्नकारैकश्च। वितिहुन्नकारस्तथा विप्तिहुन्नकारद्विसंख्ये। चुटको पंचेति चतुर्दशमगुणस्थान समयविभागः। उत्पन्नेति उत्पन्नदर्शनं उत्पन्नज्ञानं उत्पन्न-

चारित्रमिति त्रीण्युत्पन्न संख्या। महा-उत्पन्नेतिकलनं चरणं रमणमिति त्रिमहोत्पन्न संख्या। स्वयमुत्पन्नश्चिदानन्दचिद्रूपैक मात्रो वा। उच्छा-हेति मनवचन-कायभेदेश्च त्रिभेदाः। शब्देति आराध्यशब्दः आयरण शब्दश्चालापशब्दः। सत्यंध्रुवं प्रमाणं वा त्रिशब्दाः। लेहुरे लेहु। किं कुरुथ॥ ६॥

काव्य

अष्टांगैकादश हुन्तकार सर्वांग दितिदिप्तिः।
एक द्विहुन्तकारश्चुटकी पंचेति ज्ञातव्या॥ ६॥
त्रयोत्पन्नोत्पन्नश्चापि महोत्पन्नः स्वयं तथा।
शब्दश्च त्रिश्युत्साहोऽपि लेहुरे! त्वं करोषि किं॥ ७॥

सूत्रार्थ—अंग आठ। हुन्तकार ग्यारह। सर्वांगहुन्तकार एक। दिति दिप्ति ये दो हुन्तकार। चुटकी पाँच। उत्पन्न उत्पन्न तीन। महा-उत्पन्न तीन। स्वयं उत्पन्न एक। उत्साह तीन। शब्द तीन। लेओ रे लेओ क्या करते हो?॥ ६॥

टीका अर्थ—शरीर के आठ अंग हैं। अष्टांग ही आत्मा के—सम्यक्त्व दर्शनादि सिद्धों के हैं। हुन्तकार ग्यारह। सर्वांग हुन्तकार एक। दिति हुन्तकार दिप्ति हुन्तकार दो। चुटकी पाँच, यह १४ वें गुणस्थान का सूक्ष्म समय विभाग है। उत्पन्न तीन—दर्शन ज्ञान-चारित्र। महाउत्पन्न तीन—कलन चरण रमण। स्वयं उत्पन्न एक। चिदानंद चिद्रूप मात्र एक। उत्साह तीन—मन वचन काय। शब्द तीन—आयरण आराध्य आलाप अथवा सत्य ध्रुव प्रमाण। इनको लेओरे लेओ। क्या करते हो?॥ ६॥

काव्य अर्थ—आठ अंग, ११ हुन्तकार, एक सर्वांग हुन्तकार, दिति दिप्ति दो हुन्तकार, चुटकी पाँच, तीन उत्पन्न, तीन महोत्पन्न, शब्द तीन, उत्साह तीन इन सब को लेओ, ग्रहण करो। क्या करते हो?॥ ६–७॥

विशेषार्थ—लेहुरे! लेहु! काहो करतु हो! कितने प्रिय शब्द हैं, आत्मीयता से भरे हैं। जो इन शब्दों को स्वीकार करेंगे उन्हें सर्व सम्पदा

प्राप्त होगी। गुरुदेव क्या दे रहे हैं ? आठ अंग हैं—भव्य इन्हें ही स्वीकार कर लेवे, तत्पश्चात् देखें कि कितना वैभव आपकी ओर देखता है। इसी प्रकार ग्यारह हुन्तकार हैं, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं। शेष भेदों का स्पष्टीकरण टीका में है। ग्यारह हुन्तकार—१. दिप्ति २. दिति ३. सर्वांग ४. आनन्द कोड ५. अर्क ६. अर्थ ७. विन्द ८. अक्षर ९. उत्पन्न १०. ध्रुव ११. शाह। इस प्रकार ये शुद्धात्म स्वरूप के ही स्वरूप और विशेषण हैं। पूरा ग्रन्थ इन्हीं के वर्णन से सुशोभित है।

हुन्तकार ग्यारह तो मुख्य हैं, परन्तु जहाँ जितने का ध्यान सूत्र में उतनी संख्या लिखी, जैसे सात, तीन, दो, एक इत्यादि ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

अष्टांगयुत सम्यक्त्व में उत्पन्न निज की भावना।
इस सूत्र में वर्णित विशेषों का मनन शुभकामना ॥ ६ ॥

स्वामी जी का प्रसाद

शब्द तीन पहिले हू पायो पायो पायो रे का
सोवत हो रे ! कैपायो सत पायो स्वामी जू को
प्रसाद ॥ ७ ॥

टीका—पूर्वएव त्रिशब्दं सत्यं ध्रुवं प्रमाणं वा आयरणं, आराध्यं, आलापं च प्राप्तोऽसिस्म त्वं। किस्वपिषि रे ! प्राप्तोऽसिस्म वा सत्स्वरूपं। स्वामीश्रीगुरुदेवानां प्रसाद प्राप्तिरियं ॥ ७ ॥

काव्य

त्रिशब्दानां तु सत्प्राप्तिः ध्रुव सत्य प्रमाणतः।
सत्स्वरूपस्य सत्प्राप्तिः श्रीगुरुदेव प्रसादतः ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—शब्द तीन पहिले ही पाया, पाया रे। क्या सोते हो ? अथवा सत्स्वरूप प्राप्त किया। यह स्वामी जी का प्रसाद है ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—पहिले ही तीन शब्द सत्य ध्रुव प्रमाण अथवा आयरण

आराध्य आलाप को तुमने प्राप्त किया। क्या सोते हो ? अथवा सत्स्वरूप को पाया, स्वामी श्री गुरुदेव के प्रसाद की यह प्राप्ति है ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—ध्रुव, सत्य, प्रमाण स्वरूप तीन शब्द प्राप्त हुये हैं। सत्स्वरूप की प्राप्ति हुई है। यह श्रीगुरुदेव का प्रसाद है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—लीजिये स्वामी जी का प्रसाद, शब्द तीन सत्य, ध्रुव, प्रमाण तो पहिले ही पाया, अथवा आयरण, आराध्य, आलाप ये तीन शब्द पहिले ही पाया। यह क्या पाया, अपना सत्सत्य स्वरूप पाया, यही स्वामी जी का प्रसाद है। जिन्हें नहीं मिला है, वे क्या सो रहे हैं। उठो सावधान होकर यह प्रसाद लो ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

सत्यध्रुव परमाण है यह शब्द पहिले पा लिया।
गुरुदेव की सत्कृपा से सत पा लिया सब पा लिया ॥ ७ ॥

कमल समाधि

विगस कहिऊ सो खुशी भये। भले ही पायो।
ध्रुवकमल समाधि देत हुई ॥ ८ ॥

टीका—प्रसन्नो भूत्वा कथयति, अहः ! वरं प्राप्तं, हर्षित गात्रोऽहं स्वशुद्धोपयोगस्वरूपाध्रुवकमलसमाधिं ददाति ॥ ८ ॥

काव्य

अहः हर्षेण प्रसन्नो वरं प्राप्तं सुमंगलम् ।
ध्रुवं समाधिं कमलं गुरुदेवो ददाति च ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—प्रफुल्लित होकर कहा, खुशी हुये, भले पाये, ध्रुवकमल समाधि दे रहे हैं, लगा रहे हैं ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—प्रफुल्लित होकर कहते हैं अहो ! भले पाये हम हर्षित गात्र हैं। अपने शुद्धोपयोग स्वरूप में ध्रुवकमल समाधि लगा रहे हैं या दे रहे हैं ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—अहो ! हर्ष से कहा, भला पाया सुमंगल पाया श्री गुरुदेव ध्रुव कमल समाधि को स्वरूप में दे रहे हैं ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—मुस्करा करके कहा, बड़े खुशी हुये। भले ही पाया, स्वामी जी तो आज ध्रुव कमल समाधि लगा रहे हैं। समाधि का प्रसाद भी देंगे। इस देह में छह कमल हैं। इन कमलों पर ध्रुव स्वभाव की स्थापना कर, अपने कमलों पर अपने ध्रुव को बैठाल कर उसमें ही एकाग्र होना ध्रुव कमल समाधि है ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

मुस्करा के कह रहे पाये भले हर्षित भये।
ध्रुवकमल शुद्ध स्वभाव की स्वसमाधि को देते भये ॥ ८ ॥

ध्रुवकमल समाधि की पुष्प वर्षा

कमल झड़त होंहि ॥ ९ ॥

टीका—**कमल समाधिस्थित्यां स्वभावे आनन्द-कमलवर्षा वर्षति, कमलपुष्पवृष्टिर्भवति ॥ ९ ॥**

काव्य

आनन्दकमलवर्षा वर्षतिध्रुव सत्समाधि मध्ये च।
शुद्धस्वरूप सोऽहं प्रफुल्लितः सन्नहं च पश्यामि ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—कमल समाधि के फूल झड़ रहे हैं ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—कमल समाधि की स्थिति में अपने ही स्वभाव पर आनन्द कमल के फूलों की झड़ी लगी है।

काव्य अर्थ—ध्रुव सत्समाधि में, अपने शुद्धोपयोग में आनन्द स्वरूप कमल पुष्पों की वर्षा होती है। शुद्धस्वरूप सोऽहं वही मैं प्रफुल्लित होकर देख रहा हूँ ॥ १० ॥

विशेषार्थ—ध्रुवकमल समाधि के कमल झड़ते हैं। अर्थात् इस समाधि में जो पुष्प वर्षा होती है। अतीन्द्रिय आनन्द के फूल बरसते हैं।

छत्तीस अर्क सूर्यों का एक एक कमल से छह-छह रवि प्रताप उदय हो रहे हैं। यह स्वानुभूति है। स्वरूप में ही सब हो रहा है ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

अपने समाधि स्वरूप में आनन्द वर्षा हो रही।
झड़ रहे हैं कमल अर्कों में सुरसता हो रही ॥ ९ ॥

अपने स्वरूप को पकड़िये

पकड़ेजहि रे! लीजहि रे। लीजहि। सम्हार
लीजहि। छोड़हु जिन ॥ १० ॥

टीका—धरन्तु, स्वीकुर्वन्तु, धरन्तु हे सर्वे! सावधानतया स्वीकुर्वन्तु, दृढतया धरन्तु। त्यजन्तु नैव। तां पुष्पवृष्टि आनन्दस्वरूपं, शुद्धोपयोगं कमलसमाधि वा स्वीकुर्वन्तु पुष्पसंचयं कुर्वन्तु ॥ १० ॥

काव्य

धर्तव्यो लेहुरे लेहु सावधानतयाधर।
त्यजतु न त्वं रे लेहु तं स्वरूपं ध्रुवं स्वयं ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ—शुद्धोपयोग समाधि को पकड़ना रे! लेना रे! लेना रे! सम्हाल लेना! छोड़ना नहीं! ॥ १० ॥

टीका अर्थ—धारण करो, स्वीकार करो, धारण करो, सम्हालो, छोड़ना नहीं। उस पुष्प वृष्टि को। आनन्द स्वरूप को। शुद्धोपयोग को। कमल समाधि को स्वीकार करो। समाधि के उन पुष्पों का संचय करो ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—धारण करने योग्य है, ले लो, सावधानी से ले लो, धारण करो, छोड़ो मत ले लो। स्वयं ध्रुव स्वरूप को ले लो ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—ध्रुव समाधि के फूलों को लीजिये। सम्हालिये, छोड़िये नहीं, ध्रुव समाधि यह अपने स्वरूप का ही रमण है। स्वरूप में एकाग्र होना ही समाधि है। अतीन्द्रिय आनन्द की सुगन्धि ही पुष्प हैं। षट्-

कमल, छत्तीस अर्कों की एकाग्रता ही पिण्डस्थ ध्यान की धारणा है, समाधि है ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

बूंद बूंद स्वरूप रस की लीजिये दृढ़ भाव से।
छोड़ो न यह सम्यक्त्व है आगे बढ़ो अब चाव से ॥ १० ॥

समय-मिलन

पय लीजहि उत्पन्न समय मिलन ॥ ११ ॥

टीका—जिनमर्थमुक्तं शब्दं ममलं कमलंलीनंदर्शंतत्त्वं लीनसमभावं ममलं उद्देश्यं च पय द्वादश समूहं लेहु त्वं स्वीकुरु। पयद्वादशहेतवः उत्पन्न प्रकट स्वसमय मिलनमिति ॥ ११ ॥

काव्य

सम् सम्यक् प्रकारेणैव अय् गतौ गमनं स्वयि।
मिलनं प्रापणं तस्य गमनं समयं प्रति ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—द्वादश पयों को लीजिये यह प्रगट हुये समय का मिलन है ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—जिन, अर्थ, उक्त, शब्द, ममल, कमल, लीन, दर्श, तत्त्व लीनसमभाव, ममल, उद्देश्य, यह बारह पद समूह को तुम लेओ, स्वीकार करो। उत्पन्न प्रकट स्वसमय से मिलने के अर्थ १२ पय कारण स्वरूप हैं ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—सम् उपसर्ग पूर्वक अय् गतौ धातु से समय शब्द की सिद्धि होती है। सम् का अर्थ सम्यक् प्रकार से अय् का अर्थ गमन करना अपने स्वरूप में जाना मिलना, प्राप्त करना यही समय शब्द का मूल अर्थ है। यह समय का मिलन बारह पयों के द्वारा होता है ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—श्रीगुरु महाराज जो बारह पयों का ध्यान करते थे उनकी भाषा में ही बारह पयों का अत्यन्त सुन्दर कीर्तन नीचे लिखा जाता है। अर्थ बिलकुल सरल है। पढ़ते पढ़ते ही समझ में आ जाता है।

१२ पयों के नाम

जिन, अर्थं, उक्त, शब्दं, ममल, कमलं, लीन पय दर्स ।
तत्त्व, लीन, समभावं ममलं उद्देश्य कम्म खिपिउन ॥

अर्थ—इस गाथा में १२ पयों के नाम हैं, जो टीका में दिये हैं।

पय १२ कीर्तन

१. **जिनपय**—पय तो जिन, जिन तो समय, समय तो सहकार, सहकार तो औकास, औकास तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ १ ॥

२. **अर्थपय**—पय तो अर्थ, अर्थ तो तिअर्थ, तिअर्थ तो समय अर्थ, समय अर्थ तो समर्थ, समर्थ तो सदर्थ, सदर्थ तो औकास अर्थ, औकास अर्थ तो अन्मोद अर्थ, अन्मोद अर्थ तो खिपक अर्थ, खिपक अर्थ तो मुक्ति अर्थ, मुक्ति अर्थ तो सुख अर्थ ॥ २ ॥

२. **उक्तपय**—पय तो उक्त, उक्त तो शुद्ध, शुद्ध तो भुक्त, भुक्त तो रमण, रमण तो समय, समय तो लीन, लीन तो अन्मोद, अन्मोय तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ३ ॥

४. **शब्दपय**—पय तो शब्द, शब्द तो श्रुत, श्रुत तो वेद, वेद तो ज्ञान, ज्ञान तो विज्ञान, विज्ञान तो सहकार, सहकार तो औकास, औकास तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ४ ॥

५. **ममलपय**—पय तो ममल, ममल तो समय, समय तो रमण, रमण तो लंकृत, लंकृत तो ज्ञान, ज्ञान तो विज्ञान, विन्यान तो मयमूर्ति, मयमूर्ति तो अनन्त, अनन्त तो नाना प्रकार, नाना प्रकार तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ५ ॥

६. **कमलपय**—पय तो कमल, कमल तो कारण, कारण तो कार्ज, कार्ज तो उक्त, उक्त तो परिणै, परिणति तो प्रमाण, प्रमाण तो समय, समय तो सहकार, सहकार तो औकास, औकास तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ६ ॥

७. लीनपय—पय तो लीन, लीन तो अर्थ, अर्थ तो तिअर्थ, तिअर्थ तो समय अर्थ, समय अर्थ तो दिप्ति, दिप्ति तो समय, समय तो सहकार, सहकार तो औकास, औकास तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ७ ॥

८. दर्शपय—पय तो दर्श, दर्श तो लंकृत, लंकृत तो लोक, लोक तो न्यान, न्यान तो विन्यान, विन्यान तो ममल, ममल तो केवल, केवल तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ८ ॥

९. तत्त्वपय—पय तो तत्त्व, तत्त्व तो न्यान, न्यान तो उत्पन्न, उत्पन्न तो विन्यान, विन्यान तो सहकार, सहकार तो वेद, वेद तो दिप्ति, दिप्ति तो औकास, औकास तो प्रमाण. प्रमाण तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ९ ॥

१०. लीनपय—पय तो लीन, लीन तो उक्त, उक्त तो भुक्त, भुक्त तो अनन्त, अनन्त तो नित्य, नित्य तो सिद्ध, ॥ १० ॥

११. ममलपय—पय तो ममल, ममल तो पात्र, पात्र तो कल्याण, कल्याण तो रमण, रमण तो शुद्ध, शुद्ध तो मिलनु, मिलनु तो दृष्टि, दृष्टि तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ ११ ॥

१२. उद्देश्यपय—पय तो उदेश, उदेश तो परिणै, परिणै तो प्रमाण, प्रमाण तो न्यान, न्यान तो भुक्त, भुक्त तो रमण, रमण तो समय, समय तो सहकार, सहकार तो औकास, औकास तो अन्मोद, अन्मोद तो खिपक, खिपक तो मुक्ति, मुक्ति तो सुख ॥ १२ ॥

॥ इति बारह पय निरूपणं ॥

इस प्रकार यह श्री गुरुदेव विरचित बारह पय का गद्य काव्य कीर्तन श्री ठिकाणा जी शास्त्र में मिला है। दो चार बार पढ़ने से ही आत्मा में पय (अमृत), पय (दूध) पय (पानी) के समान घुलता है। आत्म स्वभाव खिल जाता है ॥

पद्यानुवाद

पद्य लीजिये द्वादश कहे इनसे समय उत्पन्न है
जो समय से मिलना करे स्वीकार वह व्युत्पन्न है ॥ ११ ॥

पद्य १२ निरूपण समाप्त

आरते प्रगट हुये

आरते उत्पन्न समय महोच्छौ उत्पन्न प्रवेश ॥ १२ ॥

टीका—आरते उत्पन्नेति चैत्यालये धर्मोपदेशसमये महोत्सवे आगताः आनीताः। समय महोत्सवोत्पन्नः शुद्धस्वभावस्य प्रवचनमहिमामहोत्सव प्रवेशो भवति। श्रीशुभागमनं कुर्वन्ति श्रीगुरुदेवो भगवान् तारणतरण प्रभुः परमोपकारीति ॥ १२ ॥

काव्य

छद्मस्थानां वचनमहिमा स्वानुभूते प्रकाशम्,
तेषामेव समय महिमा स्व स्वरूपे प्रविष्टाः।
उत्पन्नस्योत्सव सुखदः स्यादारते ज्योतिरूपाः,
सत्तायां त्वं रमयतु विलसतु स्वोत्सवे स्वे प्रविष्ट्वा ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—आरते प्रगट हुये, समय महोत्सव प्रगट हुआ। उत्पन्न द्वादशांग वाणी और उत्पन्न श्री स्वामीजी का प्रवेश हुआ ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—धर्मोपदेशमहोत्सव में आरते आये या लाये। समय महोत्सव उत्पन्न हुआ, प्रारम्भ हुआ। आत्मस्वरूप शुद्ध स्वभाव की प्रवचन महिमा का महोत्सव प्रवेश हुआ, प्रारम्भ हुआ। श्रीगुरुदेव भगवद् तारणतरण प्रभु परमोपकारी मुनिराज पधार रहे हैं ॥ १२ ॥

काव्य अर्थ—छद्मस्थों की वाणी की महिमा है। उनकी अनुभूति का प्रकाश है। उनके ही समय की महिमा है। वे अपने स्वरूप में प्रविष्ट हो चुके हैं। उनके उत्पन्न का यह सुखद महोत्सव है। ये ज्योति स्वरूप आरते आये। हे आत्मन् ! अपने स्वरूप में प्रविष्ट करके अपनी सत्ता में

ही अपनी शुद्ध परिणति का महोत्सव करो। वहीं रमण करो। वहीं विलास करो ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—धर्मोपदेश के समय आरते आये, बाहर के आरते तो बाहर आये, बाहर का महोत्सव बाहर हो रहा है। किन्तु श्रीगुरुदेव के भीतर स्वभाव में आत्मज्योति के आरते आ गये और आत्मानन्द का महोत्सव होने लगा। आरते उत्पन्न समय महोच्छौ उत्पन्न ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

आरते अब आ गये महिमा महोत्सव कीजिये।
अपना प्रवेश स्वरूप में निजरस सुधा को पीजिये ॥ १२ ॥

स्वरमण महोत्सव

रमण महोच्छौ उत्पन्न विलस रमण ॥ १३ ॥

टीका—चैत्यालये समयमहोत्सवमवलोक्यस्वात्मनि प्रारभ्यते स्वरमणमहोत्सवमहामहिमाविलासं, तत्रैव स्वचिद्रूपे विलसन्ति रमन्ति श्रीगुरुदेवः परमोपकारीति ॥ १३ ॥

काव्य

महोत्सवोत्पन्नं दृष्ट्वा रमणीये रमन्ति ते।
विलसन्ति स्वयं रूपे स्वरूपे रमणोत्सवः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—अपने स्वरूप में रमण महोत्सव उत्पन्न हुआ, वहीं विलास करो, रमण करो ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—चैत्यालय में समय महोत्सव को देखकर अपने आत्मा में स्वरमण महोत्सव स्वरूप महा महिमा को प्रारम्भ करते हैं। वहीं अपने चैतन्य स्वभाव में विलास करते हैं। वहीं रमण करते हैं। श्रीगुरुदेव परमोपकारी ऐसा सिद्ध हुआ ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—उत्पन्न महोत्सव को देखकर रमणीय में जो रमण करते हैं, वे स्वयं रूप में विलास करते हैं। उनके स्वरूप में ही यह रमण महोत्सव हो रहा है ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—बारहवें सूत्र का महोत्सव आरतों से तो प्रारम्भ हुआ, परन्तु यहाँ देखिये यह रमण महोत्सव अपने आप में उत्पन्न हो रहा है। आत्म स्वरूप के रमण में ही आत्मानन्द का विलास हो रहा है। इन सूत्रों के एक-एक शब्द की स्वानुभूति का वर्णन और महिमा को लेखनी से पूर्ण लिख देना असम्भव है। किन्तु जहाँ की बात वहीं लिखने को लेखनी की जरूरत नहीं। वह तो पूरा स्वरूप अन्तर्मुहूर्त में पूरे स्वरूप में उतार लिया जा सकता है। यही तो लेहु-लेहु शब्दों में पुकार-पुकार कर गुरु दे रहे हैं। और जिन्होंने ले लिया उनकी तुरन्त घोषणा श्रीसंघ में कर दी कि इन्होंने जिनश्रेणि प्राप्त की। जो मैं कियो सो उन कियो, जो उन कियो सो मैं कियो, कितना सरल मार्ग है, जो समझाया तारणस्वामी ने ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

निजरमण का यह महोत्सव रमण को विलसें सभी।
रमणीरमण हों मुक्ति के वह आप ही में बस रही ॥ १३ ॥

इन्द्रधरणेन्द्र भी करते हैं

इन्द्रधरणेन्द्र महोच्छौ करत हँहि ॥ १४ ॥

टीका—इन्द्र-धरणेन्द्रवृन्दैः क्रियते महोत्सवः शुद्धात्मस्वभावस्येति भावः ॥ १४ ॥

काव्य

इन्द्र धरणेन्द्रवृन्दः शुद्धभाव महोत्सवः।
करोत्यनादिकालेन श्रुत्वा त्वं च कुरूत्सवम् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—इन्द्र और धरणेन्द्र भी यह शुद्धस्वभाव का महोत्सव करते हैं ॥ १४ ॥

टीका अर्थ—इन्द्र और धरणेन्द्र वृन्द भी शुद्धात्मस्वभाव का महोत्सव करते हैं ॥ १४ ॥

काव्य अर्थ—अनादिकाल से ही शुद्धभाव का महोत्सव इन्द्र धरणेन्द्र

वृन्द के द्वारा होता आया है। इसको सुनकर अपने शुद्ध स्वभाव का महोत्सव करो ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—जो अपने स्वरूप में आत्मरमण महोत्सव करते हैं। उनकी महिमा का महोत्सव इन्द्र धरणेन्द्र करते हैं। सी इन्द्र करते हैं। तीन लोक करता है। परन्तु प्रारंभ तो इस उत्सव का अपने भीतर से होता है। भीतर का करना पड़ता है। पुरुषार्थ की बात है। बिना भीतर की तैयारी किये बाहर कुछ नहीं होता। यदि भीतर स्वयं प्रकाश हो तो बाहर इन्द्रादि का महोत्सव अपने आप होता है आत्मस्वरूप के पुरुषार्थ की अनन्त महिमा है ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

इन्द्र औ धरणेन्द्र भी करते महोत्सव हैं यही।
शुद्धात्मा की ही समवशरणादि में महिमा कही ॥ १४ ॥

रत्नों को लूटो

रयण लेहुरे! लेहु लूटहु! उत्पन्न जय जय जय।
उत्पन्न प्रवेश ॥ १५ ॥

टीका—रत्नं लेहुरे! लेहु हरतु बलेन। जयो-जयो-जयोत्पन्नः। प्रवेशोत्पन्नोऽपि प्रारम्यते ॥ १५ ॥

काव्य

अत्र वितरन्ति सा राशिः रत्नानां स्वात्मनि स्थिता।
लेहुरे लेहु त्वं लेहु ! बलेन हरतु स्वयम् ॥ १६ ॥
शुद्धात्मनि प्रवेशेषु जयोत्पन्नो जयोजयः।
स्व स्वभावं जिनं जित्वा जयस्त्वं विजयी भव ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—रत्नों को लेओ रे! लेओ लूटो! जय जयकार प्रगट हुआ, आत्मस्वरूप में प्रवेश हुआ ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—रत्नों को लेओ रे! लेओ लूटो! जय जयकार भाव उत्पन्न हो रहा है। स्वरूप में प्रवेश हो रहा है ॥ १५ ॥

काव्य अर्थ—यहाँ उस रत्न राशि का वितरण हो रहा है। जो आत्मा में स्थित है। तू उसे ले ले। ले ले। बलपूर्वक छीन ले, लूट ले। ले ले ॥ १६ ॥

शुद्धात्म प्रदेशों में जय जयकार उत्पन्न हुआ। स्व स्वभाव को जीत कर तू जयी विजयी हो ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—लीजिये, यदि लूटना है तो स्वामी सद्‌गुरुनाथ स्वयं अपना खजाना लुटा रहे हैं। और कह भी रहे हैं कि लेओ, रत्नों को लूटो ! जिस समय यह चिन्तन हो रहा है, उपदेश हो रहा है, जय जय-कार हुआ। भीतर भी जय जयकार होने लगा।

पद्यानुवाद

ज्ञान दर्शन चरण के लूटो रतन, ये लेहु रे।
जयवन्त निज में कर प्रवेश तिलांजली जग देहु रे॥ १५ ॥

वैभव के साथ महोत्सव

नवनिधि चौदह रयण तीन लोक अनन्त महोच्छौ
करत हौंहि उच्छाह अनन्त उत्पन्न ॥ १६ ॥

टीका—नवनिधिचतुर्दशरत्नपुञ्जैस्त्रैलोक्ये त्रैलोक्यो वा महोत्सवा-नन्तं करोति, अनन्तोत्साहभावेन महोत्सवोत्पन्नो भवति ॥ १६ ॥

काव्य

त्रैलोक्ये सकलं करोति महिमामुत्साहमुद्योतनम्,
सम्यक्त्वस्य महोत्सवं प्रतिदिनं शुद्धस्वभावोत्सवं।
उत्साहेन करोत्यनन्तनिधया रत्न स्वभावोत्सवम्,
हे रत्नत्रय ! अत्र मयि त्वमसि शीघ्रेण स्वयं तिष्ठत॥ १८ ॥

सूत्रार्थ—नवनिधि-चौदह-रत्नादि विभूतियों के द्वारा तीन लोक अनन्त महोत्सव करता है। अनन्त उत्साह प्रगट करता है ॥ १६ ॥

टीका अर्थ—नवनिधि, चौदह रत्न पुञ्जों के द्वारा तीन लोक में

स्वयं तीन लोक अनन्त महोत्सव को करता है। अनन्त उत्साह भाव से महोत्सव उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—भव्यजन अनन्त उत्साह से समस्त महिमा के महोत्सव को करते हैं। यह सम्यक्त्व का शुद्धस्वभाव का महोत्सव वे प्रतिदिन करते हैं। यह रत्न स्वभाव का उत्सव है। अनन्त निधि और रत्नों द्वारा ही होता है। हे रत्नत्रय ! तुम मेरे आत्मा में अति शीघ्र आओ। और बैठ जाओ ! विराजमान रहो ! ॥ १८ ॥

विशेषार्थ—अपने अनन्त स्वरूप का उत्साह प्रगट होता है तब नव-निधि, १४ रत्न तो क्या तीन लोक भी अनन्त महोत्सव करता है। युक्ति बता दी है—यदि बाहर का ही महोत्सव देखना है तो अपने भीतर देखो। इस विधि से ही सौ इन्द्र तथा तीन लोक चरणों में मस्तक रखता है। इन एक-एक सूत्रों में ऊपर तो वर्णन क्या हो रहा है। परन्तु भीतर कौन सा अर्थ दिया जा रहा है। अनन्त दृष्टि हो तो सब समझ में आता है। इस दृष्टि को ही इष्ट दृष्टि कहते है। इस दृष्टि के गीत ममल पाहुड़ में एक बार तो सुन लो। श्री गुरु महाराज अपनी वह दृष्टि सबको दे रहे हैं। इन सूत्रों का अभिप्राय, भीतर का भाव समझने से स्वामी जी के सरल शब्दों का गम्भीर अर्थ समझ में आवेगा ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

निधि और रत्नों से महोत्सव तीन लोक करे यहाँ।
यह सभी है उत्साह अपने शुद्ध चेतन का यहाँ ॥ १६ ॥

महा महोत्सव

साड़े बारह क्रोड बाजे बाजहिं। दुन्दुही शब्द उत्पन्न महोच्छौ ॥ १७ ॥

टीका—सार्धद्वादशकोटिवादित्राणां ध्वनिर्भवति समवशरणे। देवाः कुर्वन्ति। दुन्दुभेर्नादमपि कुर्वन्ति, निजनिर्विकारस्वभावेऽपि आनन्दस्व-

भावानांवादित्राणां ध्वनिर्भवति । तत्र देवाः कुर्वन्त्यत्र च शुद्धोपयोगः करोति । उभयस्थाने महामहोत्सवमहिमा भवत्युत्पन्ना ॥ १७ ॥

काव्य

सार्धंद्वादश कोटि दिव्य विदिजाः कुर्वन्ति वाद्यध्वनिम्,
देवाः दुन्दुभि शब्द भेद विविधं कुर्वन्ति सानन्दवम् ।
एतत्सर्व महोत्सवं स्वयि कुरु स्वानन्द भेर्यादिभिः,
रे रे जीव करोषि किं त्वमधुना उत्तिष्ठ स्वं लेहु रे ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ—साड़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। दुन्दुभि शब्द भी हो रहे हैं। महोत्सव उत्पन्न हो रहा है॥ १७ ॥

टीका अर्थ—समवशरण में साड़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। देवों के द्वारा बजाये जाते हैं। दुन्दुभिनाद भी होता है। निजनिर्विकार स्वभाव में भी आनन्द स्वभाव के वादित्रों की ध्वनि होती है। वहाँ देवों के द्वारा होती है यहाँ अपने शुद्धोपयोग के द्वारा होती है, स्वरूप में होती है। दोनों जगह महिमा महोत्सव उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

काव्य अर्थ—स्वर्गों में उत्पन्न हुये साड़े बारह करोड़ बाजों की ध्वनि समवशरण में होती है। देवों के द्वारा विविध शब्द वाली आनन्ददायक दुन्दुभियों के शब्द होते हैं। यह सर्व महोत्सव अपने आप में अपनी आनन्द भेरी आदि वादित्रों की ध्वनि के साथ करो। रे रे जीव ! तू इस समय क्या कर रहा है ? उठ, अपना स्वरूप ले ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—समवशरण में १२॥ करोड़ बाजों का बजना, दुन्दुभियों के शब्दों का बार स्मरण पूरे ग्रन्थ में अनेक बार किया जा रहा है। सो गुरुदेव के शब्दों में ही "साड़े बारह कोडि परम आनन्द स्वभाव" यह समाधान है। तथा आगे चल कर दुन्दुभियों का भी भीतरी आत्मीय अर्थ बतावेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सन्तों का एकक्षण भी दूसरे ध्यान में नहीं जाता था। यही कारण है बन में रहकर, निराकुलतापूर्वक विहरते थे। यही निर्ग्रन्थों का मार्ग है ॥ १७ ॥

पद्यानुवाद

उत्पन्न हो निज में महोत्सव आपके आनन्द का।
फिर न बाहर का कि पूछो ठाठ परमानन्द का ॥ १७ ॥

श्रीसंघ में घोषणा

जो विनती कियो चाहहु सो कमलावती रुइया जिन
आगे कहहु ॥ १८ ॥

टीका—विनति या कर्तुमिच्छथ सा कमलावती रुइयाजिनाग्रे कुरुत, अहं तु शुद्धस्वभावे एकान्ते स्वात्मनिस्वरूपे वा निवसामि। ममैकाग्रचिन्तानिरोधध्यानलक्षणसमाध्यैवस्थायांशुद्धोपयोगे वा मा कुरुथ यूयमन्तरायम् ॥ १८ ॥

काव्य

कोलाहलं कलरवं किलकिल स्वरूपम्,
न स्वीकरोमि निवसामि स्वरूप मध्ये।
सा घोषणा कुरु सशीघ्र समाज संघे,
रुइयाजिनं प्रति कुरु त्वं चेच्छसि यद् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—जो विनती करना चाहते हो सो कमलावती रुइयायिन के आगे कहो ॥ १८ ॥

टीका अर्थ—जो विनती करना चाहते हो सो कमलावती रुइयाजिन के आगे कहो। मैं तो अपने शुद्ध स्वभाव में, एकान्त में, आत्म स्वरूप में निवास करता हूँ। मेरे एकाग्रचिन्तानिरोध ध्यान लक्षण समाधि अवस्था में शुद्धोपयोग में आप लोग अन्तराय न करें ॥ १८ ॥

काव्य अर्थ—किलकिल स्वरूप कोलाहल कलरव अशान्ति को अब मैं स्वीकार नहीं करता। अपने स्वरूप में निवास करता हूँ। तुम शीघ्र ही श्रीसंघ और समाज में ऐसी घोषणा करो कि—जिसे जो कुछ कहना हो वह रुइयाजिन और कमलावती से कहे ॥ २० ॥

विशेषार्थ—श्रीगुरु महाराज अपने एकान्त निवास में, श्रीसंघ की चहल पहल को "चेलारे-चेली जाल-जंजाला" कहते थे। अतएव इस सूत्र में स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं कि जो विनती करना चाहते हो कमलावती रुइयाजिन के सामने करो, हमसे कोई कुछ मत कहो !!! क्या अर्थ हुआ इस घोषणा का ? यही कि वे अपनी निराकुलता में आकुलता को नहीं आने देना चाहते थे। इन सूत्रों से गुरुदेव को समझने की सामग्री मिलती है। वे क्या थे, इन सूत्रों के भीतर के भाव में जाकर देखिये ॥ १८ ॥

पद्यानुवाद

जो कुछ कहो कमलावती रुइयारमण से ही कहो।
मत मेरी तल्लीनता छीनो, यही सबसे कहो ॥ १८ ॥

उन कियो सो प्रमाण

कमलावती रुइयाजिन कियो सो प्रमाण ध्रुव ॥ १९ ॥

टीका—कमलावतीरुइयाजिनाभ्यां यत्कृतोकरिष्यतो कुर्वन्तिकार्यं श्रीसंघे तत्प्रमाणध्रुवरूपेणाहं स्वीकरोमि स्वीकरिष्यामि च ॥ १९ ॥

काव्य

कमलावती रुइयाजिनाभ्यां यत्कृतं ध्रुवम्।
तत्प्रमाणं करिष्यामि मम शान्ति ददातु मे ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—कमलावती और रुइयाजिन ने जो किया सो प्रमाण है, ध्रुव है ॥ १९ ॥

टीका अर्थ—कमलावती और रुइयाजिन ने जो किया, जो करेंगे, जो कर रहे हैं सो श्रीसंघ में मैं प्रमाण ध्रुव रूप से स्वीकार करता हूँ, करूँगा ॥ १९ ॥

काव्य अर्थ—कमलावती रुइयाजिन ने जो किया सो ध्रुव है। उसे प्रमाण करूँगा, मेरी शान्ति मुझे दीजिये ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—ऊपर के सूत्र के अर्थ को ही कह रहे हैं कि कोई ऐसा न समझें कि श्रीसंघ की बाग-डोर रुइयाजिन और कमलावती नहीं सम्हाल सकेंगे। इस सूत्र में उक्त दोनों शिष्यों की योग्यता पर मुहर लगाकर गुरु कह रहे हैं कि उन्होंने जो किया सो सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है ॥ १९ ॥

पद्यानुवाद

कमलावती रुइया रमण जो कुछ करेंगे ज्ञान से।
ध्रुव वही होगा, किया मैंने प्रमाण विधान से ॥ १९ ॥

मैं कियो सो उन कियो

जो मैं कियो सो उन कियो। जो उन कियो सो मैं कियो। जो उन कियो सो प्रमाण ॥ २० ॥

टीका—यन्मया कृतं तत्ताभ्यां कृतं। यत्ताभ्यां कृतं तन्मया कृतं। यत्ताभ्यां कृतं तत्प्रमाणम्। कमलावतीरुइयाजिनाभ्यां यत्कृतं तत्प्रमाणमिति। स्वनिराकुलताप्राप्तिनिमित्तं रुइयाजिनं कमलावतीं वा श्रीसंघकार्यभारं दत्वाहं निजकार्यभारं गृह्णामि ॥ २० ॥

काव्य

ताभ्यां कृता सुकृति या च मया कृता सा,
यन्मम कृतिश्च कमला रुइयाजिनाभ्याम्।
भेदं निराकृतमभेद स्वभेद प्राप्तिम्,
शान्ति स्वशान्तिमधुना कुर्वन्तु सर्वे ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ—जो मैंने किया सो उन्होंने किया। जो उन्होंने किया सो मैंने किया। जो उन्होंने किया सो प्रमाण है ॥ २० ॥

टीका अर्थ—जो मेरे द्वारा किया गया वही उनके द्वारा किया गया है। जो उन दोनों के द्वारा किया गया वह मेरे द्वारा किया गया है। जो उनने किया वह प्रमाण है। कमलावती रुइयाजिन ने जो किया सो प्रमाण है। अपनी निराकुलता प्राप्ति निमित्त रुइयाजिन और कमलावती को श्रीसंघ का कार्यभार देकर मैं अपना कार्यभार ग्रहण करता हूँ ॥ २० ॥

काव्य अर्थ—उन दोनों ने जो सुकृतियाँ प्रस्तुत की हैं वही तो कृति मेरी है। मेरी और उनकी कृतियों में परस्पर कोई भेद नहीं है। यह सब भेदों का निराकरण भी अपने अभेद स्वभेद की प्राप्ति के लिये किया है। अतएव शान्ति को, अपनी शान्ति को सब स्थापित करो ॥ २२ ॥

विशेषार्थ—फिर से इस सूत्र में भी कमलावती रुइयाजिन के विषय में और भी दृढ़तापूर्वक श्रीसंघ को विश्वास दिला रहे हैं कि जो मैंने किया सो उनने किया, जो उनने किया सो मैंने किया। और जो उनने किया सो प्रमाण है। अथवा श्रीसंघ को यह समझना चाहिये कि उक्त दोनों ने जो किया वह मैंने ही किया है।

इन सूत्रों से यह स्पष्ट हो रहा है कि अपने शून्य स्वभाव में ही गुरुदेव रहना चाहते हैं। उन्हें इस संसार के कोलाहल से दूर रहना ही इष्ट था। उनके शुद्धोपयोग को यह सब सूत्र प्रमाणित कर रहे हैं। यही उनका छद्मस्थ स्वभाव था, यही उनकी जीवनी है। अपने परिपूर्ण स्वरूप का लक्ष्य ही उनकी साधना को साध रहा था ॥ २० ॥

पद्यानुवाद

और सुनिये मैं कियो सो उन कियो सो मैं कियो।
उन कियो सो ही प्रमाण कियो यही तो मैं कियो ॥ २० ॥

आशीर्वाद

अनन्त प्रवेश पै लेहु रे। लेहु, भरहु भर
देखहु ॥ २१ ॥

टीका—अनन्तात्मनि प्रवेशं कुरु स्वीकुरु लेहुरे, स्वरसंभर! पुनः-पुनः भरित्वा, पूर्णरूपेण भरित्वा भरितोभूत्वा स्वयं स्वयि पश्य, स्वदृष्ट्या स्वयिपश्य परन्तु स्वीकुरु स्वरूपं पश्य ॥ २१ ॥

काव्य

त्वं लेहु रे, भर, स्वयं भर, पश्य लेहु,
ईदृक्स्वयं भर चतुष्टय लेहु, पश्य।

शुद्धस्वभाव महिमामय स्व प्रवेशं,
त्वं लेहु रे ! जय-कुमार स्वतः स्वभावे ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ—अनन्त प्रवेश को परन्तु अवश्य लेना। अनन्त में भर जाओ, अनन्त को भर लो। भरकर देखो ॥ २१ ॥

टीका अर्थ—अनन्त आत्मा में प्रवेश करो, स्वीकार करो। अपने में अपना रस भरो, पूर्ण रूप से भरो। पुनः पुनः भरकर परिपूर्ण भरित होकर देखो। स्वयं अपने में अपने को देखो। परन्तु स्वीकार करो, अपने स्वरूप को देखो ॥ २१ ॥

काव्य अर्थ—तुम लेओ रे, भरो, स्वयं भरो, देखो, लेओ इस प्रकार स्वयं भरो, चतुष्टय को लेलो, देखो, शुद्ध स्वभाव का यह महिमामय स्व प्रवेश तुम ले लो। हे जयकुमार ! तू भी अपने स्वतः स्वभाव में ले रे ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—अध्याय का यह अन्तिम सूत्र है, गुरुदेव के पूरे जीवन का सार, इस पूरे ग्रन्थ का प्रयत्न तथा समस्त जिनशासन की आज्ञा इस सूत्र में है। उत्पन्न प्रवेश पै लेहु रे, लेहु अर्थात् अपने स्वरूप का प्रवेश अवश्य ले लो। अपने स्वभाव को अपने भाव से भरो, भरकर देखो भरहु भर देखहु, कितनी बड़ी दृढ़ श्रद्धा है, इन शब्दों को इतनी तन्मयता से कहने में श्रीगुरुदेव ही समर्थ हैं। इस प्रकार महामहिमा सम्पन्न आत्मा के स्वरूप में मग्न होकर श्रीगुरुदेव इस प्रकरण को यहीं समाप्त करते हैं। आगे पाँचवाँ अध्याय मूल चतुष्टय का दान देते हुये पुनः अपनी अमृत-वाणी का प्रारम्भ करते हैं ॥ २१ ॥

पद्यानुवाद

भर लो तथा भर देख लो पर लेहु रे यह लेहु रे।
जयकुँवर अपना यह प्रवेश स्वरूप अपना लेहु रे ॥ २१ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

●

ॐ

पञ्चमोऽध्यायः

मूल-चतुष्टय

मूल चतुष्टय लेहु रे। लेहु। इह विधि लेहु।
गुप्तदान चिन्तामणि। हुन्तकार ग्यारह लेहु। जो
पै कोऽहई सो सर्वत्र हुई ॥ १ ॥

टीका—स्वानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यमूलचतुष्टयं लेहुरे! अथवा स्व-द्रव्यक्षेत्रकालभावमूलचतुष्टयं लेहुरे, एवं प्रकारेण विधिविधानेन लेहु! स्वीकुरु। अथवा हे मूढ़! चतुष्टयं लेहु। गुप्तस्वभावस्यदानं गुप्तदानं, चिद्रूपचिन्तामणेदानं गुप्तस्वीभावायेति। हुन्तकारैकादशं लेहु! विति-विप्तिसर्वांगादिहुन्तकाराणां चिन्तनं स्वभावे कुरु। यस्मिन्प्रदेशेस्वात्मा-नन्दभावः कोऽस्वभावो भवति सः सर्वांगे सर्वात्मप्रदेशे सर्वत्र हुई भवती-त्यर्थः ॥ १ ॥

काव्य

तुभ्यं त्वमेव तव यच्छतु गुप्तदानम्,
चिन्तामणिं त्वयि च स्वीकुरु स्वीयभावम्।
मूले चलन्ति निजनित्य चतुष्टये ये,
तेषां प्रतीक्षणमहो मुक्तिः करोति ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—मूल चतुष्टय लीजिये, लीजिये। इस विधि से, उपाय से लीजिये। दान तो गुप्तदान यह दान चिन्तामणि है। ग्यारह हुन्तकार लीजिये। जो आत्मानंद अपने एक प्रदेश में भी प्रगट हो फिर तो वह सर्वत्र व्याप्त हो ही जावेगा पूर्ण आत्मा में, फिर तीन लोक में फैल जाता है ॥ १ ॥

टीका अर्थ—अपने अनन्त ज्ञान दर्शन सुखवीर्य मूल चतुष्टय स्वभाव को लीजिये, लीजिये। इस प्रकार के विधिविधान से लीजिये, स्वीकार

कीजिये। अथवा हे मूढ ! अपने चतुष्टय को लीजिये, गुप्तस्वभाव का दान गुप्तदान है। चिदानन्द चिद्रूप चिन्तामणि का दान अपने गुप्त स्वभाव को देना। ग्यारह हुन्तकार लीजिये। दितिदिप्ति सर्वांगादि हुन्तकारों का चिन्तन अपने भावों में करना चाहिये। आत्मा के एक प्रदेश में भी आत्मानंद का भाव कोड स्वभाव प्रगट होवे तो वह सर्वांग में सर्वात्म प्रदेशों में व्याप्त होता है॥ १॥

काव्य अर्थ—तू ही तेरे लिये तेरा गुप्तदान दे। तेरा स्वभाव ही तेरे में चिन्तामणि है। उसको स्वीकार कर। जो अपने मूल चतुष्टय में आचरण करते हैं उनकी प्रतीक्षा अहो !!! मुक्ति करती है॥ १॥

विशेषार्थ—अपने अनन्तज्ञानादि अथवा अपने स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव ये मूल चतुष्टय हैं प्रत्येक जीव के चतुष्टय ये अपने अपने हैं। आग्रहपूर्वक कहा गया है कि अपने-अपने मूल चतुष्टयों को लीजिये। इस प्रकार से, विधि से लीजिये। गुप्तदान चिन्तामणि यही है कि जो अपने चतुष्टय अपने गुण स्वभाव अपने आत्मा को दिये जाँय। ग्यारह हुन्तकार जो चतुर्थ अध्याय के ६वें सूत्र में बताये गये हैं, ये हुन्तकार जो अपने आत्मा के विशेष्य विशेषणों को प्रकाशित करते हैं, इन्हें लीजिये। आत्मा में जो प्रकाश होता है वह पूर्ण आत्मा में होता है जितने भी गुण हैं वे पूर्ण आत्मा में व्याप्त हैं। यहाँ कोड शब्द प्रदेश का वाचक है। अस्तु। मूल शब्द के स्थान में किसी-किसी प्रति में "मूढ" भी देखा है। यह सम्बोधन है॥ १॥

पद्यानुवाद

अपने चतुष्टय द्रव्य क्षेत्र स्वकाल भाव स्वभाव के,
अस्तित्व है इनसे इन्हें लेकर तजो पर भाव के।
अपने चतुष्टय आपको दें गोपनीय स्वदान है,
चिन्तामणि यह सातिशय सर्वत्र इसका गान है॥ १॥

नट नाट, घट घाट

नट-नाट । घट-घाट । सट-साट । झट-झाट । लट-लाट । वट-वाट ॥ २ ॥

टीका—

१. नट-नाट—नटतीति नटः । नाटेति नाटकं नाट्यं । नटो भूत्वाना-विविधविधिकर्मनाटकं करोति नटनाटभावं प्राप्नोति संसारापेक्षया । स्वशुद्धभावापेक्षयापि सप्ततत्त्वनवपदार्थे भिन्न-भिन्नतत्त्वं पदार्थं प्राप्नोति वेशपरिवर्तनं करोति जीवः शुद्धात्मेति ॥ २ ॥

२. घट-घाट—स्वघट-घाट, राज-घाट तटस्थानं भवसागरस्य तत्रैवा-गच्छ ! सम्यक्त्वस्य जलं शुद्धं, सम्पूर्णं सरपूरितं, स्नानं पिबति गज-चरणं ज्ञानशरणं तं ध्रुवं ज्ञानं स्नान पण्डितइति श्रीगुरुदेवाज्ञानु-सारेणैव स्नानं कुरु, जलपानमपि कर्त्तव्यं, मोक्षमार्गोऽयं शुद्धात्मनः । इत्येवं घटघाट ।

३. सट-साट—सटत्वात्मनि सटे सति संसारसागरात्सटकते जीवः शुद्धा-त्मेति सटसाट ।

४. लट-लाट—कर्मबालुकायां सुखस्निग्धतामिच्छन्ति जीवाः । लाटेति तैल यन्त्रंलटेति चालयंति लटलाट-भावं परिभ्रमणं कुर्वन्ति । द्विती-यार्थे—लटेति रज्जुगुणं रत्नत्रयदर्शनज्ञानचारित्राणां गुणानां लटानां लाटं कत्वा त्रिगुणानेकीकृत्य तेन लाटाश्रयेण मोक्षे-मोक्षमार्गे वा गच्छन्तु लटलाट भावं यूयमाप्नुयुः ।

५. झट-झाट—झटिति शीघ्रेणैव कर्मधूलिं झाटेति झटकनं कृत्वा स्व-च्छसौन्दर्यमये स्व-स्वरूपे गच्छ । कृत्वैवं सर्वे विलसन्तु सुखं स्वात्मीयं । इति झटझाट ।

६. वट-वाट—अनादिवटमारत्वं परद्रव्यपरभावचौर्यत्वं परित्यज्य राजमार्गे मोक्षमार्गे वाटे स्थित्वा तरन्तु भवसागरं । इति वटवाट ।

काव्य

कर्म नाटक ननाट नटन्ति ते,
शुद्धभाव नट नाट नटन्तु हे !
स्वघट घाट घटे घट त्वं स्वयं,
सटतु शुद्ध स्वभाव सटक् स्वयं ।। २ ।।
लटतु लाट स्वयं रत्नत्रयम्,
झटिति स्वीकुरु झट् स्वचिदात्मनम् ।
त्यजतु मार्ग वटं बाटं घर,
चलतु बाट-बटं स्वहिताय तं ।। ३ ।।

सूत्रार्थ—अभी तक जन्म मरण का नाटक किया, अब अपने स्वसमय का नाटक करो। अपने घट के घाट पर आओ। अपने स्वरूप से सटकर मिलो बैठो और उसे ही लेकर संसार से सटको। विभाव भावों की धूल को सम्यक्त्व भाव के झटकना से झटक डालो। इन्द्रिय सुखों की बालू को पेलना बन्द करो, रत्नत्रय गुण की लटों की लाट बनाओ, परद्रव्य की चोरी बटमारपना छोड़कर राजमार्ग मोक्षमार्ग की बटबाट पर आओ ॥ २ ॥

टीका अर्थ—१. नट-नाट—नाटक करे सो नट है। नाट्यकर्म ही नाटक है। नट होकर अनादि से त्रिविधि कर्म का नाटक किया, नट-नाट भाव को प्राप्त करता है, यह संसारापेक्षा, और अपने शुद्ध भाव की अपेक्षा सप्ततत्त्व, नव पदार्थों में भिन्न-भिन्न तत्त्व पदार्थ का रूप ले करके जीव नाना नृत्य नाटक करता है। यह शुद्ध नाटक करना स्वीकार करो। ऐसा यह नटनाट है।

२. घट-घाट—अपना घट-घाट ही राजघाट है, भवसागर का तट है। वहीं पर आओ कि जहाँ सम्यक्त्व का जल भरपूर भरा हुआ है, और जहाँ गणधरों ने स्नान किया, जलपान किया। उस ज्ञान सरोवर की शरण ले, वही ध्रुव है। इस ज्ञान के स्नान को अपने घट-घाट और घर-घाट पर चतुर जन करते हैं। इस प्रकार श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार ही स्नान करो, जलपान करो यही शुद्धात्मा का मोक्षमार्ग है। ऐसा यह घट-घाट है।

३. सट-साट—आत्मा में सटकर बैठो, मिलो और अपना काम सट आवे तो संसारसागर से फिर सटक जाओ। यह शुद्धात्मा का काम है ऐसा है यह सट-साट।

४. लट-लाट—कर्म बालू में से सुख का तैल निकालने के लिये विभाव का लट-लाट (कोल्हू) तो अनादि से चला रहे हैं। दूसरे अर्थ में—रत्न-त्रय की तीन लटें हैं, उन्हें एक लाट बनाकर दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों की एकता करके उस लाट के सहारे मोक्ष तथा मोक्षमार्ग में चलो, लट-लाट भाव को प्राप्त करो। ऐसा है यह लट-लाट।

५. झट-झाट—झट से—शीघ्रता से कर्मधूलि को झाट झटक करके स्वच्छ सुन्दर स्वरूप में जाओ। ऐसा करके आत्मीय सुख को विलसो। ऐसा है यह झट-झाट।

६. वट-वाट—अनादि वटमारपने को, परद्रव्य, परभाव के चौर्य भाव को छोड़कर राजमार्ग मोक्षमार्ग में स्थित होकर भवसागर पार करो। यही वाट हितकारी है। ऐसा यह वट-वाट है।

काव्य अर्थ—कर्म का नाटक कर रहे हो। इसे त्यागकर शुद्ध भाव का नाटक करो। अपने घट-घाट पर स्वयं आओ। अपने स्वरूप से सटो और स्वयं मुक्त बनो, रत्नत्रय की लट की स्वयं लाट बनाओ ॥ २ ॥ अपने शुद्ध स्वभाव को झट से स्वीकार करो। वटमार पन को छोड़ो, अपने हित के लिये अपना शिवमार्ग स्वीकार करो ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—पूरे ग्रंथ में यह ऐसा विचित्र सूत्र है, न जाने कौन सा प्रकरण सामने आ गया जिसके निमित्त से यह सूत्र बना। सूत्र के प्रत्येक शब्द में गहराई से जो अर्थ लिया जावेगा तब तो अर्थ मिलेगा। अन्यथा शब्दों का उच्चारण तो सभी करते हैं। टीका में सभी शब्दों का अर्थ विशेष रूप से ही लिखा गया है ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

नटपात्र ! घट के घाट आ, सट आपसे, झट से झटक।
लटलाट रत्नत्रय लटी की वाट वट की मत भटक ॥ २ ॥

पेलिनी पात्र

पेलिनी पात्र । और सर्व लघु प्रिय प्रमाण । गुप्ति
गुप्ति ते ध्रुव उत्पन्न । छह के छत्तीस लेहु ॥ ३ ॥

टीका—पेलिनीति तैलयन्त्रं, इक्षुरसयन्त्रं वा पात्रेति रसपात्रं । उपमेयं स्वात्मन्युत्तार्यपश्य ! स्वशुद्धात्मरसं स्वपात्रेभावे भरित्वा परिपूर्णरूपेण त्वं रसपात्रो भव, न तु पेलिनी । इति पेलिनीपात्र स्वरूपं ।

अन्याः सर्वेऽपि लघवस्तुच्छाः स्वप्रियस्वरूपप्रमाण सन्मुखे । गुप्तिगुप्तास्ते ध्रुवोत्पन्नाः । षट्कमलानां मध्ये ध्यानस्थे सति, पिण्डस्थध्याने वा षट्त्रिंशदर्काणां प्राप्तिर्भवति ॥ ३ ॥

काव्य

न पेलिनी त्वं रसपात्र मात्रो-
भूत्वा स्वयं त्वं च स्वतः प्रमाणम् ।
पुनः पुनः सर्व स्वगुप्ति भावम्,
कुरु प्रमाणं त्यज तुच्छ भावम् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—पेलिनी और पात्र, इनमें से पात्र बनना ही श्रेष्ठ है । अपने प्रिय को प्रमाण कर लेने पर अन्य सब और पदार्थ तुच्छ हैं, लघु हैं । जो गुप्ति गुप्त हैं, वे ध्रुव उत्पन्न करते हैं । षट्कमलों के छत्तीस अर्क लीजिये ।

टीका अर्थ—पेलिनी यन्त्र है तेल यन्त्र या इक्षुरस यंत्र, और पात्र यह रस पात्र है । इस उपमा को आत्मा में उतार कर देखो ! अपने पात्र में, भाव में अपना रस भरकर परिपूर्ण रूप से रस का पात्र हो । पेलिनी मत बने ।

अन्य सभी लघु हैं, तुच्छ हैं यदि अपने प्रिय स्वरूप की प्रामाणिक सन्मुखता हो तो । जो गुप्ति गुप्त हैं वे अपने ध्रुव को उत्पन्न करते हैं । कमलों, षट्कमलों के ध्यान में अथवा पिण्डस्थ ध्यान में छत्तीस अर्कों की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—तू पेलिनी यन्त्र नहीं है अपितु रस का पात्र है। रस पात्र होकर स्वयं तू अपना प्रमाण बन। फिर फिर से गुप्ति गुप्त-भाव को प्राप्त कर प्रमाण कर और समस्त तुच्छ भावों को त्याग कर ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—पेलिनी और पात्र ये दोनों अलग-अलग वस्तुयें हैं। जिसमें गन्ना पेला जाता है उस यन्त्र का नाम पेलिनी है। तथा जिसमें रस झेला जाता है उसे पात्र कहते हैं। यहाँ रस का पात्र बनने का ही उपदेश है। तथा आगे—यदि अपने प्रिय को प्रमाण करे तो अन्य सब लघु हैं। जो सदैव गुप्तियों में गुप्त हैं वे अपने ध्रुव स्वभाव को उत्पन्न करते हैं। फिर तो छहकमल से छत्तीस अर्क लीजिये। यही सरल से सरल अर्थ अपने निज अर्थ को पर पदार्थ से पृथक् करने वाला है ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

पेलिनी मत बने तू तो पात्र बन रस का भरा।
सर्व लघु हैं और इससे प्रिय प्रमाण हरा भरा ॥ ४ ॥
गुप्ति गुप्त हुये वही ध्रुव षट्कमल के ध्यान में।
छत्तीस अर्कों से सुशोभित लीजिये निज ज्ञान में ॥ ५ ॥

आशावादी ही पावेंगे

पावहिं आस पावहिं। इहि आस को लिये दुखी न होई ॥ ४ ॥

टीका—जनास्ते आशा सहिता प्राप्यन्ति, आशेयं सहिता न दुःख-भागिनस्तथा भवन्ति ॥ ४ ॥

काव्य

त्वमाप्नुताशां त्यज त्वं निराशां,
आशेयमङ्गीकृत दुःखमुक्तः।
आशा-निराशा जगजाल सूत्रम्,
त्यजन्ति ते सन्ति क्वचिच्च कुत्रचित् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—पावेंगे, आशा से पावेंगे। इस आशा को लेकर दुखी न होंगे ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—वे आशा सहित जन ही प्राप्त करेंगे। इस आशा से युक्त दुःख के भागी नहीं बनेंगे ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—आशा को प्राप्त करो, निराशा को तुम छोड़ो। इस आशा को अंगीकार करने से ही दुखमुक्त होंगे। ओर जगत् की आशा तो जगजाल सूत्र है। इसको छोड़ने वाले विरले और कहीं-कहीं होंगे ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—जिन्हें आत्म विश्वास है, आशा है, वे पावेंगे। इस परमार्थ स्वरूप की आशा को रखने वाले दुखी नहीं होंगे। जो आशा अनन्त सुख को प्रगट करेगी उससे दुःख कैसा? कदापि नहीं। अतएव जो आशावादी जन हैं वे अवश्य ही इस आशा से अपने स्वरूप को तथा अभीष्ट को प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

आशा लगी है पायँगे निज रूप में हम जायँगे।
दुख दूर होंगे भव भ्रमण के दिन हमारे आयँगे ॥ ६ ॥

नया कौन आया

इन दिनहिं माँहि कौन आयो रे। नौ नौ विभासे।
पंचमूठि उत्पन्न गुप्तार। एजु उत्पन्न माले होंहि।
सो कौनहि देवी। अंकूर उत्पन्न वरसाये। गणतो
पाँच उत्पन्न। प्रवेश अनन्त उत्पन्न ॥ ५ ॥

टीका—दिनेष्वेतेष्वागताः के ? नूतना जना प्रतिभासन्ति। गुप्तान्तरंगे पंचमुष्ठिभावोत्पन्नः। उत्पन्नास्ताः मालाः सन्ति कान्दवन्ति। वर्षयत्यंकुरोत्पन्नः गणति पंचोत्पन्ना। प्रवेशो वानन्तोत्पन्नः ॥ ५ ॥

काव्य

आगतोऽयं दिनेऽस्मिन्को नूतनो ज्ञायते मया।
पंचमुष्टिश्चोत्पन्नाः हि गुप्तवार्ता स्वभावतः ॥ ६ ॥

मालिका आगता एताः दातव्या कस्मै सुवन !
दर्शयत्यं कुरोत्पन्नः पंचलब्धिः स्वभावजा ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—इन दिनों में कौन आया रे। नया नया भासता है। पंचमुष्टि का गुप्त भाव है। ए जु ! ये उत्पन्न मालायें किनको देना चाहिये। अंकुरोत्पन्न दीखते हैं। पांच की गिनती उत्पन्न है। अनन्त का प्रवेश उत्पन्न है ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—इन दिनों में कौन आये हैं। नूतन जन प्रतिभासित होते हैं। गुप्त अन्तरंग में पंचमुष्टि का भाव उत्पन्न हुआ है। मालाएँ उत्पन्न हैं किन को देना चाहिये। अंकुर उत्पन्न दीख रहे हैं। पाँच की गिनती है। उत्पन्न अनन्त प्रवेश है ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—यह नया कौन आया है। पंचमुष्टि की गुप्त बात अन्तरंग में स्वभाव से ही उत्पन्न हुई है। ये मालाएँ आई हैं किनको देना चाहिये। हे सुवन ! अंकुर उत्पन्न दिख रहे हैं ये स्वभाव में उत्पन्न होने वाली पाँच लब्धियाँ हैं ॥ ६–७ ॥

विशेषार्थ—आज श्रीगुरुदेव स्वामी जी के भाव थे गुप्त के सो प्रगट हुये। पंचमुष्टि शब्द केशलुंच के साथ ही जुड़ता है सो एकान्त में ही पंचमुष्टि गुप्तार उत्पन्न हो गया, अर्थात् केशलुंच हो चुके। किसी शिष्य को उत्तर देते हुए ये शब्द निकल पड़े।

ये नये नये कौन मालूम पड़ रहे हैं। ये जो नये आये हैं इन्हें अपना नया स्वरूप भासता है या नहीं। यह माला रोहिणी उत्पन्न हुई, किनको देना चाहिये। आत्म स्वरूप के अंकुर जो उत्पन्न हुये हैं। सो दीखने लगे हैं, दरस रहे हैं, उनकी गिनती पाँच है जिन्हें लब्धियाँ भी कहते हैं। इन अंकुरों से अपने अनन्त का प्रवेश उत्पन्न हो रहा है। दूसरे पाँच अंकुरों के नाम इस प्रकार हैं—१. कोड स्वभाव, २. अनन्त प्रवेश प्रवेशऊ, ३. अनन्त अर्क अर्किऊ, ४. अनन्त अवगाहन, ५. अनन्त रमण ये पाँच चिह्न गुरु महाराज देखते थे ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

इन दिनों में कौन आया यह नयासा कौन रे ।
अपना नया कर ले चिदातम तू रहा क्यों मौन रे ॥ ७ ॥
तेरी मुठी में पांच हैं अंकूर ये सम्यक्त्व के ।
पंचलब्धि स्वरूप माला चिह्न ले सम्यक्त्व के ॥ ८ ॥

शून्य प्रवेश

हँसिऊ विहँसिऊ विलसिऊ अनन्त सुन्न प्रवेश ॥ ६ ॥

टीका—हसन्तु, विहसन्तु, विलसन्तु, सर्वे । अनन्तस्वरूपात्मनः शून्यस्वभावे प्रवेशे सति हर्षोत्साहेनातीन्द्रियानन्दमनुभवन्तु ॥ ६ ॥

काव्य

प्रसन्नवदनो भूत्वा अनन्ते विलसन्तु ते ।
शून्यस्वभावे प्रवेशेऽतीन्द्रियानन्द कारणे ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—हँसो, विहँसो, विलसो अनन्त शून्य का प्रवेश प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—हँसो, विहँसो, विलसो ! अनन्त स्वरूप आत्मा के शून्य स्वभाव में प्रवेश प्राप्त होने पर हर्ष और उत्साह से अतीन्द्रियानन्द को अपने अनुभव में लाओ ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—अपने अनन्त स्वरूप के इस शून्य भाव स्वभाव में हँसकर विहँसकर, वे प्रवेश करें, और विलास करें, यह शून्य स्वभाव का प्रवेश अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—आगे अनन्त शून्यों का स्वरूप भेद नाम आदि सभी कहे जावेंगे । शून्यों के सब ५७२ भेद हैं । उनमें से कुछ नाम भेद स्वरूप लिखे हैं । केवल एक वस्तु जहाँ हो, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई न हो वहाँ शून्य स्वभाव समझें । सत्ता एक सुन्न विन्द अर्थात् एक की सत्ता शून्य-विन्द है । शून्य स्वभाव कहने पर, स्वभाव के अतिरिक्त वहाँ और कुछ न समझें ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

अपने अनन्त स्वरूप के इस शून्य भाव स्वभाव में।
हँसकर विहँसकर, कर प्रवेश, विलासकर निजभाव में॥ ९ ॥

शिष्यों का आगमन

एजु गणधर शिष्य आये हैं। चारदिन विनती करतहु भये। सो हमारो अभाग कहा, जो और आगे न आये। हमको जु प्रसाद दिवावत नाहीं॥ ७॥

टीका—हे भव्य! गणधरशिष्यसमूहोऽयमागतः। प्रार्थनायामेव चतुर्दिनानि व्यतीतानि। हतभाग्याश्च वयं पूर्वे नागताः। किमस्मै समुह्राय वा शिष्याणां देशनाप्रसादं न ददन्ति श्रीगुरुदेवाः॥ ७॥

काव्य

शिष्यागताः गणधराः विनयन्ति नत्वा,
दुर्भाग्यमस्ति यदनागत पूर्व किञ्चिद्।
किं देशनां च न हि दास्यसि न प्रसादम्,
श्रुत्वा स्वभाव महिमागत शिष्यवृन्दः॥ ९॥

सूत्रार्थ—एजु! गणधर शिष्य आये हैं। चार दिन विनती करते हो गये। हमारा क्या दुर्भाग्य है जो हम और आगे नहीं आये। क्या हमको प्रसाद दिलाते नहीं हो॥ ७॥

टीका अर्थ—हे भव्य, गणधर शिष्य आये हैं। प्रार्थना में ही चार दिन बीत गये। हम हतभाग्य हैं जो पहले नहीं आये। क्या हमको देशना का प्रसाद श्रीगुरु नहीं देंगे॥ ७॥

काव्य अर्थ—गणधर शिष्य आये हैं, नमन कर विनती कर रहे हैं। दुर्भाग्य है जो पहिले नहीं आये। क्या देशना का तथा दीक्षा का प्रसाद नहीं दिलाते? शुद्धस्वभाव की महिमा को सुनकर यह शिष्य वृन्द आया है॥ ९॥

विशेषार्थ—विचार करने की बात है कि गणधर की उपमा वाले शिष्य आये हैं। चार दिन से विनती कर रहे हैं। किन्तु उपदेशादि नहीं मिल रहे हैं। सो क्यों ? इसका समाधान इस प्रकार है। स्वामी जी ने अपने जीवन में ५७२ शून्य स्वभावों का प्रयोगात्मक साधन किया है। वे स्वयं शून्य स्वभाव की साधना में जब तल्लीन होते थे तो दो-दो चार-चार दिन समाधि में ही बीत जाते थे। व्यवहार से दूर रहकर अपने निश्चय की साधना में मग्न रहते थे, तीन लयों में स्थिर रहते थे। उसी ऐसे समय का यह प्रकरण है जो शिष्यों ने लिखा है। स्वामी जी समाधि में मग्न हैं। चार दिन हो चुके हैं। इसीलिये शिष्यगण जो बाहर से आये हैं वे कह रहे हैं कि प्रसाद दिलाओ ! ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

जिनराज के ये शिष्य गणधर विनय भाव प्रकाशते।
शुभ देशना, दीक्षा, जिनागम से यही हम याचते ॥ १० ॥

एक जय लेकर आगो

इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष विनती करतउ गठरी
दिस्तं। जय जय जय तीन पहिले। तीन बहुरि।
एक जय ले आगहु ॥ ८ ॥

टीका—इन्द्रधरणेन्द्रगन्धर्वयक्षाश्च कुर्वन्ति प्रार्थना विनयं। कृते सति विनये तुरन्तैव तैश्चप्राप्तागठरीयंरत्नस्वभावा। त्रिकालजयस्वरूपोऽयं शुद्धात्मा, पुनरपि त्रिवार जय जयकारं कुर्वन्ति सर्वे। एकमात्रचिन्मात्र-जयमादाय आगृत। उत्तिष्ठत भो भव्याः ? ॥ ८ ॥

काव्य

इन्द्रधरणेन्द्रयक्षाः गन्धर्वाः विनयन्ति ते।
सम्यक्त्व रत्ना गठरी प्राप्ता तत्काल देशना ॥ १० ॥
एकशुद्धस्वभावस्य जयमादाय जागृत।
उत्तिष्ठत स्वभावे हि प्रविष्टाः भवत स्वयि ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्षों को विनती करते ही गठरी दे दी। जय जय जय तीन पहिले। तीन फिर। एक जय लेकर के जागो॥ ८॥

टीका अर्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्षों को विनती करते ही गठरी प्राप्त हुई। यह गठरी रत्नों से भरी है। त्रिकाल जयवन्त स्वरूप यह आत्मा है। तीन बार जय जयकार पहिले किया तथा तीन बार फिर किया। एकमात्र चिन्मात्र स्वरूप की जय लेकर जागो, उठो॥ ८॥

काव्य अर्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्षों ने जो विनय प्रार्थना की सो सम्यक्त्व की गठरी प्राप्त की। तत्काल ही देशनालब्धि की यह गठरी उन्हें प्राप्त हुई॥ १०॥

एक शुद्धस्वभाव को लेकर जयवन्त हो जागो, उठो। और अपने स्व-भाव में ही प्रवेश करो॥ ११॥

विशेषार्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व और यक्षों को विनती करते ही गठरी दी गई, कहाँ? समवशरण में। और हम चार दिन से विनती कर रहे हैं परन्तु उपदेश का प्रसाद प्राप्त नहीं हो रहा है। लीजिये जय जय जय तीन पहिले, तीन बाद में। श्रीगुरु महाराज समाधि से उठेंगे, मौन खोलेंगे। अब एक स्व-स्वरूप की जय जय को लेकर अपने स्वभाव में जागो, उठो। और प्रसाद की प्राप्ति करो॥ ८॥

पद्यानुवाद

इन्द्र धरणेन्द्रादि ये गन्धर्व यक्ष विनय करें।
एक गठरी तीन की, जय दीजिये अनुनय करें॥ ११॥

नित्यनित्यनिरीक्षितात्मा

नित नित निरिखित उत्पन्न। जय जय जय। जय जय जय। जय जय जय। नौ उत्पन्न जय। उत्पन्न जय ग्यारह। उत्पन्न प्रवेश। उव उवन हुन्तकार। मागधी भाषा। अंकूर उत्पन्न वरसाये तीन।

अनन्तानन्त कोड प्रवेश प्रवेश्यो । उत्पन्न विलस
रमण ॥ ९ ॥

टीका—नित्यनित्यनिरीक्षितोत्पन्नः भावः नव जयकार शब्दाः जिनश्रेणिभावानां जयकाराः । उत्पन्न जयकारश्च समस्तजिनश्रेणिभावानां जयकाराः । उत्पन्ने स्वरूपे प्रवेशः । उव उवन नाम हुन्तकारः । मागधीभाषा । त्र्युत्पन्नांकुराः । अनन्तानन्तकोड प्रवेशे प्रविष्टः । उत्पन्नो विलासः । रमणभावश्च स्वभावे ॥ ९ ॥

काव्य

जयाः नवगुणानां च नित्यनित्यनिरीक्षिताः ।
उत्पन्ने प्रवेशो याति हुन्तकारोऽपि जायते ॥ १२ ॥
कोडोत्सवेऽप्यनन्ते च प्रविष्टोऽहं निजात्मनि ।
विलासं रमणं तत्रोत्पन्नं तं च करोम्यहम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—नित्यनित्य निरीक्षणीय स्वभाव उत्पन्न हुआ । नौवार जय जयकार उत्पन्न हुआ । ग्यारह वार जयकार शब्द उत्पन्न हुआ । अपने उत्पन्न में प्रवेश किया । उव उवन नाम का हुन्तकार भी उत्पन्न हुआ । मागधी भाषा भी । उत्पन्न हुये तीन अंकूर दरसाये । अनन्तानन्त कोड-प्रवेश में प्रविष्ट हुये । विलास और रमण अपने स्वरूप में हो रहा है ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—सदैव निरीक्षण करने योग्य निजभाव उत्पन्न हुआ । नौ जय जयकार उत्पन्न हुये । समस्त जिनश्रेणि के ११ गुणस्थानों के ११ जय जयकार शब्द उत्पन्न हुये । अपने स्वरूप में हम प्रविष्ट हुये । उव उवन नाम का हुन्तकार भी उत्पन्न हुआ । मागधी भाषा भी । तीन अंकूर उत्पन्न हुये अनन्तानन्त कोड प्रवेश में प्रविष्ट हुआ । अपने स्वभाव में विलास और रमण का भाव उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—नौ गुणस्थानों के तथा ११ गुणस्थानों के समस्त जिन-श्रेणि भाव जयवन्त हों । अपने स्वभाव में प्रवेश प्राप्त हुआ । हुन्तकार भी

भी प्रगट हो रहे हैं। अनन्तकोड के प्रवेश में प्रविष्ट हूँ। अपने आत्मा में विलास और रमण को उत्पन्न कर रहा हूँ ॥ १२-१३ ॥

विशेषार्थ—रूपस्थ ध्यान जब आता है, अरहन्तों का स्वरूप, जिन-श्रेणि और समवशरण की चर्चा होने लगती है। ऐसे पचीसों सूत्र हैं कि जिनमें समवशरण का प्रकरण खूब आया है। किसी सूत्र में दो चार बातें हैं किसी में पूरे समवशरण की अनेक महिमाओं का वर्णन है। इस सूत्र में भी समवशरण का ध्यान आया वहाँ की कुछ बातें हुईं। जय जयकार होने लगा। पुनः शुद्धस्वभाव की चर्चा होने लगी ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

नित नित निरीक्षित यह स्वरूप अनन्त जयमय हो रहा।
अन्तर्ध्वनी की मागधी सुन मैं स्व तन्मय हो रहा ॥ १२ ॥

मेरा रोम रोम प्रकाशित

उत्पन्न अर्क रोम रोम। कोड उत्पन्न प्रवेश प्रवेश्यो। कोड स्वयं। कोड उत्पन्न हुन्तकार। उत्पन्न अञ्जरी प्रसारी। पदवी अनन्त उत्पन्न। अनन्त कोड आनन्द कोड हँसिऊ विहँसिऊ अनन्त प्रवेश प्रवेश्यो ॥ १० ॥

टीका—शुद्धस्वभावेऽर्काणामुत्पत्तिर्भवतिस्म अतएव रोमरोमरोमां-चोल्लासभावानन्द स्वभावे उल्लसति। कोडानन्द स्वभावे उत्पन्न प्रवेशे प्रविष्टोऽहं। कोडानन्दमयं स्वयं। कोडोत्पन्न स्वभावमयं स्वयं। कोडो-त्पन्न हुन्तकारोऽपि, अनन्तपदस्य प्राप्ति सः करोति स्वाञ्जलिप्रसार्य यः स्वभाव सन्मुखे याति। हसन् विहसन् कोडोत्पन्नानन्तस्वभावे रमणं विलासं कुर्वन्तु सर्वे। अनन्तप्रवेशे प्रविष्टो भव ॥ १० ॥

काव्य

रोम रोमांचितो भूत्वा स्वानुभूति प्रकाशितः।
तत्रैवापि प्रविष्टोऽहं हुन्तकारे स्वयं सुखे ॥ १४ ॥

अञ्जलिः प्रसारितोऽहं शुद्धभाव स्वसन्मुखे।
अनन्त पद व्युत्पन्ना चिदानन्द स्वयं पदे ॥ १५ ॥
अनन्त कोड सानन्दे सहर्षोत्पन्न भावना।
हसन्तु विहसन्तु च कुर्वन्तु सर्व धारणा ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—रोम रोम में चैतन्य सूर्य उत्पन्न हुआ है। आनन्द स्वभाव और उत्पन्न प्रवेश में प्रविष्ट हूँ। आनन्द कोड स्वयं, आनन्द कोड स्वभाव में स्वयं उत्पन्न कोड हुन्तकार प्रगट हो रहा है। उत्पन्न अंजलि पसारी है। अनन्त पदवी उत्पन्न हो रही है। इस अनन्त कोड आनन्द कोड स्वभाव को हँसकर विहँसकर प्राप्त करो, अनन्त प्रवेश स्वभाव में प्रवेश करो ॥ १० ॥

टीका अर्थ—शुद्ध स्वभाव में अनन्त सूर्यों की उत्पत्ति हो रही है। अतएव रोमरोम उल्लास आनन्द स्वभाव में आत्मा हर्षित हो रहा है। आनन्द कोड स्वभाव और उत्पन्न प्रवेश में मैं प्रविष्ट हूँ। आनन्द कोडमय स्वयं हूँ। कोड उत्पन्न हुन्तकार भी उत्पन्न है। अनन्त पद प्राप्ति वह करता है जो अपनी अंजली को पसारता है, कहाँ? अपने शुद्धस्वभाव के सन्मुख। हँसते खेलते अनन्त कोड उत्पन्न स्वभाव में रमण करो। अनन्त के प्रवेश में प्रविष्ट होओ ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—रोम रोम रोमांचित होकर स्वानुभूति को प्रकाशित किया है। और वहीं प्रविष्ट भी हुआ हूँ। वह मेरा स्वयं सुख हुन्तकार स्वरूप है ॥ १४ ॥

अपने शुद्धभाव के सन्मुख अञ्जली पसारी है। चिदानन्द स्वयं पद में अनन्त पदवियाँ उत्पन्न हो रही हैं ॥ १५ ॥

अनन्त कोड आनन्द में हर्ष भावना सहित हँसते विहँसते विलास करो। तथा शुद्धस्वभाव की धारणा करो ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—गुरुदेव एकान्त, शून्य, निर्जन और निराकुल वातावरण को सदैव चाहते थे। यहाँ अर्क स्वभाव का प्रकाश अपने रोम रोम में

प्रकाशित हो रहा है। आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनुभव कर रहे हैं। मेरे रोम रोम में अर्क उत्पन्न हैं। उनका प्रकाश उत्पन्न हो रहा है। वह प्रकाश मेरे भीतर प्रवेश करता जा रहा है। कोड स्वयं वह प्रकाश स्वरूप तो स्वयं है। कोड नाम का हुन्तकार उत्पन्न हुआ। आत्मा के भीतर जो भी बात पहुँचे वह आत्मा की स्वीकृति से ही समझी जावे, उसे गुरुदेव की परिभाषा में हुन्तकार कहते हैं हुन्तकार अर्थात् स्वीकृत। हुन्तकार के ११ भेद हैं जो स्वीकृति के समय उपयोग में आते हैं। वे ११ स्वीकारता के भेद हैं। अर्थात् आत्मा को ११ प्रकार से स्वीकार किया। आत्मा को ११ प्रकार से समझना। यहाँ जितने जहाँ हुन्तकार चिह्न प्रगट हुये उतने उतने लिखे हैं, सात, तीन, चार, ११ इनका उपयोग किया है। पूरे ग्रन्थ में ११ ही हुन्तकार बताये हैं॥ १०॥

पद्यानुवाद

जिनने पसारी अंजली पदवी अनन्त स्वरूप की।
हँस विहँस कोड स्वयं प्रगट उनको मिली चिद्रूप की॥ १३॥

दो ताली तोड़ी

ताली दोइ तोडी। अनन्त-बिन्द, अनन्त सुन्न।
अनन्त बिन्द॥ ११॥

टीका—द्वे ताली त्रोटिते। रागद्वेषभावं च दूरीकृत्य अनन्तबिन्दानन्तशून्यस्वभावं च प्राप्तः स्वयं शुद्धभावे॥ ११॥

काव्य

त्रोटिते द्वे च ताली ते रागद्वेष दुखान्विते।
अनन्तेऽन्तः प्रविष्टोऽहं शून्यबिन्दे चिदात्मनि॥ १७॥

सूत्रार्थ—ताली दो तोड़ी। अनन्त बिन्द। अनन्त शून्य। अनन्त बिन्द॥ ११॥

टीका अर्थ—दो ताली तोड़ी, रागद्वेष भाव विभाव को दूर करके

अनन्त विन्द अनन्त शून्य स्वभाव को प्रगट किया। स्वयं शुद्ध स्वभाव में ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—रागद्वेष रूपी दुखों से भरी दो ताली तोड़ी और अनन्त के अन्तर में प्रविष्ट हुआ। वहीं मेरा चैतन्य है। उसी शून्यविन्द स्वरूप को प्राप्त किया ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—आत्मा अनन्त सुख का भण्डार है। परन्तु द्वार बन्द है, और रागद्वेष के ताले पड़े हैं। इन दोनों तालों को तोड़ दिये। द्वार खोला, खोलते ही अनन्त विन्द अनन्त शून्य का अपूर्वनिधि भंडार प्राप्त हो गया। विभावों के ताले तोड़कर ही स्वभाव की प्राप्ति होती है। जो इन तालों को तोड़ेंगे वे पावेंगे ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

दो तालियाँ टूटीं जहाँ घर की स्व रागद्वेष को।
शून्यविन्द अनन्त निधि सब पा गया निज वेष को ॥ १४ ॥

अठारह आरते

आरते अठारह उत्पन्न जयवन्त सहाई। जयवन्त सहाई। सहाई जयं जिन स्वामी! तू इष्ट सुन्न। अनन्त उत्पन्न, उत्पन्न जयवन्त हौंहि। कौनइं जयवन्त हौंहि। कौन अस्थिति उत्पन्न हुई। अस्थिति उत्पन्न, जयवन्त जिन, जयवन्त जिन। जय उत्पन्न अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

टीका—आगता अष्टादशारते। अष्टादशदोषरहितस्वभाव सूचका:। अष्टादशज्योतिकेवलिनाम सूचकाश्च तेऽष्टादशारते। जयवन्त-स्वभाव:, जयवन्त स्वभाव:। स्वभावो जय:। हे जिनस्वामी! त्वमिष्ट-शून्योऽसि, अनन्तोत्पन्नोऽसि। उत्पन्नो जयवन्तोऽस्ति। के जयवन्त! उत्पन्ना का स्थिति:। उत्पन्नास्थिति: जयवन्तो जिना:। जयवन्तो जिना:। अथोत्पन्नानन्तप्रवेश: ॥ १२ ॥

रहिताष्टादश दोषाः स्वभावसूचक दशाष्ट संख्यायाम् ।
जयवन्त आरते इति जिनस्वामी त्वमिष्ट शून्योऽसि ॥ १८ ॥

उत्पन्न-उत्पन्न-अनन्त-भावे,
जयवन्त जयवन्त स्वभाव भावे ।
जिनाः स्थितिः स्थिति जयवन्त
भावे विभावभावस्य अभाव भावे ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ—आरते अठारह उत्पन्न हुये । जयवन्त हे जिनस्वामी ! तू इष्ट शून्य है । अनन्त उत्पन्न है । जयवन्त स्वभावी, जयवन्त स्वभावी । स्वभाव जयवन्त । उत्पन्न जयवन्त है । कौन जयवन्त हैं ? कौन स्थिति उत्पन्न है । स्थिति उत्पन्न है—जयवन्त जिन । जयवन्त जिन । जय उत्पन्न अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—अठारह आरते आये । अठारह दोषरहित स्वभाव के सूचक, अठारह ज्योतिकेवलियों के नामसूचक वे अठारह आरते आये । जयवन्त स्वभाव । जयवन्त स्वभाव । स्वभाव जयवन्त । हे जिनस्वामी, तुम इष्ट शून्य हो । अनन्त उत्पन्न हो । उत्पन्न जयवन्त है । कौन जयवन्त है ? क्या स्थिति उत्पन्न है ? स्थिति उत्पन्न है—जयवन्त जिन । जयवन्त जिन । जय उत्पन्न अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

काव्य अर्थ—अठारह दोष रहित स्वभाव के सूचक अठारह आरते आये । ये जयवन्त आरते हैं । हे जिन स्वामी ! तू इष्ट शून्य है ॥ १८ ॥

अनन्त भाव में उत्पन्न है, उत्पन्न है । स्वभाव भाव में जयवन्त है, जयवन्त है । जिन स्थिति है । भाव में जयवन्त स्थिति है । भाव में विभाव भाव का अभाव है ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—अठारह दोष रहित स्वभाव के सूचक आरते आये । जयवन्त स्वभाव के आरते हैं । श्रीगुरु पूछते हैं । कौन सी स्थिति उत्पन्न हुई है ? उत्तर भी साथ ही है—जयवन्त जिन की स्थिति उत्पन्न है । जय जयकार के साथ अनन्त स्वरूप में प्रवेश हुआ । जयवन्त स्वभावी प्रविष्ट हुये ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

दोष अष्टादश रहित पद के अठारह आरते।
सूत्र की अनुभूतियों को क्यों न आप निहारते ॥ १५ ॥

सात ताली तोड़ी

ताली सात तोड़ी। अनन्त अर्क अंकिऊ। अनन्त कोड उत्पन्न। सोऽहं-सोऽहं अनन्त अर्क उत्पन्न, गुप्त सुन्न उत्पन्न ॥ १३ ॥

टीका—त्रोटिता सप्तताली। अनन्तार्कं प्रकाशं करोति। अनन्त-कोडानन्दोत्पन्नः। सोऽहं सोऽहं स एवाहं। अनन्तार्कोत्पन्ने गुप्तशून्य-स्वभावोत्पन्नः ॥ १३ ॥

काव्य

त्रोटिता सप्तताली स्वयं साधने,
अंकितानन्त शून्यस्य साराधने।
कोड उत्पन्न सोऽहं स्वयं लेहु रे,
स्वस्य स्वस्मै जयं त्वं स्वयं देहि रे ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—ताली सात तोड़ी, अनन्त अर्क अंकित हुये। अनन्त कोड उत्पन्न हुये। सोऽहं सोऽहं ही स्वरूप मेरा है। अनन्त अर्क उत्पन्न हुये। गुप्तशून्य उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—सात ताली तोडी। अनन्त सूर्यों का प्रकाश प्रकाशित हुआ। अनन्त आनन्द कोड उत्पन्न हुआ। सो ही मैं हूँ, वही मैं हूँ। अनन्त सूर्य शुद्धात्मा के उत्पन्न होने पर शून्यस्वभाव उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—स्वयं की साधना में सात सम्यक्त्व घातिनी तालियों को तोडीं। उस आराधना में ही शून्य स्वभाव प्रकाशित हुआ। सोऽहं स्वयं कोड आनन्द आनन्द उत्पन्न को स्वयं ले लो। अपनी जय अपने को स्वयं समर्पित करो ॥ २० ॥

विशेषार्थ—सात ताले तोड़े। अनन्त अर्कों से अंकित अनन्त कोड़ उत्पन्न हुये। अनन्त अर्क के उत्पन्न होने से गुप्त शून्य उत्पन्न हुआ।

प्रथम अध्याय सूत्र १६ से २६ तक जो सम्यक्त्व साधना का प्रकरण आया है, उसमें श्रीगुरु महाराज ने तीस वर्ष में सात ताले तोड़े। सूत्र १६-१७-१८ में सात ताले कौन-कौन से तोड़े इसका विवेचन है। सबसे बड़ा ताला मिथ्यात्व का ११ वर्ष में टूटा, इस ताले के साथ ही ४ ताले अनन्तानुबन्धी के स्वयं टूट गये। पाँच ताले ये हुये। छठवां और सातवां ताला सम्यग्मिथ्यात्व का तथा सम्यक्प्रकृति का, ये सब मिलाकर सात हुये। ६ वाँ तथा ७ वाँ ताला तोड़ने में १९ वर्ष का समय लगा। इन सात प्रकृतियों के ताले टूटते ही भीतर अनन्त सूर्य का प्रकाश, अनन्त कोड़ आनन्द स्वभाव, अनन्त गुप्त शून्य स्वभाव आदि समस्त आत्मा का वैभव दृष्टिगत हुआ। ऐसे सात ताले तोड़े और अपने स्वरूप निधि भंडार पर अपना अधिकार हुआ ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

मिथ्यात्व और अनन्त के जब सात ताले तोड़ते।
सोऽहं स्वरूप अनन्त निधि सम्पत्ति को हि बटारते ॥ १६ ॥

आसन-सिंहासन

अनन्त आसन सिंहासन। परिचय उत्पन्न कमलावती।
अनन्त कोड उत्पन्न। उत्पन्न अचिन्त्यचिन्तामणि।
अनन्त प्रवेश। गुप्त-विन्द अनन्त सुन्न अचिन्त्य
चिन्तामणि। अनन्त प्रवेश। छत्र-चमर सिंहासन।
नव उत्पन्न निधि। अनन्त प्रवेश ॥ १४ ॥

टीका—अनन्तासनसिंहासनाचिन्त्यचिन्तामणिश्छत्रचामरसिंहासनादि नवनिधिर्बाह्यविभूतयः। अनन्तमेवं पश्य, परिचयोत्पन्ना कमलावती, अनन्तानन्दकोडोत्पन्नोत्पन्नाचिन्त्यचिन्तामणिः। अनन्ते प्रवेशः।

गुप्तस्वरूपेऽनन्ते शून्य स्वभावेऽचिन्त्यचिन्तामणौऽनन्ते प्रवेशः। अनन्त-ज्ञानादिस्वभावे प्रवेशः, स्वात्मानुभूतिः ॥ १४ ॥

काव्य

छत्रत्रयं चामरसिंहपीठं,
पुण्योदये बाह्य विभूतयश्च।
अन्तः स्वरूपे निज वैभवं त्वं,
पश्य प्रविष्टो भव शून्य भावे ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—आसन सिंहासन अनन्त हैं। कमलावती ने जिससे परिचय उत्पन्न किया है वह अनन्त कोड आत्मानन्द है। वह अचिन्त्य चिन्तामणि है। उसका अनन्त प्रवेश है। वह गुप्त विन्द अनन्त शून्य है। अचिन्त्य चिन्तामणि है, अनन्त प्रवेश है। छत्रचमर सिंहासनादि नवनिधि स्वयं उत्पन्न होती हैं। अपने अनन्त स्वरूप में प्रवेश हो ॥ १४ ॥

टीका अर्थ—आसन सिंहासन अचिन्त्य चिन्तामणि छत्र चमर सिंहासनादि नव निधियाँ बाह्य विभूति हैं। अन्तर्वैभव को देखो जिसका परिचय कमलावती ने प्राप्त किया है। अनन्त आनन्द कोड उत्पन्न अचिन्त्य चिन्तामणि को प्रगट करो, अनन्त में प्रवेश करो। गुप्त स्वरूप में अनन्त शून्य स्वभाव में अचिन्त्यचिन्तामणि अनन्त स्वरूप में प्रवेश करो। अनन्त ज्ञानादि स्वभाव में प्रवेश करो, यही स्वानुभूति है ॥ १४ ॥

काव्य अर्थ—छत्रत्रय चामर सिंहासनादि ये पुण्योदय से प्राप्त बाह्य-विभूतियाँ हैं। अपने अन्तरंग के वैभव को तुम देखो और उसमें प्रवेश करो वही शून्य भाव है ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—श्रीसंघ की प्रमुख विदुषी श्री कमलावती जी से परिचय हुआ। कमलावती शक्ति की अनुभूति हुई। इस सूत्र में अनन्त आसन, अनन्त कोड, अनन्त प्रवेश, अनन्त शून्य इन चार अनन्तों को तथा नवनिधि अनादि अपने रूपस्थध्यान की सामग्री के उत्पन्न होने की सूचना है ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

कमलावती निजशक्ति का आसन जहाँ उत्पन्न हो ।
स्वचतुष्टयों के नाथ से परिचय वहाँ उत्पन्न हो ॥ १७ ॥
छत्रादि चामर विभव नव उत्पन्न निधि चिन्तामणी ।
गुप्तशून्य अनन्त विन्दु प्रवेश की महिमा बनी ॥ १८ ॥

अरहन्त वंणे

लब्धि अलब्धि स्वयंदेव उत्पन्न । देवाधिदेव उत्पन्न । लब्धि उत्पन्न । दिव्यध्वनि मागधी भाषा । अरहन्त पदवी अनन्त उत्पन्न । स्वयं लब्धि उत्पन्न । अर्हन्त दियो । अरहन्त देई । प्रचं प्रवेश अर्हन्त होई । लेहु रे जयवन्त होहु ॥ १५ ॥

टीका—स्वयंविभवद्भुतस्वभावोपलब्धिरूपात्मा स्वयं देवोत्पन्नो देवाधिदेवोत्पन्नः। उत्पन्नाश्च लब्धयः। दिव्यध्वनिः। मागधी भाषा। अरहन्त पदवी। अनन्तोत्पन्ने स्वयंलब्ध्युत्पन्ने भवन्ति सर्वास्ताः विभूतयः। अरहन्तोऽददत, अरहन्तो ददाति अरहन्तो ददिष्यते। परिचये प्रविष्टोऽरहन्तो भवति। लेहुरे जयवन्तो भवन्तु ॥ १५ ॥

काव्य

देवः स्वयंदेव सुदेव देवः,
स्वशुद्ध चिद्रूप स्वरूप देवः ।
सोऽर्हंत पदवी ददते स्वतश्च,
जानाति यः सो भवति स एव ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ—स्वयं देव उपलब्ध हुआ, उत्पन्न हुआ, देवाधिदेव उत्पन्न हुआ। लब्धियाँ उत्पन्न हुई। दिव्यध्वनि। मागधी भाषा। अरहन्त पदवी। अनन्त उत्पन्न हुई। स्वयं लब्धि उत्पन्न है। अरहन्तों ने ही दिया है। अरहन्त देंगे। परिचय और प्रवेश करने वाले अरहन्त होंगे। लीजिये जयवन्त होइये ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—स्वयं दिव्य शुद्धभाव उपलब्ध आत्मा ही स्वयं देव है। देवाधिदेव है। लब्धियाँ उत्पन्न हैं, दिव्यध्वनि, मागधीभाषा, अरहन्त पदवी, अनन्त के उत्पन्न होने पर लब्धि उपलब्ध होने पर समस्त बाह्याभ्यन्तरंग विभूतियाँ प्रगट होती हैं। अरहन्तों ने दिया, देते हैं, देंगे। परिचय और प्रवेश करने वाला अरहन्त होता है। लेओरे जयवन्त हो ॥ १५ ॥

काव्य अर्थ—देव, स्वयंदेव, देवाधिदेव, अपना शुद्धचिद्रूप ही देव है। वह स्वयं अपने आपको अरहन्त पद भेंट करता है। जो यह जानता है वह वही होता है ॥ २२ ॥

विशेषार्थ—लीजिये १४वें सूत्र की सामग्री होते ही रूपस्थध्यान में क्या-क्या होगा ? इसका वर्णन इस सूत्र में आया है। और अन्त में ध्यान का फल भी बता दिया है। अरहन्त दियो, अरहन्त देई, परिचय प्रवेश अर्हन्त होई अर्थात् अरहन्त का दिया स्वरूप है। अरहन्त ही देंगे। और जो भी अरहन्त स्वभाव के परिचय में प्रवेश करेगा वह अरहन्त होगा, लेहुरे जयवन्त होहु। यह ऋद्धि-सिद्धि का दाता आशीर्वाद है। जो इसे शिरोधार्य करेगा वह ऋद्धि-सिद्धि से सम्पन्न होगा ॥ १५ ॥

पद्यानुवाद

स्वयंलब्ध अनन्त श्री अरहन्त शुद्धस्वभाव में।
अरहन्त हो अरहन्त निज जयवन्त लेहु स्वभाव में ॥ १९ ॥

कलन जिन स्वामी श्री से मिले

कलन कमल जिन जिनहिं मिले। गुप्तसुन्न उत्पन्न।
नामप्रमाण महोच्छौ। अनन्त जयवन्त। जय जय
जय। जय जय जय। जिन जय। जिन जय।
अरहन्त किये हुन्तकार ॥ १६ ॥

टीका—कलनकमलजिनोभावीमनःपर्ययज्ञानी मिलितो जिनं श्रीतारणतरणदेवं। गुप्तशून्योत्पन्नः गुप्तस्वभावः शून्यभावश्च प्रकटितः। यथानाम तथा प्रमाण महोत्सवः सम्पन्नोऽनन्तो जयवन्तो भवतु। जयो

जयो जयः। जयो जयो जयः जिनो जयतु। जिनो जयतु। अरहन्त स्वरूपं स्वीकृतौ जिनौ श्रीतारणतरण जिनकलनजिनेति द्वौ ॥ १६ ॥

काव्य

कलन कमलो जिनो, जिनैर्मिलितो जिनः,
गुप्तशून्य नाम सोत्पन्न मिलितो जिनः।
उत्सवानन्त जयवन्त मिलितः स्वयं,
जयो जयो जयो जयवन्त पद जयो जयः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ—कलन कमल जिन जिनतारणतरणदेव जी से मिले। गुप्त-स्वभाव तथा शून्य स्वभाव उत्पन्न हुआ, यथानाम प्रमाण महोत्सव हुआ, अनन्त स्वभाव जयवन्त हो। जय जय जय। जय जय जय। जिनतारणतरण जयवन्त हों। जिन कलन कमल जयवन्त हों। अरहन्तों के स्वरूप को स्वीकार किया ॥ १६ ॥

टीका अर्थ—भावी मनःपर्ययज्ञानी श्री कलन-कमलजिन श्रीजिन-तारणतरणदेव से मिले। गुप्तस्वभाव प्रगट हुआ। शून्यस्वभाव भी प्रगट हुआ, यथानाम तथा प्रमाण महोत्सव सम्पन्न हुआ। अनन्त जयवन्त हो। जयहो जयहो जयहो। जयहो जयहो जयहो। जिन जयवन्त हों। जिन जयवन्त हों। अरहन्तों के स्वरूप को श्रीतारणजिन और कलनजिन ने स्वीकार किया ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—श्री कलन-कमलजिन श्रीतारणजिन से मिले। गुप्त शून्य स्वभाव का नाम प्रगट हुआ। जिन मिलन से अनन्त जयवन्त का महोत्सव स्वयं मिल गया। यह सब जयवन्त पद की महामहिमा है। जयहो जयहो जयहो ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—पाँचसौ मनःपर्ययज्ञानी जीवों की संख्या में उत्पन्न होने वाले श्री कलनजिन स्वामीजी से मिले। गुप्तशून्य नाम के शून्यस्वभाव की चर्चा हुई, अपने आत्मा में कलनजिन ने गुप्तशून्य उत्पन्न किया, नाम प्रमाण महोत्सव हुआ। अनन्त जयवन्त हुये। कलनजिन ने स्वामीजी की जिनजय शब्द से तीन बार जय जयकार की। हुन्तकार ही अरहन्तों का मार्ग है।

इस हुन्तकार ने अनन्त अरहन्त किये। और जो भी इस जिनमार्ग को स्वीकार करेगा वह अरहन्त होगा ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

कलनजिन जिनसे मिले तब गुप्त कमल वहाँ खिले।
जिननाम के अनुसार श्री अरहन्त उत्सव में मिले ॥ २० ॥

बाई विमलश्री आईं

अरुदोई। अरुबाई विमलश्री आईं। देखहु। मिलन
मिली देखहु रे। अचिन्त्य जु आये। आसन
सिंहासन कमलासन सिंहासन चार के चार ॥ १७ ॥

टीका—द्वे च ते आगते, पश्य, देवीश्री विमलश्री आगता। मिलनश्री मिलिता, पश्य रे। पूर्वं न चिन्तितोऽहमचिन्त्यरूपेण वै आगताः सर्वाः। चतसृणामासनसिंहासनकमलासनसिंहासन संख्यापि संख्या प्रमाणा चतस्रोऽस्ति ॥ १७ ॥

काव्य

पश्यागते द्वे च पश्यागता सा,
मिलिता मिलनश्री रे पश्य त्वं स्वयं।
अचिन्त्य चिन्तामणि चेतने ताः,
निमग्नभावाश्च सु माननीयाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—और दोनों, और बाई विमलश्री आईं देखो। मिलनश्री मिलीं देखो रे। अचिन्तित रूप में ही सब आये। आसन, सिंहासन, कमलासन, सिंहासन चार के चार आसन हैं ॥ १७ ॥

टीका अर्थ—और दोनों। देखो, देवीश्री विमलश्री भी आईं। मिलनश्री मिलीं। देखो रे। पहिले चिन्तन भी नहीं किया, अचिन्त्य रूप में ये आये। चारों के चार आसन सिंहासन कमलासन सिंहासन की संख्या भी उतनी ही चार ही है ॥ १७ ॥

काव्य अर्थ—देखो, और दोनों और वह आईं। मिलनश्री मिलीं

देखो रे। वे सब अचिन्त्य चिन्तामणि के समान स्वभाव में निमग्न हैं तथा अपने श्रीसंघ में सम्माननीय हैं ॥ २४ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में विमलश्री मिलनश्री आदि चार बाइयों के आने की चर्चा है। ये अचिन्त्य रूप में आईं। पहिले शब्द में दो बाइयों के आने की सूचना है, नाम नहीं हैं। चारों बाइयों को चार आसनें सन्मानपूर्वक दी गई हैं। गुरुदेव के दरबार में सम्यग्दृष्टि जीवों का बड़ा ही सन्मान था। अभी तक अनेक सूत्रों में अनेक जीवों का जो सन्मान हुआ है, यह जिनमार्ग की प्रभावना का कारण है। सम्यग्दृष्टि जीव नहीं चाहते कि हमारा सन्मान हो, परन्तु उनका सन्मान करना यह शुभराग महान् पुण्यबन्ध का कारण है ॥ १७ ॥

पद्यानुवाद

आईं विमलश्री देख लो अपने मिलन से मिल रहीं।
इन चार के ये चार आसन सम्पदा सब खिल रहीं ॥ २१ ॥

अनन्त स्वभाव

पंचविप्ति होई। अरुवोई हुई। अरु अनन्त स्वभाव।
अर्क अर्थ विन्द उत्पन्न हुन्तकार तीन। हुन्तकार
सात ॥ १८ ॥

टीका—पञ्चभेदा विप्तिः। द्विभेदा चापि। अनन्तस्य स्वभावः अनन्त स्वभावः अर्कार्थविन्दत्रिहुन्तकारोत्पन्ना स्वभावे। सप्त हुन्तकाराश्च ॥ १८ ॥

काव्य

भवन्ति पंच विप्तयः द्वया स्वभाव साधिता।
अर्क अर्थ विन्द हुन्तकार त्रि स्वभावजाः ॥ २५ ॥
भवन्त्यनन्तहुन्तकार सप्त भाव साधने।
स्वभाव शुद्ध सन्मुखेऽर्कविन्दुमर्थ धारणम् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—विप्ति पाँच होती हैं। और दो होती हैं। और अनन्त

स्वभाव में अर्क-अर्थ-विन्द ये तीन हुन्तकार उत्पन्न होते हैं। हुन्तकार सात भी होते हैं ॥ १८ ॥

टीका अर्थ—दिप्ति के पाँच भेद हैं। दो भेद भी हैं। अनन्त स्वभाव। अर्क-अर्थ-विन्द तीन हुन्तकार होते हैं। ये अनन्त स्वभाव में उत्पन्न होते हैं। सात हुन्तकार भी होते हैं ॥ १८ ॥

काव्य अर्थ—दिप्तियाँ पाँच होती हैं। दो भी हैं। स्वभाव की साधन करने वाली हैं। अर्क अर्थ विन्द ये तीन हुन्तकार हैं। अनन्त स्वभाव में सात हुन्तकार भी होते हैं। भाव के साधन में तथा स्वभाव सन्मुख अवस्था में अर्क विन्दु अर्थ हुन्तकार की धारणा होती है ॥२५-२६॥

विशेषार्थ—पाँच दिप्तियाँ होती हैं। और दो भी होती हैं। और अनन्त स्वभाव है। अर्थ अर्क विन्द ये तीन हुन्तकार प्रगट हुये। हुन्तकार सात भी हैं। पाँच दिप्तियों के नाम—१. सोऽहं दिप्ति, २. शाह दिप्ति, ३. स्वयंदिप्ति, ४. सारस्वत दिप्ति, ५. जिन। और दो दिप्ति—१. स्वयं दिप्ति, २. शाह दिप्ति। हुन्तकार तीन ऊपर लिखे हैं। दिति, दिप्ति, सर्वांग और आनन्द कोड चार ये हैं कुल सात यहाँ हुये। इस प्रकार सूत्र निर्दिष्ट भेदों के नामादि कहे।

स्वामीजी का ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म था। एक एक क्षण की अपनी परिणति का साधना का ध्यान रखते थे। कौनसी साधना में कितना समय लगा, इसका पूरा हिसाब अपने ध्यान में रखते थे। इसके लिये प्रथम अध्याय की सम्यक्त्व साधना तथा अन्य अध्यायों की और भी साधनायें ध्यान देने योग्य हैं ॥ १८ ॥

पद्यानुवाद

अपने अनन्त स्वभाव में निधियाँ कहो क्या क्या नहीं।
पंचदिप्ति स्वरूप पाँचों पद यहाँ हैं या नहीं ॥ २२ ॥

बारह-बारह

पहुँचो बारह। बारह जने सालि चाहिजे। बारह-

पयोग। सुन्न बारह। बिन्द बारह। आगौनी बारह।
बारह तो साथ चाहिजे। पहुँचो बारह ॥ १९ ॥

टीका—यूयमाप्नुत द्वादश-एव। द्वादशजनाश्चसाक्षिरूपेणावश्यकीया: यूयं स्त। द्वादशोपयोगाः भवन्त एव। शून्य संख्या च द्वादशा यूयं स्त। बिन्दुसंख्याद्वादशापि भवन्त एव। आगमनी द्वादश यूयं। द्वादशजनास्तु सहैवावश्यकीयाः यूयं। अतएव यूयमाप्नुत द्वादश एव। ते के जनाः द्वादशसन्ततगणधरादिपदयोग्याश्चतुर्थाध्याये प्रथम सूत्रे एव तेषां नामावली कथिता। पुनरपि—कलनावती, रुइयाजिनो, विप्लजिनो, विगसजिनः स्थान रंजो, भक्तावती, सुबनावती, रमणावती, होरा, विगसावती, शिवकुमारोऽतुलश्री, एते द्वादशजनाः उत्काशीर्वादयोग्याः सन्ति। समवशरणे प्राप्नुत भविष्यकाले तारणतरणकेवलीसमये स्व स्वरूपे वा प्राप्नुत स्वचिदानन्दचिद्रूपस्वभावे ॥ १९ ॥

काव्य

प्राप्नुत द्वादश स्थाने द्वादशः साक्षिणो जनाः।
द्वादशोपयोग शून्ये विन्दु द्वादश स्वात्मनि ॥ २७ ॥
आगमनी द्वादशसु सह संगश्च द्वादशः।
प्राप्नुत द्वादशस्थाने स्वतः शुद्धात्मना स्वयं ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—तुम बारहजनें उस समवशरण में पहुँचो। और अपने स्वरूप में पहुँचो। बारहजनें साक्षी चाहिये। बारह उपयोग हैं। शून्य बारह हैं। विन्दु बारह हैं। आगौनी बारह हैं। बारह तो साथ चाहिये। अतएव पहुँचो बारह ॥ १९ ॥

टीका अर्थ—उस समवशरण को तुम बारहजनें प्राप्त करो। बारहजनें साक्षी रूप में तुम आवश्यक हो। बारह उपयोग तुम्हीं हो। शून्य बारह तुम्हीं हो। विन्दु बारह तुम्हीं हो। अगौनी बारह तुम्हारी होंगी। तुम बारह तो साथ चाहिये अतएव पहुँचो बारह। वे कौन बारहजनें? सन्ततगणधरादि पद के योग्य चौथे अध्याय में प्रथम सूत्र में ही उनकी

नामावली कही है। फिर भी उनके नाम—कलनावली। रुइयाजिन। दिप्तजिन। विगस जिन। स्थान गंज। भक्तावती। सुवनावती। रमणावती। हीरा। विगसावती। शिवकुमार। अतुलश्री। ये बारहजनें उक्त आशीर्वाद के योग्य हैं। ये बारहजनें समवशरण जो तारणतरण केवली का होगा उसमें पहुँचो और अपने स्वरूप को लेकर अपने शुद्धात्मा में पहुँचो यह आशीर्वाद है॥ १९॥

काव्य अर्थ—तुम बारह साक्षीजन बारहवें गुणस्थान को प्राप्त करो, शुद्धोपयोगमय शून्यस्वभाव विन्दु स्वभाव में पहुँचो॥ २७॥

बारहवें गुणस्थान में ही आगौनी होगी, तुम बारहजनों के साथ बारहवाँ स्थान हो। स्वयं शुद्धात्मा के द्वारा प्राप्त करो॥ २८॥

विशेषार्थ—चौथे अध्याय में १२ शिष्य शिष्याओं के नाम प्रथम सूत्र में लिखे हैं। ये सब शिष्यगण इस सूत्र की चर्चा के समय उपस्थित थे। उपयोगादिकी निश्चयनय प्रधान चर्चा थी, इन १२ को ही समस्त उपमाएँ दे दीं। और साथ में दो बार अपने समवशरण में पहुँचने का आग्रह भी कर दिया। तुम बारहों की साक्षी चाहिये, साथ चाहिये॥ १९॥

पद्यानुवाद

उपयोग बारह सुन्न बारह सभी बारह चाहिये।
साथ बारह साक्षि बारह तभी बारह पाइये॥ २३॥

यह गठरी किसने छोड़ी

ए गठरी कौने छोड़ी रे। अनपूछे छोड़ी। रयन स्वभाव। कंज जल। रंज प्रवेश॥ २०॥

टीका—गठरीयं केन ग्रन्थिमुक्ता कृता? अप्रच्छन्नेव ग्रन्थिमोचनं कृतं। रसरञ्जशुद्धस्वभावरत्ना गठरीयं गृहीत्वा कमलवज्जले स्वभावे प्रवेशं कुरु॥ २०॥

काव्य

रत्न स्वभावा गठरी ग्रन्थि बद्धा दृढाथवा।
ग्रन्थिमुक्ता कृता केन अप्रच्छन्नेव चोरिता॥ २९॥

सूत्रार्थ—यह गठरी किसने छोड़ी रे ! बिना पूछे छोड़ो। यदि छोड़ना है तो रत्न स्वभाव की गठरी छोड़ो। कमल जलवत् रंज रमण स्वभाव में प्रवेश करो ॥ २० ॥

टीका अर्थ—यह गठरी किसने छोड़ी। बिना पूछे ही छोड़ी। रत्न-स्वभावा यह गठरी है। कंजजलवत् रञ्ज रमण स्वभाव में प्रवेश करो। इस गठरी को साथ ले जाओ ॥ २० ॥

काव्य अर्थ—ग्रन्थिबद्ध सुदृढ़, तथा रत्न स्वभावा गठरी किसने बिना पूछे छोड़ी, चोरों की। यदि ऐसा करना है तो अपने स्वभाव में करो ॥ २९ ॥

विशेषार्थ—यह रत्न स्वभाव की गठरी किसने छोड़ी अर्थात् कौन सम्यक्त्व से विभूषित हुआ। बात तो निश्चय की है, निमित बाहर का है। अनपूछे छोड़ो का भाव स्वामी जी को विदित न हो सका। अपने शुद्ध स्वभाव का लाल अपनी ही आत्मा की गठरी में है। जल में भिन्न कमलवत रहने वाले ही रञ्ज रमण स्वरूप को पाते हैं ॥ २० ॥

पद्यानुवाद

गठरी बता दो कौन ने छोड़ी बिना पूछे स्वयं।
निज रंजजल है कंज रयण स्वभाव में जाना स्वयं ॥ २४ ॥

स्वरूप में रुचि

मंगलवार बत्तीस। मिलन रमण छत्तीस। पंच अरु इकईस। रमण इकईस। पंचोत्तरे पांच। जय जय जय परिणाम सहितं। रुचितं सहितं स्वरूपं। रुचितं सहितं बहत्तरि। रुचितं उत्पन्न साहि। स्वयं उत्पन्न बहत्तरि। रुचितं स्वयं उत्पन्न स्वभाव ॥ २१ ॥

टीका—द्वात्रिंशत्संख्या मंगलवार दिवसस्य। एतावधिसमये मिलन-रमण स्वभावेऽर्थात्रिंशत्स्वरूपे च साधना समन्वितोऽहं। पंचैकविंश-तिश्च, रमणैकविंशतिः। पंच पंचोत्तराः। जयजयजय परिणाम सहितो-

ऽयं स्वभावः। स्वरूप रुचि सहितोऽहं। द्विसप्तते: रुचि सहितोऽहं। रुचि स्वभावोत्पन्नः। द्विसप्तति स्वयमुत्पन्न स्वभावः। स्वयमुत्पन्ना रुचिः। स्वयमुत्पन्नः स्वभावः॥ २१ ॥

काव्य

रुचिवन्तः स्वभावे ये विभावो नैव रोचकः।
रुचिः सर्वस्य सर्वस्वं सैव सम्यक्त्व कारणा॥ ३० ॥

सूत्रार्थ—मंगलवार बत्तीस व्यतीत हो चुके। तब से छत्तीस अर्कों में मिलन रमण हो रहा है। पाँच और इकईस इनमें से इक्कीस तो रमण हैं और पाँच पंचोत्तरे हैं। जय जय जय परिणाम सहित यह साधना सम्पन्न हुई है। स्वरुचि संयुक्त स्वरूप रुचि संयुक्त रमण बहत्तरी। रुचि उत्पन्न स्वभाव। यह बहत्तरी स्वयं उत्पन्न है। स्वयं उत्पन्न रुचि और स्वयं उत्पन्न स्वभाव इस साधना के मूल हैं॥ २१ ॥

टीका अर्थ—बत्तीस मंगलवारों से मिलन रमण स्वभाव में, छत्तीस अर्कों में मेरी साधना हो रही है इक्कीस रमणों की रमणीय साधना हुई। पाँच ये पंचोत्तरे हैं। यह स्वभाव जय जय जय परिणाम स्वरूप प्रगतिशील एवं वृद्धिगत है। स्वरूप की रुचि वर्तमान है। रमण बहत्तरी में रुचि संयुक्त है। रुचि स्वभाव से उत्पन्न होती है। बहत्तरी स्वयं उत्पन्न स्वभाव है। रुचि स्वयं उत्पन्न स्वभाव है। स्वभाव स्वयं उत्पन्न स्वभाव है॥ २१ ॥

काव्य अर्थ—स्वभाव में जो रुचिवन्त हैं। विभावों में रोचक पन की प्रतीति ही जिनकी नष्ट हो चुकी है, अतएव यह सम्यक् रुचि ही सब की सर्वस्व है। सम्यक्त्व में कारण है॥ ३० ॥

विशेषार्थ—अपने प्रिय स्वभाव से मिलने की साधना छत्तीस अर्क रमण से प्रारम्भ है। बत्तीस मंगलवारों से यह साधना हो रही है। २१ रमण का साधन हुआ। पाँच तो पंचोत्तरे हैं। यह साधना पाँच पंचोत्तरों में ले जाने वाली है। जय जयवन्त परिणाम सहित, स्वरूप की रुचिसहित, ७२ शून्यों की रुचि सहित और रुचि सहित ही अपने शाह की प्राप्ति होती

है। ७२ शून्य इस रुचि में स्वयं उत्पन्न होंगे। रुचि सहित अपने स्वभाव में आओ। सर्वसिद्धियाँ अपने आप होंगी ॥ २१ ॥

पद्यानुवाद

बत्तीस मंगलवार से हम मिल रहे छत्तीस में।
निज सम्पदा रचना रुची की साधना इक्कईस में ॥ २५ ॥

भेद-प्रभेद

सहस दहोत्तरं परम परमात्मा स्वरूपं। बाईस सहस
दहोत्तरं रुचितं सहितं—दुन्दुही शब्द। बत्तीस सै
छ्यानवे शब्दार्थ प्रसिद्ध प्रमाण अगम स्वरूप। नित्य
स्वयं अरु ध्रुवं। ऋद्धिदियो। उत्पन्न अंकूर तीन।
अरु उत्पन्न मूठि। आरते उत्पन्न प्रवेश ॥ २२ ॥

टीका—दशोत्तरसहस्रसंख्या परमपरमात्मास्वरूपस्यास्ति। द्वाविंशतिसहस्रदशोत्तरसंख्या च रुचिसहित दुन्दुभिशब्दानां भेदाः। शतद्वात्रिंशच्छण्णवतिः संख्या शब्दार्थप्रसिद्धप्रमाणागम स्वरूपस्य। स्वयं स्वरूपवस्तु नित्यो ध्रुवः प्रवर्त्तेयं ऋद्धिः। अंकुरोत्पन्नास्त्रिसंख्या प्रमिताः। मुष्टिश्चोत्पन्ना। उत्पन्नारते प्रविशन्ति ॥ २२ ॥

काव्य

सहस्रदशोत्तरोक्तं स्वरूपं परमात्मनः।
सहस्र द्वाविंशति च दुन्दुभि शब्दं च रोचकं ॥ ३१ ॥
द्वात्रिंशच्चषण्णवतिं शब्दार्थानां प्रमाणतः।
नित्यं स्वयं ध्रुवं ऋद्धि सर्वमेव निरूपितम् ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ—एक हजार दश परम परमात्मा के स्वरूप हैं। बाईस हजार दश रोचक दुन्दुभि शब्दों के भेद हैं। बत्तीस सौ छ्यानवे शब्दार्थ प्रसिद्ध प्रमाण आगम स्वरूप हैं। नित्य स्वयं और ध्रुव है। ऋद्धियाँ दीं। तीन अंकुर उत्पन्न हुये। और मुष्टि उत्पन्न हुई। आरते आये ॥ २२ ॥

टीका अर्थ—एक हजार दश परम परमात्मा के गुण स्वरूप हैं।

बाईस हजार दश रोचक दुन्दुभि शब्दों के भेद हैं। बत्तीस सौ छ्यानवे अगम स्वरूप प्रसिद्ध प्रमाण शब्दार्थ के भेद हैं। स्वयं स्वरूप तो नित्य ध्रुव है। यह ऋद्धि दी। तीन अंकुर उत्पन्न हुये। मुष्टि उत्पन्न हुई। आरते आये ॥ २२ ॥

काव्य अर्थ—परमात्मा एक हजार दश लक्षण स्वरूप हैं। बाईस हजार दश दुन्दुभि शब्दों के भेद हैं। बत्तीस सौ छ्यानवे शब्दार्थ भेद हैं, प्रमाण से। नित्य तो स्वयं ध्रुव है। ऋद्धि प्रदान की। इन सबका निरूपण सूत्र में स्वामीजी ने नामनिर्देश रूप में किया है ॥ ३१-३२ ॥

विशेषार्थ—एक हजार दश परमात्मा के नाम हैं। दुन्दुभि शब्दों के २२०१० रोचक भेद हैं। बत्तीस सौ छ्यानवे शब्दार्थ अगम स्वरूप के प्रसिद्ध प्रमाण हैं। स्वयं स्वरूप नित्य और ध्रुव है। ऋद्धियाँ दीं। तीन अंकुर उत्पन्न हुये। और उत्पन्न मुष्टि है। आरते आये ॥ २२ ॥

पद्यानुवाद

सहस दश परमात्मा के दुन्दुभी शब्दार्थ के।
भेद बाहर के बताते, चले भीतर अर्थ के ॥ २६ ॥

अनन्त को न ले सके

मिलन गये तीन। पयपाल तो आयो। दिवौकत को
अनन्त उत्पन्न जु लहि न सके ॥ २३ ॥

टीका—मिलनार्थं त्रयो गताः। पयपालस्त्वागतः। दिवौकसां देवानामपि स्वशुद्धस्वभावस्य, अनन्तोत्पन्नस्य प्राप्तिर्नाभवत ॥ २३ ॥

काव्य

अनन्तोत्पन्नस्य लाभो देवानामपि दुर्लभः।
नरगतौ प्राप्तिस्तस्य महाभाग्यश्च भव्यता ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ—मिलने को तीन गये अथवा मिलनादि तीन गये। पयपाल तो आ गया। देवों को भी अनन्त उत्पन्न का लाभ न हो सका ॥ २३ ॥

टीका अर्थ—मिलने के लिये तीन जनें गये। पयपाल तो आ गया।

देवों को भी अनन्तोत्पन्न की प्राप्ति न हो सकी। वे भी शुद्ध स्वभाव को न पा सके ॥ २३ ॥

काव्य अर्थ—अनन्त उत्पन्न का लाभ देवों को भी दुर्लभ है। इस मनुष्य गति में उसकी प्राप्ति का होना यह महात्यद्भाग्य तथा भव्यता ही समझना चाहिये ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—पयपाल यह एक शिष्य का नाम है। तीन कौन-कौन मिलने को कहाँ गये, स्पष्ट नहीं है पयपाल तो आ गया। दिवौकस नाम देवों का है। वे भी अनन्त स्वरूप आत्मा का उदय और सम्यक्त्व प्राप्त न कर सके। अथवा दिवौकत कोई शिष्य रहा होगा, वह भी सम्यक्त्व न ले सका। उत्पन्न नाम सम्यक्त्व ॥ २३ ॥

पद्यानुवाद

मिलन को तीनों गये पयपाल तो आये यहाँ।
देव दुर्लभ पद स्वयं पर वस्तु में पावे कहाँ ? ॥ २७ ॥

चारित्र का प्रारम्भ

चारित्र उत्पन्न छद्मस्थ। छह अरु दोय। चौ ऋद्धि दीजो। छह अरु छहई। अनन्त मिलन। अनन्त अवगाह। अनन्त प्रसाद। नो उत्पन्न। छह अरु छहई। उत्पन्न जय। रमण छत्तीस जय ॥ २४ ॥

टीका—चारित्रोत्पत्तिर्भवति छद्मस्थानामेवषट्कमलसाधनायां तु स्वरूपाचरणं। द्विभेदे देशसकलभेदात्। दीयतां ऋद्धयश्चतस्रः। षष्ठगुणस्थाने वा ऋद्धिर्भवति। किन्तु षडेव गुणस्थान संख्यास्ति द्वादश-पर्यन्ता ऋद्धिकारणा। ऋद्धयश्चतस्रः अनन्तमिलना, अनन्तावगाहना, अनन्त प्रसादा, नो उत्पन्ना सूक्ष्मभावा एता अपि ऋद्धयः ज्ञातव्या भवन्ति। जयोत्पन्नः। षट् त्रिंशज्जयन्त्यर्क रमणभावं ॥ २४ ॥

काव्य

चतुर्थे पंचमे षष्ठे षडेवो पर्युपर्यपि।
चारित्रोत्पत्ति स्थानेषुषछद्मस्थावस्थायुताः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—चारित्र का प्रारम्भ छद्मस्थावस्था से होता है। छह षट्-कमलरूप स्वरूपाचरण चारित्रावस्था। तथा देश-सकलचारित्र के भेद से दो प्रकार है। चार ऋद्धि दीजिये। छठवाँ तथा छह गुणस्थान और हैं। जिनमें ये चार ऋद्धियाँ स्वयं प्राप्त हैं—अनन्तमिलन, अनन्तअवगाह, अनन्तप्रसाद, सूक्ष्मरमण। छठवाँ तथा छह और ऐसे ये ७ गुणस्थान निर्ग्रन्थ छद्मस्थों के हैं। इन गुणस्थानों में कर्मों की विजय होती है। रमण अर्क छत्तीस जयवन्त हैं। छह और छहई—छह आवश्यक मुनियों के तथा छह ही श्रावकों के होते हैं, ऐसा भी अर्थ है ॥ २४ ॥

टीका अर्थ—छद्मस्थावस्था में ही चारित्र का प्रारम्भ है षट्कमल की साधना में स्वरूपाचरण है। देशचारित्र तथा सकलचारित्र के भेद से दो भेद हैं। चार ऋद्धियाँ दीजिये। छठवाँ और छहगुणस्थान और हैं जो ऋद्धियों के देने वाले हैं तथा निर्ग्रन्थ छद्मस्थों के होते हैं। चार ऋद्धियाँ अनन्तमिलन, अनन्तअवगाहन, अनन्तप्रसाद, सूक्ष्मरमण। जयोत्पन्न है। छत्तीस अर्क रमणभाव जयवन्त हो ॥ २४ ॥

काव्य अर्थ—चौथे, पाँचवें और छठवें तथा छहगुणस्थान ऊपर-ऊपर के और हैं। ये चारित्रोत्पत्ति के सभी गुणस्थान छद्मस्थावस्था में होते हैं॥२४॥

विशेषार्थ—आगमज्ञान और चरणानुयोग की सार बात इस सूत्र में है। छद्मस्थावस्था में ही चारित्र का प्रारम्भ होता है। और दूसरा अर्थ है—छद्मस्थ (तारणतरण) को चारित्र की प्राप्ति हुई, क्यों गुरुदेव को छद्मस्थ कहते थे। इन्हें सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्र प्राप्त हुआ। छह आवश्यक मुनि श्रावक धर्म का अंग है। यही छह अरु दोय का भाव है। चौऋद्धि चार आराधना भी हैं। छह अरु छहई—छठवाँ फिर छठवाँ छठवें से सातवाँ और फिर छठवाँ ऐसा भी भाव है। आत्म-स्वरूप जयवन्त है। अर्क रमण स्वभाव जयवन्त है ॥ २४ ॥

पद्यानुवाद

भेदों सहित चारित्र यह छद्मस्थ में ही पाइये।
हो यथाख्यात स्वरूप जिस बिन लौट कर नहिं आइये ॥ २८ ॥

द्वादश-तिलक

चौबीस तीर्थंकर। रमण बहुत्तर। बहुत्तर जिनालौ।
तिलक बारह। अञ्जरो बारह॥ २५॥

टीका—चतुर्विंशतितीर्थंकराणामपि द्विसप्ततिर्भावाः रमणरूपाः सन्ति। द्विसप्ततिश्च जिनालयास्त्रिकालवर्तिनः। द्वादश तिलकाञ्जलयश्च॥ २५॥

काव्य

चतुर्विंशति तीर्थानां रमणं च द्वासप्ततिः।
द्विसप्ततिर्जिनास्तेषां तिलकाञ्जलि द्वादश॥ २५॥

सूत्रार्थ—रमण बहत्तर स्वरूप ही चौबीस तीर्थंकर हैं। त्रिकाल चौबीसी को बहत्तर जिनालय कहते हैं। तिलक बारह हुये। अञ्जलि भी बारह हैं॥ २५॥

टीका अर्थ—चौबीस तीर्थंकरों के बहत्तर रमण भाव होते हैं। त्रिकाल चौबीस के ७२ जिन ही ७२ जिनालय हैं। तिलक और अञ्जलि बारह बारह हैं॥ २५॥

काव्य अर्थ—रमण बहत्तरी में ही २४ तीर्थंकरों ने रमण किया, ७२ जिन ही जिनालय हैं। उन्हीं के १२ तिलक और १२ अञ्जलियाँ हैं॥२५॥

विशेषार्थ—त्रिकाल चौबीसी के बहत्तर जिन हैं जिन्हें सूत्र में जिनालय कहा है। यह निश्चयदृष्टि है। जिस शरीर में जिनेन्द्र का आत्मा विद्यमान हो वही जिनालय है, मन्दिर है, और जहाँ चैतन्य का ध्यान हो, गुणगान हो उसे चैत्यालय कहते हैं। ७२ तीर्थंकरों के ७२ जिनालय और ७२ ही इनके शुद्ध स्वरूप, इनमें रमण करना भी रमण बहत्तरी है। ७२ शून्यों में रमण करना भी रमण बहत्तरी है। ३६ अर्कों को अन्तर्बाह्य भेदों सहित स्वीकार करना भी रमण बहत्तरी है। तिलक बारह हुये, बड़े तिलक बारह तथा छोटे तो सैकड़ों हुये। स्वामी जी केवल ११ तिलकों में उपस्थित रहे। एक तिलक में नहीं आये। रुइयारमण जी १२ तिलकों

में आये। १०वें अध्याय के १५वें सूत्र में जो ग्रन्थ के अन्त में ही समझिये, उसमें ११ तिलक हैं। अञ्जलि १२ हैं—पुष्पाञ्जली, श्रद्धाञ्जली, भावाञ्जली, प्रणामाञ्जली, जलाञ्जली आदि यहाँ श्री गुरुदेव के चरणों में प्रणाम भाव श्रद्धादि की अञ्जलियाँ १२ तिलकों में समर्पित हुईं ॥२५॥

पद्यानुवाद

तिलक बारहवें गुणस्थानान्त में सब का हुआ।
श्रद्धाञ्जली बारह मिली बारह तिलक में यह हुआ ॥ २९ ॥

ऐसा क्यों कहते हो ?

जो मैं कियो सो तुम कियो। जो तुम कियो सो प्रमाण। काहे ऐसो कहत हो के—तुम काहे ऐसो कियो ? चिदानन्द !! चिदानन्द !!! ॥ २६ ॥

टीका—यन्मया कृतं तत्त्वयाकृतं, यत्त्वयाकृतं तत्प्रमाणं। किमेवं कथयसि रे ! यत्त्वमेवं किं कृतं। चिदानन्द !! चिदानन्द !!! ॥ २६ ॥

काव्य

त्वया कृतं किं एतादृशं च,
त्वमीदृशं किं कथनं करोषि ! ।
हे हे !! चिदानन्द, अहो चिदात्मन् !!!
मयाकृतं यत्त्वं करोषि ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ—जो मैंने किया सो तुमने किया। जो तुमने किया सो प्रमाण है। ऐसा क्यों कहते हो कि तुमने ऐसा क्यों किया ? चिदानन्द !! चिदानन्द !!! (खेद खिन्नता सूचक शब्द हैं) ॥

टीका अर्थ—जो मैंने किया सो तुमने किया। जो तुमने किया सो प्रमाण है। ऐसा क्यों कहते हो कि तुमने क्यों ऐसा किया, चिदानन्द, चिदानन्द ॥ २६ ॥

काव्य अर्थ—तुमने ऐसा क्यों किया ? ऐसा कथन क्यों करते हो ?

हे हे ! चिदानन्द ! अहो चिदात्मन् !! मैंने जो किया वही तो तुम करते हो ॥ ३६ ॥

विशेषार्थ—चौथे अध्याय के समान यहाँ भी शिष्यों की प्रामाणिकता घोषित की गई है।

विरोधियों ने कहा कि आपने ऐसा क्यों कहा ? क्यों किया ? आदि उसका उत्तर स्वामी जी दो बार चिदानन्द का नाम लेकर के दिया। विरोधीदल वस्तु स्वरूप पर आक्रमण करता था अतएव खेद खिन्नता से चिदानन्द का नाम लिया। काहे ऐसो कहत हो के काहे ऐसो कियो चिदानन्द !!! चिदानन्द !!!

पद्यानुवाद

मैंने किया वह आपने भी किया सत्य प्रमाण है।
कुछ कह रहे हैं क्यों किया यह दुख भरा अरमान है॥ ३० ॥

यह साधना सही है

इतनो तो तुम्हारो गुहिनालो सही है। मैं जो कहिऊ
सो तुम कियो। सो प्रमाण॥ २७ ॥

टीका—एतत्त्वयान्तरात्मना गुहिनालयो था गुप्तात्मसाधना कृता सत्या ध्रुवा प्रमाणा सा। यन्मया कथितं तत्त्वया कृतं तत्प्रमाणं ॥ २७ ॥

काव्य

एषा या साधना गुप्ता सत्यास्ति मयोक्ता कृता।
सत्यं ध्रुवं प्रमाणं च वन्देश्री गुरुतारणम्॥ ३७ ॥

सूत्रार्थ—इतना तो तुम्हारा गुप्त आत्म साधन सही है। मैंने जो कहा वही तुमने किया। वह प्रमाण है॥ २७॥

टीका अर्थ—यह तुम्हारे गुप्त अन्तरात्मा की साधना जो तुमने की है। वह सत्य है। ध्रुव है। प्रमाण है। जो मैंने कहा वही तुमने किया। अतएव प्रमाण है॥ २७॥

काव्य अर्थ—यह जो तुम्हारी गुप्त साधना है, वह सत्य है मेरे

द्वारा कही गई ही तुमने की है। अतएव सत्य है। ध्रुव है। प्रमाण है ॥

श्री गुरुतारणतरण को मेरी वन्दना है ॥

विशेषार्थ—अध्याय का अन्तिम सूत्र है। इसमें फिर से शिष्यों की गुप्तात्मसाधना की प्रामाणिकता घोषित की है कि इतनो तो तुम्हारो गुहिनालो (आत्म साधना) सही है प्रमाण है। मैं जो कहिऊ सो तुम कियो। अर्थात् कथनानुसार ही तुमने सब साधन किया है। वह प्रमाण है।

इन सूत्रों से भलीभांति विदित होता है कि श्रीगुरु के श्रीसंघ में क्या होता था ? एक आत्मा की साधना और अनन्त प्रवेश इसके अतिरिक्त वहाँ और कुछ था ही नहीं ॥ २७ ॥

पद्यानुवाद

मेरे कहे अनुसार इतनी साधना सब ठीक है।
मैंने प्रमाण किया सभी कह रहे यह तो ठीक है ॥ ३१ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

ॐ

षष्ठोऽध्यायः

प्रातःकाल की दुन्दुभी

जय जय जय। उत्पन्न जय जय। हितकार जय जय।
सहकार जय जय। उत्पन्न दुन्दुही शब्द ॥ १ ॥

टीका—जयो जयो जयस्त्रिकाले जयवन्तः शुद्धचिद्घनानन्दस्वभावः। उत्पन्न स्वभावो जयो जयवन्तः। हितकारस्वभावो जयो जयवन्तः। सहकारस्वभावो जयो जयवन्तः। उत्पन्नाश्च दुन्दुभि शब्दाः। कुर्वन्तु-धर्मध्यानं सावधानतया ॥ १ ॥

काव्य

जयो जयो जयोत्पन्नो हितकारो जयो जयः।
सहकारो जयवन्तः दुन्दुभेः शब्दं शृणुत ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—जय हो जय हो जय हो। उत्पन्न शुद्ध चैतन्यस्वभाव की जय हो। हितकार स्वभाव की जय हो। सहकार स्वभाव की जय हो। सावधान, दुन्दुभि बज रही है ॥ १ ॥

टीका अर्थ—त्रिकाल जयवन्त शुद्ध चिद्घनानन्द स्वभाव की जय जय जय हो। उत्पन्न शुद्ध स्वभाव की जय हो वह जयवन्त हो। हितकार स्वभाव जय जयवन्त हो। सहकार स्वभाव जय जयवन्त हो। दुन्दुभि शब्द उत्पन्न हुये। सावधान हो धर्मध्यान करो ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—जय जय जय। उत्पन्न हितकार सहकार स्वभाव की जय हो। दुन्दुभी के शब्दों को सुनो सावधान होओ ॥ १ ॥

विशेषार्थ—प्रातःकाल का समय है। ध्यान सामायिक आदि से निश्चिन्त हो, प्रातःकालीन देशना के लिये श्रीसंघ को एकत्रित करनेवाली दुन्दुभी के शब्द हो रहे हैं। साथ ही जय जयकार का मंगल स्वरूप कीर्तन हो रहा है, जय जय जय। शुद्धात्म स्वस्वभाव जयवन्त हो, जयवन्त हो।

हितकार-सहकार-स्वामी तारणतरण जयवन्त हों। आगे के सूत्र में सभी को बुला रहे हैं ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

उत्पन्न जय, हितकार जय, सहकार जय, जय जय जय।
चलिये बजी यह दुन्दुभी सुनिये स्वरूपाचरण जय ॥ १ ॥

आओ रे भाई !!!

पटोहें ऊपर जु बैठे हुँहि सो कौन समय आवहि।
आवहु रे भाई! आवहु! प्रभात ही बुलावहु। को
सो कलनावती ही बुलावहु ॥ २ ॥

टीका—अट्टालिकायामुपरितिष्ठन्ति ये ते आगमिष्यन्ति कदा! आगम्यताम्! हे बन्धव! आगम्यताम्! प्रभाते प्रातःकाले एव आमंत्रयतु। का सा कलनावतीमपि शीघ्रमेवामन्त्रयतु ॥ २ ॥

काव्य

अट्टालिकायां तिष्ठन्ति के के,
अत्रागमिष्यन्ति कदा हि ते ते।
आगम्यतां रे! सर्वे हि सत्वरं,
चिदात्मना लेहु चिदात्मनं रसम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थ—पटोमा या अटारियों पर जो बैठे हैं, वे किस समय आवेंगे! आओ रे भाई! आओ! प्रातःकाल ही सबको बुलाओ! कौन! वह कलनावती को भी बुलाओ !!! ॥ २ ॥

टीका अर्थ—अटारियों पर जो बैठे हैं, वे कब आवेंगे? आओ, हे बन्धुओ! आओ! प्रातःकाल ही बुलाओ। कौन वह! कलनावती को भी बुलाओ ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—अटारी पर कौन-कौन बैठे हैं। वे यहाँ कब आवेंगे। आओ रे भाई! सब ही शीघ्र आओ!! अपनी आत्मा के द्वारा आत्मा का रस लेओ ॥ २ ॥

विशेषार्थ—पटोहों पर, छतों पर, अटारियों पर जो जो बैठे हैं, वे कब आवेंगे। आओ रे भाई ! आओ प्रभात ही, अभी सबेरे सबेरे ही सबको बुलाओ। कौन कौन को बुलाना है! सो कलनावती को भी बुलाओ ! कौन-कौन आ गये। यह ब्राह्म मुहूर्त की आत्म चर्चा का समय है।

श्री गुरुदेव के बहुमूल्य प्रवचन विद्वान् शिष्यों की सभा में होते थे। कलनावती जी बहुत ही विदुषी साध्वी थीं। उन्हें श्रीसंघ में गणधर कलनावती जी कहा जाता था। उन्हें भी सूत्र में बुलाने को कहा गया है। समस्त शिष्यों के बीच अब स्वामी जी आत्म स्वभाव का सन्देश देंगे ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

कब आयेंगे छत पर अटारी पर जु बैठे हैं अभी।
यह सबेरा है बुलाओ आयें कलनावती भी ॥ २ ॥

विप्तरञ्ज का पुण्योदय

अनन्त उत्पन्न प्रवेश तिलक। तीन जय जय जय।
प्रवेश प्रसाद। विप्त रंजवारे लहु की कमाई आगे
आई। नो उत्पन्न अंकुर वरसाए ॥ ३ ॥

टीका—अनन्तोत्पन्नप्रवेशतिलकं पश्य। त्रिकाल जयवन्तः। चिन्मात्र-स्वरूपे प्रवेशको देशनाप्रसादाधिकारी विप्तरञ्जस्तत्सम्बन्धिपूर्वपुण्योदय आगतः। सूक्ष्मस्वरूपस्योदयमविनाभावि चिन्हं पश्यामि। अन्तर्बाह्य-प्रशमता संवेगतानुकंपास्तिक्यादि चिन्हचिन्हित चेष्टां, शान्तमुखमुद्रां वा पश्यामि सम्यक्त्वचिन्हम् ॥ ३ ॥

काव्य

अनन्तोत्पन्नः प्रवेशो विप्तरञ्ज पुण्योदयः।
प्रसादं तिलकं प्राप्तं सूक्ष्मभाव प्रवर्तकः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—अनन्त के उदय का प्रवेश तिलक है। त्रिकाल जयवन्त है। प्रवेश का प्रसाद है। दिप्तरञ्ज को थोड़ी सी पुण्य की कमाई उसके आगे

आगई। सूक्ष्म भाव के प्रगट हुये अंकूर (चिन्ह) बाह्य में भी दर्श रहे हैं ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—अनन्त उत्पन्न के प्रवेश तिलक को देखो। वह त्रिकाल जयवन्त है। चिन्मात्र स्वरूप में प्रवेश करने वाला, देशना के प्रसाद का अधिकारी दिप्तरंज है। उसका पूर्व पुण्योदय आया। उसके सूक्ष्म स्वभाव के अविनाभावी चिन्ह देखता हूँ। भीतर-बाहर प्रशमता की झलक। संवेग भाव। अनुकम्पा और आस्तिक्यतादि चिन्ह-चिन्हित चेष्टा को, शान्त मुखमुद्रा को देखता हूँ, ये सम्यक्त्व के चिन्ह हैं ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—अनन्त उत्पन्न प्रवेश स्वरूप दिप्तरंज का पुण्योदय है। वह सूक्ष्मभाव का प्रदर्शक है। उसने प्रसाद और तिलक को प्राप्त किया है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—अनन्त उत्पन्न स्वभाव का तिलक प्रस्तुत है। त्रिकाल जयवन्त स्वभाव का प्रसाद प्रस्तुत है। यह तिलक और प्रसाद श्रीदिप्तरंज जी को दिया जा रहा है। उनकी पुण्य की कमाई अब आगे आई है। और इनके सूक्ष्म विचार भी स्वामी जी ने देखे हैं। इनके अन्तरात्मसाधना के सूक्ष्मध्यान के अंकूर दरसने लगे हैं। ये दिप्तरंज हैं जिनको ५०० मनः-पर्ययज्ञानियों के संसर्ग में मुक्तिपद प्राप्त होगा। सात शिष्यों में ये प्रमुख हैं ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

हे दिप्तरंज सुनो ! बड़े ही पुण्य का संयोग है।
उत्पन्न कर अपने अनन्त स्वभाव का यह योग है ॥ ३ ॥

हुन्तकार-स्वभाव

बहुरि के नो उत्पन्न। हुन्तकार उत्पन्न छह। छह
उत्पन्न हुन्तकार। जय जय जय ॥ ४ ॥

टीका—पुनः पुनश्चोत्पन्नो भवति सूक्ष्मस्वभावः षडोत्पन्नश्च-हुन्तकाराः। जयो जयो जय ॥ ४ ॥

काव्य

पुनश्चोत्पन्नः स्वभावो हुन्तकाराश्च षट् स्वयं ।
जयो जयो जयोत्पन्नः स्वभावः स्वीकृतो मया ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—फिर से उत्पन्न सूक्ष्म स्वभाव, और छह हुन्तकार स्वभाव त्रिकाल जयवन्त स्वरूप हैं ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—फिर फिर से सूक्ष्मस्वभाव उत्पन्न हो रहा है। छह हुन्तकार भी प्रगट हुये। वे जयवन्त हैं ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—फिर से उत्पन्न हुआ सूक्ष्मस्वभाव तथा छह हुन्तकार और जय जयवन्त उत्पन्न मेरा स्वभाव मुझे स्वीकार है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—फिर फिर से सूक्ष्म स्वभाव उत्पन्न हो रहा है। छह हुन्तकार उत्पन्न हुये—दिति, दिप्ति, सर्वांग, आनन्द कोड, अर्क और अर्थ। इस सूत्र में भी दिप्तरंज जी की ही चर्चा है। हुन्तकार उत्पन्न हुये सुनते ही धर्म सभा में जय जयकार हो रहा है, दिप्तरंज जी के आत्मस्वरूप में छह हुन्तकार किस प्रकार उत्पन्न हुये ? इनकी मुखमुद्रा की कान्ति और तेज ये अन्तरंग के प्रशमभाव को झलकाते हैं। सर्वांग आत्म प्रदेशों में और बाह्य में रोमरोम आनन्द कोड प्रसन्नता इनका विनय भाव तथा ३६ अर्कों का ध्यान विचार और स्वपर पदार्थ को हेयोपादेय भेदविज्ञानमूलक बुद्धि आदि से दिप्तरंज का सम्यक्त्व स्पष्ट झलक रहा है। हुन्तकार स्वभाव ज्ञात हो रहे हैं ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

अनुयोग द्वारों से समक्ष में आतमा आता अहो ।
हुन्तकार वही कहाते सूक्ष्मता से जय कहो ॥ ४ ॥

जो अपने हैं उनसे ही कहता हूँ

वेगे होहु। वेगे होहु। वेगे लेहु। यह जिन पद आहि। कहों कौन सों ? आये तो भलई आये।

लेहुरे अब लेहु । अपने ही कों कहों । जिनहिं जान
लेहु ॥ ५ ॥

टीका—झटिति शीघ्रेणवेगेन तत्परो भव । वेगेन तत्परो भव । शीघ्रेण लेहु । जिनपदस्वभावोऽयं । अहं कं कथयामि ? आगतास्तु वरमागताः । लेहुरे ! अधुना लेहु ! स्वजनानेव कथयामि । जिनं लेहु, ज्ञात्वा लेहु ॥ ५ ॥

काव्य

वेगेन वेगेन वेगो हि भव रे !,
त्वं लेहुरे लेहु त्वरा कुरु त्वं ।
स्वदोष जेता स्वविकार जेता,
जिनस्य पदमस्ति स्वयं विजेता ॥ ५ ॥
कथयामि कं रे भव्य वरमस्ति स्वमागतः ।
लेहुरे स्वजनं ददामि जिनं ज्ञात्वा हि लेहुरे ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—शीघ्र होओ ! शीघ्र होओ ! शीघ्र लेवो यह जिनपद है । कहूँ किससे ! आये तो अच्छे आये, लेओ रे, अब लेओ । अपने वालों से ही कहता हूँ कि जिन स्वरूप को जान लो अथवा जानकर ले लो ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—झट से, शीघ्रता से वेग से तत्पर हो जाओ । तैयार हो जाओ । जल्दी तैयार होओ । शीघ्रता से ही लेवो । यह जिनपद है । मैं किससे कहूँ । आये तो अच्छे आये । लेओ रे अब लेवो । अपने जनों को कहता हूँ । जिन स्वरूप को लो । जानकर ले लो ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—जल्दी से, जल्दी से शीघ्रता में हो, तू ले रे ! ले ! जल्दी कर अपने दोषों को जीतने वाला, अपने विकारों को जीतने वाला स्वयं का विजेता यह जिनेन्द्र का पद है ॥ ५ ॥

किससे कहूँ, अच्छा है तुम आये । लेवो, अपने जानकर दे रहा हूँ । जिनपद को जानकर लीजिये ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—अपने जिन स्वभाव को जान लो । जानकर उसे ले लो, ग्रहण कर लो । जितनी वेगी शीघ्रता हो सके उतने शीघ्र इस अपने स्व-

भाव को ग्रहण करो, यह जिनपद है। किससे कहूँ? आप लोग आये तो अच्छे आये। परन्तु ले लो। अब ले लो। अपने समक्ष कर कहता हूँ। जिन स्वभाव को जानो और ले लो, धन्य है स्वामी आपकी धाराप्रवाह जिन स्वरूप की देशना। इसका स्वाद लेकर आप वितरण कर रहे हैं।

पद्यानुवाद

जिनपद यही आना इसे किससे कहूँ आये भले।
अपने समक्ष अपनी सुनाऊँ शीघ्र बन निज में ढले ॥ ५ ॥

अनन्तमहोत्सव

जिन उक्त अनन्त। तीनही लोक अनन्त प्रवेश धरा-
बटके, आरते महोच्छो बहुत आये। अनन्त महोच्छो
उत्पन्न प्रवेश। दयालप्रसाद, अचिन्त्य चिन्तामणि।
अनन्त प्रसाद समय को दियो। सुखेन प्रसाद ॥ ६ ॥

टीका—अनन्तस्वरूपंजिनेन्द्रैः कथितः। तस्मिन्ननन्तेऽनन्तत्रैलोक्योऽपि प्रविशति। स्वशुद्धस्वभावे एतादृशोशक्तिर्विद्यतेऽवकाशदानस्वरूपा ज्ञायका वा या त्रैलोक्यमपि स्वज्ञायकभावे समयेनैकेन जानाति। महोत्सवेऽनेकानेकारतेऽन्यपात्रसंख्यापि आगता। अनन्तस्वभावस्यमहोत्सवं पश्यन्तु प्रारभ्यतेऽत्र। दयालोः प्रसादं अचिन्त्यचिन्तामणि स्वरूपं सम्यक्स्वभावं स्वीकुरु प्रदत्तानन्तसमय प्रसादं। सुखेन स्वसमय प्रसादं गृहाण ॥ ६ ॥

काव्य

अनन्ते हि जिनस्योक्ते प्रविष्टाश्च विभूतयः।
बह्वारतेपात्रयुक्ताः आगतास्ते महोत्सवे ॥ ७ ॥
प्रवेशोत्पन्नं प्रसादमनन्तस्य दयालुना।
समयस्याचिन्त्यं दानं सुखेन स्वीकुरु स्वयं ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—अनन्त को जिनेन्द्र ने कहा है। तीनों लोक अनन्त में प्रवेश पाते हैं, जाने जाते हैं। धरा कटोरा आरते महोत्सव में बहुत आये हैं।

अनन्त महोत्सव प्रगट हो रहा है। यह परम दयालु का प्रसाद है। अचिन्त्य चिन्तामणि के समान है। अनन्त प्रसाद तो शुद्धात्मस्वभाव समय का दिया, सुख स्वरूप सुखदायक प्रसाद को प्राप्त करो ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—जिनेन्द्र ने अनन्त स्वरूप का कथन किया है। उस अनन्त में अनन्त तीन लोक भी प्रवेश पा सकते हैं। अपने शुद्ध ज्ञान स्वभाव में ऐसी शक्ति अवकाश दान रूप है जो अनन्त तीन लोक को भी अपने ज्ञायक भाव में एक समय के भीतर जानती है। महोत्सव में अनेक आरते, अनेक पात्र आये। अनन्त स्वभाव का महोत्सव प्रगट हो रहा है। प्रवेश हो रहा है। दयालु गुरुदेव का यह प्रसाद अचिन्त्य चिन्तामणि है, इस सम्यक्त्व प्रसाद को स्वीकार करो। यह अनन्त प्रसाद शुद्धात्म स्वभाव समय का है। श्रीगुरु ने दिया है। सुखदायक सुखस्वरूप इस प्रसाद को सुख से ग्रहण करो ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—जिनेन्द्र के द्वारा कथित इस अनन्त में समस्त विभूतियाँ प्रविष्ट होती हैं। बहुत आरते और अनेक पात्र सहित इस महोत्सव में सब आये ॥ ७ ॥

दयालु के इस दान को, प्रवेशोत्पन्न प्रसाद को समय का अचिन्त्य दान समझ कर स्वीकार करो ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—अनन्त स्वभाव के महोत्सव में अनन्त दिप्त के आरते होते हैं। आज भी नन्तदिपत जू को आरतो पढ़ा जाता है। अनन्त महोत्सव का वर्णन है। अनन्त का प्रसाद दिया है। यह प्रसाद सबको सुखी करे। यह आशीर्वाद है।

मंदिरविधि में आरते लेकर जो वाणी जी चलाई जाती हैं वह व्यवहार का अनन्त महोत्सव है।

पद्यानुवाद

जैसे यहाँ बाहर महोत्सव हो रहा जिन उक्त का।
वैसे करो भीतर प्रकाश अनन्त पद है मुक्त का ॥ ६ ॥

महोत्सव में आगन्तुकों की संख्या

पाछो पुरुष छयानवे, श्री अडतालसा । और श्री
पुरुष गुहिनाले । अनन्त आरते सर्व ले आये । कोड
महोच्छो करत आये । अनन्त महोच्छो कियो ।
अनन्त आयरण आगौनी के लिये । उत्पन्न कोड
महोच्छो । आनन्दके तिलक बाहुडे ॥ ७ ॥

टीका—पश्चात्पुरुषाणां संख्या षण्णवतिः स्त्रीणां च अष्टचत्वारिंश-त्प्रमिता आगता । सर्वे स्त्रीपुरुषा गुप्तसाधकाः सम्यग्दृष्टयः सर्वानन्तारते आनीताः आनन्दमहोत्सवं च कुर्वाणः सर्वे आगताः । कृताः आनन्त-महोत्सवं । अनन्तारते आयरणागमनीप्रीत्यर्थमानन्दमहोत्सवोत्पन्नः । आनन्द तिलकस्तु पुनरप्यागच्छतु ॥ ७ ॥

काव्य

पश्चादागताः पुरुषाः षण्णवतिः संख्यामिता ।
अष्टचत्वारिंशत्संख्या स्त्रीणां सोत्सवा गता ॥ ९ ॥
आयरणागमनी सा, उत्सवानन्द दायिका ।
पुनरागतस्तिलको भूयादेवं पुनः पुनः ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—तत्पश्चात् छयानवे पुरुष और अड़तालीस श्री । और श्रीपुरुष सम्यग्दृष्टि साधक अनन्त आरते सर्व लेकर आये । आनन्द महोत्सव करते हुये आये । अनन्त महोत्सव किया । उत्पन्न आयरण आगौनी के लिये यह आनन्द महोत्सव उत्पन्न हुआ है। आनन्द स्वरूप के ये तिलक फिर फिर से लौटकर आवें ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—पश्चात् पुरुषों की संख्या ९६ और स्त्रियों की संख्या ४८ प्रमाण सब आये । सर्व स्त्रीपुरुष साधक सम्यग्दृष्टि अनन्त आरते लाये, आनन्द महोत्सव करते हुये आये । अनन्त महोत्सव किया । उत्पन्न आयरण स्वरूपाचरण की अगौनी के लिये आज यह आनन्द महोत्सव

उत्पन्न हुआ। आनन्द स्वरूप के तिलक फिर फिर से लौटकर आये। और आवें ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—पश्चात् ९६ पुरुष और ४८ स्त्रियाँ, उत्सव सहित सब आये ॥ ९ ॥

उत्सव और आनन्द को देने वाली वह स्वरूपाचरण की आयरण आगौनी है। फिर से यह तिलक महोत्सव प्राप्त हुआ है। पुनः पुनः ऐसा ही हो ॥ १० ॥

विशेषार्थ—तिलक प्रतिष्ठा का महोत्सव है। पश्चात् ९६ पुरुष, ४८ महिलायें आईं। ये सभी आत्मस्वरूप के साधक स्त्री और पुरुष हैं। इन्होंने अनन्त आरते सर्व अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग के सभी आरते लाये। बड़ा भारी महोत्सव करते हुये आये। अनन्त का महोत्सव किया। स्वरूपाचरण की आगौनी के लिये यह महा महोत्सव हुआ। ये आनन्द के तिलक बड़े भाग्य से प्राप्त हैं, बाहुड़े हैं और पुनः पुनः प्राप्त होते रहें ॥७॥

पद्यानुवाद

करते हुये उत्सव अनेकों आ रहे नर-नारियाँ।
"जिन-ज्योति" को करतीं प्रगट ये आरतों की थारियाँ ॥ ७ ॥

तिलक महोत्सव

और दूसरे पुरुष आये छयानवे स्त्री अडतालीस, गुहिनाले अनन्त। सापी तीन ले आये। आरते-अनन्त कोड़ करत सर्वन्य दुन्दुही शब्द उत्पन्न। अनन्त गुण उच्चारत आये। आगौनी के लिये महोच्छौ होन लागो। उत्पन्न आसन सिंहासन बैठारे। आरते तिलक महोच्छौ अनन्त कोड़ के बाहुड़े। आठें शुक्रवार सहज तिलक उत्पन्न। उत्पन्न प्रवेश ॥ ८ ॥

टीका—पुनरपिचान्ये पुरुषा आगता षण्णवतिः। स्त्रीणां संख्याष्ट-

चत्वारिंशत्प्रमाणा। सर्वे स्त्री-पुरुषाश्चगुप्तात्मसाधकाः सम्यग्दृष्टयः। त्रिसापी आनीता। सानन्तारतेमहोत्सवानन्दसहितागताः। सर्वत्र सर्वज्ञ-शासनदुन्दुभिशब्दा उत्पन्नाः। अनन्त गुणोच्चारणसंयुक्ता आगताः। आगमनी प्रीत्यर्थं महोत्सवभावाः भवन्ति। आसनसिंहासनमानीतं च तदुपरिविराजमान शोभायमानकृताः श्रीगुरुदेवं। आरते तिलकमहोत्सवानन्तानन्दस्वरूपश्च प्रत्यागतस्तिलकः। अष्टमि शुक्रवासरे सहज तिलकोत्पन्न महोत्सवः। उत्पन्न प्रवेशश्च रुइयाजिनादिप्रमुखशिष्याणां-समुदायो महोत्सवे। तेषां नामावली तु सूत्रेऽग्रे पश्यन्तु भवन्तः ॥ ८ ॥

काव्य

अन्येऽप्यागताः पुरुषाः षण्णवतिः संख्यामिताः।
अष्टचत्वारिंशत्संख्या स्त्रीणां सोत्सवा गता ॥ ११ ॥
अष्टम्यां शुक्रवारे च तिलकोत्पन्न साहजः।
प्रत्यागतस्तिलकश्च भूयादेवं पुनः पुनः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—और दूसरे पुरुष आये छ्यानवे। स्त्री ४८। ये सब साधना सम्पन्न हैं। अनन्त सापी तीन लाये, अनन्त आरते आनन्द कोड करते हुये आये। सर्वज्ञशासन की दुन्दुभी के शब्द सर्वत्र उत्पन्न हुये। अनन्त गुण उच्चारते हुये आये। आगौनी के लिये महोत्सव होने लगा। आसन सिंहासन प्रगट हुये। उनपर बैठारे। आरते तिलक महोत्सव अनन्त कोड के बहुरे। आठें शुक्रवार को सहज तिलक उत्पन्न हुआ। इस उत्सव में रुइयाजिन और कमलावती जी के साथ जो प्रमुख समुदाय आया, उसकी नामावली आगे के सूत्र में है ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—और फिर से अन्य पुरुष छ्यानवें तथा स्त्रियाँ ४८ आईं। सर्व स्त्री पुरुष आत्मसाधक वा सम्यग्दृष्टि हैं। अनन्त सापी तीन लाये। अनन्त आरते महोत्सव सहित आये। सर्वज्ञ शासन की दुन्दुभी के शब्द उत्पन्न हुये। अनन्त गुण उच्चारते आये। आगौनी के लिये उत्सव होने लगा, आसन सिंहासन पर श्रीगुरुमहाराज को विराज किया। यह

आरते महोत्सव तिलक का आनन्द स्वरूप फिर से प्राप्त हुआ है। रइया-जिनादि सहित जो प्रमुख शिष्य समूह आया उसकी नामावली आगे के सूत्र में है ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—अन्य और पुरुष ९६ तथा स्त्रियाँ ४८ आये। अष्टमी तिथि शुक्रवार दिन को यह सहज तिलक महोत्सव सम्पन्न हुआ। यह तिलक फिर से प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार पुनः पुनः फिर से प्राप्त होवे ॥ ११-१२ ॥

विशेषार्थ—यहाँ पर भी वही तिलक महोत्सव का वर्णन चल रहा है। उतने ही स्त्री-पुरुष फिर आये। अनन्त के साधक ये भी हैं। तीन सापी पहिराउन लेकर आये हैं। अनन्त आरते सहित नृत्य महोत्सव करते आये। सर्वज्ञ स्वभाव की दुन्दुभी के शब्द करते आये। अनन्त स्वभाव के गुण उच्चारण करते आये। आगौनी के लिये महोत्सव होने लगा। आसन सिंहासन तखत वगैरह सब लगाये गये। स्वामी जी को विराजमान किया। वाणी जी को विराजमान किया। आरते तिलक महोत्सव अनन्त स्वरूप के ये उत्सव बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुये हैं। अष्टमी दिन शुक्रवार को सहज तिलक समाप्ति का महोत्सव रखा है। और वह आज ही हो रहा है ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

करते हुये उत्सव अनेकों आ रहे गुणगान से।
स्वागत महोत्सव तिलक उत्सव हो रहे निजभान से ॥ ८ ॥

तिलक महोत्सव में प्रमुख शिष्य समुदाय

उत्पन्न प्रवेश कमलावती रइयाजिन। विधि—अगम जिन। रयन जिन। विगसरंज। सुवनावती। भक्तावती। रमणावती। रूपचंद। उक्तावती। विप्त-श्री। पंथीपश गैयत। विगसावती। अतुलावती। गुप्तकुमार। खिपक रूपा। उलहस रूपा। हियरंज रूव। जैनावती। गौर व हंसावती बाई। भक्तो।

अलाहो। खेमा। अगमी। धनकुमार अश्वपति। लवन रंज। तेज श्री। विप्तरंज। पिरमल। ठाकुरसी। कनक श्री। अभया। पुहपा सिंघैनी। पल्हुवा खेमल। ममल श्री। गुप्त श्री। विप्तरंज की श्री। हंसा पजनु। इन्द्र। विमल को बिटिया जैना। खेमा। जिन रंज। लवनकी श्री। खेमल की बहू। देवराज को बेटा। अभय को भैया। अभय की श्री। अरहु वास। मदन दादू की श्री। रमन की श्री। अरहदास की श्री। मदनी। दास मोहन। अरहु को बेटो। पुहपा। भीखम। मिलन। रूपचन्द की श्री। खेमल की श्री। हंससुत शाहकुमार नरपति ॥ ९ ॥

टीका—आगताश्च ये तिलकमहोत्सवे तेषां नामावली लिखिता सूत्रे। प्रमुखशिष्याणां समुदायोऽयम्। सर्वेषां प्रमुखाश्च रुइयाजिन कमलावती ॥ ९ ॥

काव्य

निजात्म साधना युक्ताः सम्यक्त्व सहिताश्च ते।
श्रीतारणतरणस्य शिष्याः मुक्तिगामिनः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—तिलक महोत्सव में आये श्री रुइयाजिन और कमलावती जी के साथ प्रमुख शिष्यों का समुदाय है। इन सबकी उपस्थिति में तिलक महोत्सव सम्पन्न हुआ। विधिवार नामावली निम्न प्रकार है ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—तिलक महोत्सव में आये हुये शिष्यों की नामावली सूत्र में लिखी गई है। वह इस प्रकार है—

नामावली—१. श्री कमलावती २. रुइयाजिन ३. अगमजिन ४. रयनजिन ५. विगसरंज ६. सुवनावती ७. भक्तावती ८. रमणावती ९. रूपचन्द १०. उक्तावती ११. दिप्तश्री १२. पंश्री धनगैवत १३. विगसावती १४. अतुलावती १५. गुप्तकुमार १६. सिपक रूवा १७. उल्हस रूवा

१८. ह्नियरंज स्व १९. जैनावती २०. हंसामती २१. मक्ती २२. अलाहो २३. खेमा २४. अगमी २५. धनकुमार अश्वपति २६. लवनरञ्ज २७. तेजश्री २८. दिप्तरञ्ज २९. पिरमल ३०. ठाकुरसी ३१. कनकश्री ३२. असया ३३. पहुपा सिंघैनी ३४. पल्हुवा खेमल ३५. ममलश्री ३६. गुप्तश्री ३७. दिप्तरंज की श्री ३८. हंसापजनू ३९. इन्द्र ४०. विमल की बिटिया जैना ४१. खेमा ४२. जिनरंज ४३. लवन की श्री ४४. खेमल की बहू ४५. देवराज को बेटा ४६. अभैको भैया ४७. अभै-की श्री ४८. अरहदास ४९. मदन दादू की श्री ५०. रमन की श्री ५१. अरहदास की श्री ५२. मदनी ५३. दास मोहन ५४. अरहु की बेटी ५५. पुहपा ५६. भीखम ५७. मिलन ५८. रूपचन्द की श्री ५९. खेमल की श्री ६०. हंससुत शाहकुमार नरपति ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—निजात्म साधना सहित, सम्यक्त्व युक्त, वे सब तारण-तरण के शिष्य मुक्तिगामी हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—कितना आनन्द का समय होगा, तिलक महोत्सव में जहाँ गुरुदेव और उनके ६० प्रमुख शिष्य तथा शिष्याएँ उपस्थित हैं। बड़े-बड़े शिष्यों के नाम हैं। अब और भी सर्व साधारण जन कौन कौन आये होंगे? कितने आये होंगे? इसका ज्ञान श्री नाममाला जी ग्रन्थराज से होगा। इस ग्रन्थ की टीका भी हो चुकी है ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

कमलावती रुइयारमण के साथ जो जो है यहाँ।
शुभनाम उनके सूत्र में पढ़िये! महोत्सव है कहाँ ॥ ९ ॥

आत्मा का वैभव आत्मा के भीतर है

जय सुन्न समाधि। उत्पन्न शाह। हुन्तकार तीन। स्वयं स्वयं स्वयं। सहजोत्पन्न। सहजोपपुनीत। सह शाह लब्ध भवति। यह मोरो को आंहु रे! प्रिय आरते किये। तिलक रुइया जिनको नाथ बार तीन

लियो। स्वामीजू की बड्ड बार रहति हुई। अरु असबाबु आभ्यन्तर रहति हुई। विगस पेखि यो स्वामीजू त्रैलोक्यनाथ। अनन्तप्रवेशी अचिन्त्य-चिन्तामणि। भयशल्य शंक अनन्त विलो। अनन्त बाधा विलो ॥ १० ॥

टीका—अयस्वरूपा शून्यसमाधिः। उत्पन्नशाहस्वरूपः, त्रिहुन्त-कारः स्वयं स्वयं स्वयं। सहजोत्पन्नः स्वरूपः सहजोपनीतः। सहशाह-लब्धिर्भवति स्वभावे। कोऽयं रे मम प्रिय आरते कृतः। रुइयाजिनस्तिलक-स्तेषां नामत्रिवारमुच्चारयन्ति। स्वामीनाम षड्वारोच्चारणं कुर्वन्ति सर्वे। वैभवसामग्रीतु चित्स्वरूपे आभ्यन्तरे विद्यमानास्ति। प्रसन्नः सन् प्रेक्षणं करोति, स्वामी श्रीत्रैलोक्यनाथानन्तप्रवेशं। अचिन्त्यचिन्तामणि, भयं शल्यं शंकां विलयीकृतमनन्तम्। अनन्तबाधा विलया ॥ १० ॥

काव्य

शून्या-समाधि संयुक्तः सह शाहश्च साहजः।
ते मदीयाश्च रुइयाजिनो वा कमलावतो ॥ १४ ॥
भय शल्य शंकादीना विलयं च स्वभावतः।
बाधानन्ताश्च नश्यन्ति सानन्दे स्वात्मनि स्वयं ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—शून्य समाधि जयवन्त हो। शुद्धात्मा शाह का उदय हुआ। हुन्तकार तीन स्वयं स्वयं स्वयं हैं। सहजोत्पन्न है। सहजोपनीत है। सह शाह लब्धि होती है। यह मेरा कौन है रे! प्रिय आरते किये। तिलक रुइयाजिन का नाम तीन बार लिया। स्वामी जी का नाम छह बार लिया जाता है। और वैभव सामग्री तो भीतर रहती है। प्रसन्न होकर देखते हैं। स्वामी त्रैलोक्यनाथ अनन्तप्रवेशी हैं। अचिन्त्य चिन्तामणि हैं। भय शल्य शंका अनन्त विलीयमान हैं। अनन्त बाधाविलय है ॥ १० ॥

टीका अर्थ—जय स्वरूपा शून्य समाधि है। आत्म स्वरूप शाह का उदय है। तीन हुन्तकार त्रिकाल स्वयं रूप हैं। सहज उत्पन्न, सहज प्राप्त, सहशाह लब्धि आत्मा में प्रगट है। कौन है रे मेरा यह जो बड़े ही प्रिय

आरते कर रहा है। रुइयाजिन तिलक हैं उनका नाम तीन बार लिया जाता है। स्वामी जी का नाम छह बार लिया जाता है। आत्मा का वैभव आत्मा के भीतर है। प्रसन्न होकर देखते हैं स्वामी श्री त्रैलोक्यनाथ के अनन्त प्रवेश को देखते हैं वह अचिन्त्यचिन्तामणि हैं। अनन्त भय शल्य शंका विलय किये। अनन्त बाधा विलय हुई ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—शून्यसमाधि सहित, सहशाह, सहज स्वरूप रुइयाजिन और कमलावती आदि ये सब मेरे हैं ॥ १४ ॥

भय शल्य शंकादि का विलय स्वभाव से होता है। अनन्त बाधायें स्वयं नाश होती हैं। अनन्त आत्मा में स्वयं रमण करने से भयादि स्वयं नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—जयवन्त शून्य समाधि में क्या-क्या होता है। शून्य समाधि में अपने शाह के दर्शन होते हैं अपना शाह शून्य समाधि में उत्पन्न होता है। प्रगट होता है। इस शून्य स्थिति में अपना भाव स्वयं में स्वयं स्वीकृत है। सहज स्वभाव उत्पन्न होता है। सहज स्वभाव का सान्निध्य प्रगट होता है। अपने स्वभाव में सह शाहलब्धि स्वभाव का उदय होता है जिससे कि तीर्थंकरादि शाह पद प्रगट होते हैं। ऐसी यह शून्य समाधि है। और आत्मा का वास्तविक वैभव तो आत्मा के भीतर रहता है। देखो, प्रफुल्लित होकर के अपने स्वामी त्रैलोक्यनाथ अनन्त के स्वरूप में प्रवेश करो। वह अचिन्त्यचिन्तामणि स्वभाव है। उस स्वभाव के आश्रय से ही भय शल्य शंकादि अनन्त विलीयमान होते हैं। अनन्त बाधाएँ विलय जाती हैं ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

यह कौन है मेरा बहुत अच्छे किये हैं आरते।
हम तो समाधो शून्य में भीतर करेंगे आरते ॥ १० ॥

हमारा संसार छुड़ाओ

उत्पन्न प्रवेश जिन। तारणतरण समर्थ जिन।
जिनपाये। चितप्रगटके न कही। परोक्षके ओ

कहिये। जय जय मिलिहो जैनमती। रयण तीन।
जय जय जय। संसार तो आवहि जाहि रे। हम
संसार छुड़ावहु। कमलावती! यह इष्ट बहत्तरा है।
यहा बुलाये आवहिं जाहिं ॥ ११ ॥

टीका—उत्पन्नस्वभावेसम्यक्त्वे प्रवेशे सति जिनसंज्ञोत्पन्ना भवति। तारणतरणसामर्थ्यसंयुक्तो जिनस्तारणतरणस्वामी। तं जिनं प्राप्तोऽहं। प्रगटरूपेण न कथिता गुप्तचित्त वार्ता, परोक्षे कथयंति। जय जयवन्तो जैनमतावलम्बिनो मिलिताः। जयजयजयवन्तो रत्नत्रयस्वरूपः। संसार-स्वभावस्तु आवागमन स्वरूपं। मम जन्ममरणसंसारं नाशयतु। ददातु मुक्ति स्वामीतारणतरणदेवः ॥ ११ ॥

काव्य

जिनोत्पन्ने प्रविष्टः स्यात्तारणस्तरणो जिनः।
जिनं समर्थं प्राप्तं च वन्दे श्रीगुरुतारणम् ॥ १६ ॥

स्पष्टं न कथयसि समक्ष स्वरूप रूपम्,
त्वं किं परोक्ष कथनं मथनं करोषि।
जैना जिनानुमति सम्मतभाव भव्याः,
अत्रागताः सुमिलिताः रत्नत्रयी जयः ॥ १७ ॥
आगमिष्यति संसारो गमिष्यति सदैव हि।
मम संसारं मुक्त्वा च, मुक्तिभावं ददातु मे ॥ १८ ॥
आमंत्रिताः सर्वेऽप्यत्र आवागमन संयुताः।
इष्टो बहत्तरा कालो त्वं शृणु! कमलावती! ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ—उत्पन्न स्वरूप में प्रविष्ट ही जिन है। तारणतरण समर्थ जिन हैं। ऐसे जिन पाये। गुप्तचित्त की बात प्रगट रूप में नहीं कहते। परोक्ष में जो कहते हो। जय हो जय हो मिले हो जैनमतावम्बी जैनमती। रत्नत्रय त्रिकाल जयवन्त हों। संसार तो आवेगा जावेगा ही। हमारा

संसार छुड़ाओ। हे कमलावती ! यह इष्ट बहत्तरा है, (हुण्डावसर्पिणी है।) यहाँ बुलाने से ही, प्रेरणा से ही आवेंगे जावेंगे ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—आत्मा के उत्पन्न स्वभाव में, सम्यक्त्व में प्रवेश होने पर ही जिनसंज्ञा होती है। तारणतरण सार्थक सामर्थ्य संयुक्त जिन तारण-तरण स्वामी हैं, ऐसे जिन को मैंने प्राप्त किया है। प्रगट रूप में नहीं कहते परोक्ष में कहते हो ! जयवन्त जैनमती मिले हैं, रत्नत्रय स्वरूप जयवन्त हो। संसार तो आवेगा, जावेगा। हमारा संसार छुड़ाओ। मुक्ति दीजिये। हे कमलावती ! यह इष्ट बहत्तरा का समय है। यहाँ बुलाने पर ही आवेंगे जावेंगे, कल्याण में लगेंगे ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—आत्मस्वरूप में प्रविष्ट तथा तारण और तरण स्वरूप जिन होते हैं। तारणतरण समर्थ जिनस्वामी श्रीगुरु को हमने प्राप्त किया है, उन्हें वन्दना हो ॥ १६ ॥

अपने मन की बात को स्पष्ट क्यों नहीं कहते हो। परोक्ष में क्यों कथन-मथन करते हो। जिनानुमति समस्त जैनमती मिले हैं। इनके भव्य भाव हैं। वे यहाँ आये हैं। रत्नत्रय स्वभाव जय जयवंत हो ॥ १७ ॥

आवेगा और जावेगा, यह संसार सदैव ऐसा ही बना रहेगा। हमारा संसार शीघ्र ही छुड़ाओ ॥ १८ ॥

यहाँ पर सभी बुलाये हुये ही आने जाने वाले हैं। हे कमलावती ! यह हुण्डावसर्पिणी का पंचम काल है ॥ १९ ॥

विशेषार्थ—शिष्यों की ओर से गुरुदेव के गुणगान और प्रार्थना की जा रही है। उत्पन्न जिनस्वामी आ रहे हैं। प्रवेश कर रहे हैं। गुरुदेव तारणतरण समर्थ जिन पधारे हैं। बड़े भाग्य से ऐसे जिन पाये हैं। प्रगट रूप में नहीं कहते, परोक्ष में कहते हो। जयवंत हो ये जैनमत के भव्य मिल रहे हैं। तीन रत्न जयवंत हों। यह संसार ऐसा ही परिवर्तनशील रहेगा। आवेगा। जावेगा। हे स्वामी, हमारा संसार छुड़ाइये। यह तो हुण्डावसर्पिणी का पंचम काल है। यहाँ पर प्रेरणा करने पर ही जीव कल्याण के मार्ग पर लगेंगे ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

गुरुदेव श्री आये सभा में धन्य जयध्वनि छा गई ।
संसार से हमको छुड़ाओ देशना यह भा गई ॥ ११ ॥

ये चारों दरवाजे बन्द करो

ए दरवाजे दिवावहु । निज हेर बैठो । नाहिं तो रार कीजे । अब का है रे ! ऐसो उत्पन्न । आयरण जय । आराध्य जय । आलाप जय । उत्पन्न जय । हितकार जय । सहकार जय । उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ । अनन्त प्रवेशी । अचिन्त्यचिन्तामणि । अनन्त जय जय जय ॥ १२ ॥

टीका—एतानिचत्वारि द्वाराणि दातव्यानि । कर्मास्रव प्रवेश द्वाराणि मिथ्याविरतिकषाययोगानांभेदरूपाणि चत्वारि सन्ति । प्रभेद-रूपेणेति सप्तपंचाशत्संख्यास्रवद्वाराणि सन्ति तानि दातव्यानि, कैः प्रकारैः दातव्यानि ? गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैश्च दातव्यानि । निजस्वरूपं पश्यन् तिष्ठ । अन्यथा रारं किलकिलं कोलाहलं वा व्यर्थं कुरु । किमस्त्यधुना रे ! एतादृशः शुद्धस्वरूपोत्पन्नः । जयतु आयरणस्वभावः । आराध्यस्वभावो जयतु । आलापस्वभावो जयतु । उत्पन्नो जयः । हितकारो जयः । सहकारो जयः । शुद्धचिद्रूपस्त्रैलोक्य-नाथः स्वभावे उत्पन्नः । अनन्तेप्रविष्टोऽहं । अचिन्त्यचिन्तामणिः । अनन्तस्वरूपो जयतु जयतु जयवंतो भूयादितिभावः ॥ १२ ॥

काव्य

एतानि हि दातव्यानि द्वाराण्याभ्यन्तरे भव ! ।
स्वपश्यन्तिष्ठ त्वं शान्तोऽन्यथा रारा किलकिलं ॥ २० ॥
अधुना किमस्ति शुद्धोदय चित्स्वरूपः,
त्रैलोक्यनाथ मम चिन्मय स्वप्रविष्टः ।
जय जय जयन्ति जिनतारणदेवस्वामी,
प्राप्तिर्भविष्यति कदा जिन संवरो मे ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—ये दरवाजे बन्द करो। अपने आपको देखते हुये भीतर बैठो। नहीं तो रार झगड़ा झंझट या किल-किल करो। अब क्या है रे ! ऐसा उत्पन्न। आयरण जय। आराध्य जय। आलाप जय। उत्पन्न जय। हितकार जय। सहकार जय। त्रैलोक्यनाथ उत्पन्न हुआ। अनन्त में प्रवेश किया। अचिन्त्य चिन्तामणि प्राप्त हुआ। अनन्त त्रिकाल जयवन्त हो॥ १२॥

टीका अर्थ—ये चारों द्वार बन्द करो। कर्मास्रव के प्रवेशद्वार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग हैं। यही चारों भेद—५ मिथ्यात्व १२ अविरति २५ कषाय और १५ योग के प्रभेद से ५७ होते हैं। इनहीं द्वारों को बन्द करना चाहिये। गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र के द्वारा वे सत्तावन द्वार बन्द होते हैं। गुप्ति आदि के भी ५७ ही भेद होते हैं। ये ५७ आस्रव तथा ५७ ही संवर के भेद हैं। निज-स्वरूप को देखते हुये अपने स्वरूप के भीतर बैठो। अन्यथा रार कीजे या किलकिल करो। अब क्या है रे ऐसा शुद्धस्वभाव उत्पन्न हुआ। स्वरूपा-चरण की जय हो। मेरे आराध्य स्वरूप की जय हो। मेरी अन्तर्ध्वनि जयवन्त हो। मेरा उत्पन्न जयवन्त हो, हितकार जयवन्त हो, सहकार जयवन्त हो। शुद्धचिद्रूप त्रैलोक्यनाथ मेरे स्वरूप में उत्पन्न हुआ। मैं अपने अनन्त स्वभाव में प्रविष्ट हुआ। वह मेरा शुद्धस्वभाव अचिन्त्य चिन्तामणि है। अनन्त स्वभाव त्रिकाल जयवन्त है॥ १२॥

काव्य अर्थ—ये द्वार बन्द करके अपने स्वरूप के भीतर हो जाओ। अपना शुद्ध स्वरूप देखते हुये बैठो। तुम शान्त रहो। अन्यथा रार या किलकिल कोलाहल है॥ २०-२१॥

विशेषार्थ—ये दरवाजे बन्द कराओ। आत्मदर्शी गुरुदेव की यह अटपटी वाणी उनके शिष्य ही समझ पाते थे। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ये चारों द्वार आस्रव के हैं। इन्हें बन्द करो। संवर तत्त्व के द्वारा द्वार बन्द करके फिर अपने को हेर बैठो—देखते हुये बैठो। यदि ऐसा

नहीं करोगे तो आस्रव और बन्ध के साथ बड़ी रार होगी। अतएव अपने स्वरूप में बैठो।

देखो अपने स्वरूप में आते ही अब क्या है। ऐसा शुद्धस्वभाव। स्वरूपाचरण जयवन्त हो। आराध्य स्वरूप जयवन्त हो। स्याद्वाद स्वरूप जयवन्त हो। उत्पन्न आत्मा के स्वरूप की जय हो। हितकारी गुरुदेव जयवन्त हों। मुक्ति के सहारे जयवन्त हों। अब त्रैलोक्यनाथ अचिन्त्य चिन्तामणि प्राप्त हुआ। जय हो ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

आस्रवों के द्वार करके बन्द भीतर बैठिये।
अब क्या, सुनो-देखो स्वयं के भाव में ही पैठिये ॥ १२ ॥

शीघ्र ले-लो !!!

जाने तीन पायो। जय सात की विधिलीजहि रे !
वेगे लेहु रे ॥ १३ ॥

टीका—येन स्वभावत्रयः प्राप्तो, दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपं तेन सर्वमेव प्राप्तः। सप्तप्रकृतिजयनोपायं लेहु रे। वेगेन शीघ्रेण लेहु रे ॥ १३ ॥

काव्य

येन रत्नं त्रिप्राप्तो हि सप्तानां विधि लेहुरे।
विभावं जित्वा स्वभावेन सम्यक्त्वमुदयं कुरु ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ—जिन ने तीन पाये। सात को जीतने की विधि—उपाय लीजिये। शीघ्र लीजिये ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—जिसने तीन निज स्वभावों को प्राप्त किया। दर्शन-ज्ञानचारित्र को पा लिया तो सब पा लिया। इन्हें पाने के लिये पहिले सात को जीतने का उपाय ले लो। शीघ्र ले लो ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—जिसने तीन रत्न पाये, उसने सब पा लिया। सात के जय की विधि लीजिये। विभावों की विजय करके सम्यक्त्व को प्रगट करो ॥ २२ ॥

विशेषार्थ—सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है। अथवा आयरण, आराध्य और आलाप को जिन्होंने पाया है। उन्होंने सब कुछ पा लिया। इस मार्ग पर जाने के लिये सात प्रकृतियों को जीतो, उनका उपाय ले लो। शीघ्रता से ले लो। तीन मिथ्यात्व और चार अनन्त कषाय ये सात हैं, यह मनुष्य की पर्याय अब नहीं मिलेगी इससे वेगे कहाँ और प्रत्येक सूत्र में शीघ्र ले लो का यही करुणा का भाव श्रीगुरुदेव का है ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

निज ब्रह्म के गुण तीन पाये जीत लो अब सात को।
लेहु रे अब दूर कर अज्ञानता की रात को ॥ १३ ॥

छह सौ बहत्तर उपयोग

छह सौ बहत्तर जे पयोग। पयोग पयोग एक एक स्वभाव साठ। एक एक पयोग प्रति सहस आठ ॥ १४ ॥

टीका—सुमतिज्ञानस्य शतत्रिषट्‌त्रिंशद्भेदाः भवन्ति। एवं प्रकारेणैव कुमतिज्ञानस्यापि सन्ति, मतिज्ञानोपयोगस्य द्विसप्तषट्‌संख्यागर्भितभेदा भवन्ति। एकैकोपयोगं प्रतिस्वभावा षष्ठिः। एकैकोपयोगं प्रति अष्टोत्तरसहस्रसंख्यामेव स्वभावा भवन्ति ॥ १४ ॥

काव्य

सुमित ज्ञानस्य भेदाः शतत्रि षट् च त्रिंशदपि।
कुमतेश्चापि चेत्येतन् भेदाः सूत्रानुसारिणः ॥ २३ ॥
एकैकं प्रति षष्ठिश्च स्वभावास्ते भवन्ति हि।
एकैकोपयोगे भेदाः सहस्राष्टौ प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—छह सौ बहत्तर जो उपयोग हैं। उन उपयोगों के उपयोग उपयोग प्रति एक-एक स्वभाव साठ हैं। तथा एक-एक उपयोग प्रति एक हजार आठ हैं।

टीका अर्थ—सुमतिज्ञान के ३३६ भेद हैं। इसी प्रकार कुमतिज्ञान के भी ३३६ भेद हैं। मतिज्ञानोपयोग के सब ६७२ भेद हैं। एक-एक उपयोग प्रति ६० स्वभाव हैं। एक एक उपयोग प्रति एक हजार आठ भेद हैं।

काव्य अर्थ—जिन सूत्रानुसार सुमतिज्ञान के ३३६ भेद हैं। तथा कुमतिज्ञान के भी ३३६ भेद हैं॥ २३॥

एक एक भेद के प्रति साठ स्वभाव हैं। इसी प्रकार एक एक उपयोग प्रति एक हजार आठ भेद हैं॥ २४॥

विशेषार्थ—सुमतिज्ञान के ३३६ कुमतिज्ञान के ३३६ ऐसे ६७२ मतिज्ञानोपयोग के पूरे भेद हुये। आगे इनके सूक्ष्म भेद और प्रभेद एक एक स्वभाव के साठ साठ भेद फिर किये हैं, तथा एक एक स्वभाव के एक हजार आठ आठ के भेद से फिर भेद और प्रभेद किये हैं॥ १४॥

पद्यानुवाद

मतिज्ञान के सब भेद हैं छहसौ बहत्तर और भी।
उपभेद हैं उपभेद के भी भेद हैं कुछ और भी॥ १४॥

जान-मान-दान

जान मान दान। जान मलयागिरि के प्रवेश मान
श्रवण सुवन स्वभाव। दान उवन स्वयं प्रवेश॥ १५॥

टीका—जानमानदानभेदेन जान त्रिभेद स्वभावः। स्वयं स्वभावे प्रत्येकात्मप्रवेशे स्वात्मनिउवयभावेभरनं दानं। अथवा दानं उवने शुद्ध-स्वभावे स्वयं प्रवेशः। श्रवणसुवनस्वभावो मानं। स्वस्वभावमलयागिरौ प्रविश्य स्वगुणसुरभिसुगन्धिग्रहण स्वभावो जानं॥ १५॥

काव्य

दानं स्वभावे उवन स्वभावः,
मानं च श्रवणं सुवनस्वभावः।
जानं स्वमलये सुरभिः सुगन्धिः,
दानादि भावत्रय भावयेत्॥ २५॥

सूत्रार्थ—जान, मान, दान। मलयागिरि का प्रवेश जान है। श्रवण सुवन स्वभाव मान है। उवन स्वयं प्रवेश दान है॥ १५॥

टीका अर्थ—जान, मान, दान के भेद से जान तीन प्रकार है। स्वयं स्वभाव में, प्रत्येक आत्म प्रदेश में, आत्मा में, अपने उदय रूप होना दान है। श्रवण सुवन स्वभाव मान है। स्वभाव मलयागिरि में प्रवेश करके अपने गुणों की सुरभि सुगन्ध को ग्रहण करने स्वभाव को जान कहते हैं॥ १५॥

काव्य अर्थ—अपने स्वभाव में उदय होने के स्वभाव को दान कहते हैं। श्रवण सुवन (अन्तर्ध्वनि) सुनने का भाव मान है, अपने स्वभाव मलयागिरि में जो सुरभि सुगन्ध है उसे प्राप्त करना जान है॥ २५॥

विशेषार्थ—१. **जान**—अपने स्वरूप के मलयागिरि में जाकर देख अनन्तानुबंधी के चार अजगर तेरे स्वभाव कल्पतरु से लिपटे हैं। मिथ्यात्व का काला नाग फुंकार रहा है। इन सबको निकालकर दूर कर दे, फिर इन्हें भीतर मत जाने देना। तब देखना तेरे मलयागिरि की सुगन्धि से तू स्वयं कितना तृप्त होता है।

२. **मान**—श्रवण सुवन स्वभाव को स्वीकार कर। मानकषाय के वश तूने अभी तक सद्गुरु की बात सुनी नहीं, मानी नहीं। अब सुन। मान। तेरा तो सुवन स्वभाव है। सुवनावती तेरी शक्ति है। इस श्रवण स्वभाव के द्वारा ही तेरी मान्यता बदलेगी।

३. **दान**—उवन स्वयं प्रवेश, यह दान की अद्भुत परिभाषा है, यथार्थ स्वरूप है। अपने शुद्ध स्वभाव में स्वयं का देना दान है। शुद्ध स्वभाव में प्रवेश करना दान है। यही वास्तविक दान है॥ १५॥

पद्यानुवाद

मान श्रवण स्वभाव से, निज को स्वयं का दान दे।
जान मलयागिरि स्वयं स्वामित्व पर तो ध्यान दे॥ १५॥

योग-ध्यान

संजोग जोगध्यान उत्पन्न । जोगध्यान दिन छह ॥ १६ ॥

टीका—सयोगेयोगध्यानस्योत्पत्तिर्भवति । योगध्यान दिन संख्या भविष्यति षडेव केवलीसमये ॥ १६ ॥

काव्य

सयोगे हि योगध्यानं भवतीति भवान्तिमे ।
श्रीतारणतरणस्य योगध्यान दिनानि षट् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—सयोग अवस्था में योगध्यान उत्पन्न होता है । योगध्यान के दिनों की संख्या ६ होगी ॥ १६ ॥

टीका अर्थ—सयोग अवस्था में योगध्यान की उत्पत्ति होती है । तारणतरण केवली की योगध्यान दिन संख्या ६ होगी ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—अन्तिम भव की सयोग अवस्था में ही योगध्यान होता है । श्री तारणतरण के योगध्यान दिन ६ होंगे ॥ २६ ॥

विशेषार्थ—दूसरे अध्याय में तथा आगे भी ग्रन्थ में दो चार बार योगध्यान दिनों की संख्या ६ का स्मरण किया है । वह निर्विकल्प अवस्था कब प्राप्त होगी, इस भावना से स्मरण बार-बार किया जा रहा है । योगध्यान चरमशरीरी जीवों को होता है ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

संयोग हो शुद्धात्मा का योगध्यान तभी बने ।
छह दिन बनेगा योग जब तारणतरण जिनवर बनें ॥ १६ ॥

मुक्तिकल का प्रसाद

आगे छद्मस्थ जिहि इहिं दिनहि मंहि पायो । तिहि मुक्तिकल को स्वभाव । अबहि इन दिनहि मंहि लियो सु पायो । सो मुक्ति कल को प्रसाद । ध्रुव उत्पन्न प्रवेश । हितकार हुन्तकार ॥ १७ ॥

टीका—पूर्वं या छद्मस्थावस्थाप्राप्ताधुनापि वर्तमाने वर्तते मुक्तिकलस्वभावोऽयं। वर्तमान दिनेषु यद्गृहीतं तदेव प्राप्तम्। अयमपि मुक्तिकलप्रसादध्रुवोत्पन्ने प्रविष्टोऽहम्। प्राप्तोऽहं हितकारं हुन्तकारं॥ १७॥

काव्य

प्राप्तोऽधुना समय मुक्तिकल स्वभावः,
छद्मस्थभाव निजभाव स्वयं समस्तिः।
मुक्ते प्रमाणकलनं कलनस्य मुक्ति,
द्रव्य स्वभाव ध्रुव स्वीकुरु शुद्धभावं॥ २७॥

सूत्रार्थ—पहले और इन दिनों में जो छद्मस्थावस्था प्राप्त की है। वह मुक्तिकल स्वभाव है। अब ही इन दिनों में जो लिया है वही पाया है। नया कुछ नहीं है। यह मुक्तिकल का स्वभाव है, प्रसाद है। ध्रुव-स्वभाव में उत्पन्न प्रवेश हो रहा है। यही हितकार हुन्तकार हैं॥ १७॥

टीका अर्थ—पूर्व में और अभी तथा आगे जो छद्मस्थ अवस्था होगी। यह मुक्तिकल का स्वभाव है। इस समय जो लिया है वही पाया है। यह मुक्तिकल का प्रसाद है। ध्रुव उत्पन्न में प्रविष्ट हूँ। हितकार हुन्तकार प्राप्त हैं॥ १७॥

काव्य अर्थ—यह प्राप्त समय मुक्तिकल का स्वभाव है। छद्मस्थ भाव निज भाव है। वह स्वयं सम्यक् है। मुक्ति का आकार प्रमाण स्वानुभूति है। और स्वानुभूति का आकार मुक्ति है। द्रव्य स्वभाव के ध्रुव शुद्धभाव को स्वीकार करो॥ २७॥

विशेषार्थ—आगे इस छद्मस्थ ने जो इन दिनों में शुद्धस्वभाव पाया है। वही मुक्तिकल तीर्थंकरों का स्वभाव है। अभी-अभी इन दिनों में ही जो लिया है। वही तो प्राप्ति है। वह मुक्तिकल का प्रसाद है। अपना ध्रुव स्वभाव उत्पन्न किया है। और उसी में प्रवेश है। उसी ध्रुव स्वभाव में हमारा निवास है। हितकार और हुन्तकार स्वभाव आया है॥ १७॥

पद्यानुवाद

मुक्तिफल तीर्थंकरों का यह प्रसाद स्वभाव का।
छद्मस्थ पाये आज वस्तु स्वभाव है निज भाव का ॥ १७ ॥

शाह सम्पत्ति

शाह सम्पत्ति। आठ हरी नव प्रतिहरी। चौ चक्कवे
श्रेणी सम्मत भेदो। स्वभाव कोड। ए चौबीस ही
समय गर्भिऊ ॥ १८ ॥

टीका—शाहसम्पत्तिः सातिशयपुण्यविभूतिः। अष्टहरिः नव प्रतिहरिः। चत्वारश्चक्रिणः श्रेणीसम्मतभेदान् प्राप्ताः। आनन्दकोडमय-स्वभावः स्वभावेनैव। एते ये सर्वे चतुर्विंशतितीर्थंकरसमये एव गर्भिताः ॥ १८ ॥

काव्य

चतुर्विंशति तीर्थानां समये गर्भितस्तथा।
शाह सम्पत्ति स्वामीनां च सूत्रेऽस्मिन्निरूपणं ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—सातिशय पुण्य संयुक्त वैभव के स्वामी। आठ नारायण, नव प्रतिनारायण, चार चक्रवर्ती जो श्रेणी सम्मत भेद को प्राप्त हुये। आत्म स्वभाव से ही आनन्द कोडमय। ये सब चौबीस तीर्थंकरों के समय में ही गर्भित हैं ॥ १८ ॥

टीका अर्थ—शाह सम्पत्ति सातिशय पुण्य वैभव, आठ हरि, नव प्रतिहरि, चार चक्रवर्ती जो श्रेणीसम्मत भेद को प्राप्त हुये। आनन्द कोड स्वभाव के धारी ये सब ही चौबीस तीर्थंकरों के समय में ही गर्भित हैं ॥ १८ ॥

काव्य अर्थ—आठ हरि, नव प्रतिहरि, चार चक्रवर्ती इन शाह सम्पत्ति के स्वामियों का इस सूत्र में निरूपण है। चौबीस तीर्थंकरों के समय में ही ये सब गर्भित हैं ॥ २८ ॥

विशेषार्थ—चौबीस तीर्थंकरों के समय में गर्भित आठ हरी, नव

प्रतिहरी, श्रेणी सम्मत भेद वाले चार चक्रवर्ती हुये हैं। ये सब अपने स्वभाव सुख के पाने वाले हैं। परम्परा मोक्षगामी हैं। त्रेषठ शलाका पुरुषों में इनकी गिनती है। ये सब शाह सम्पत्ति के अधिकारी हैं॥ १८॥

पद्यानुवाद

इकईस जीवों का समय चौबीस के ही समय में।
गर्भित हुआ है समझिये तारणतरण के समय में॥ १८॥

अपनी-अपनी सामग्री करो

अपनो अपनी सामग्री करहु॥ १९॥

टीका—स्व-स्व-सामग्रीं कुर्वन्तु सर्वे। सामग्रीति सम्यक्त्वादि मोक्ष-मार्गे पाथेयरूपा वस्तु॥ १९॥

काव्य

कुर्वन्तु स्वस्व सामग्रीं सम्यक्त्वादिं विशेषतः।
मोक्षमार्गे स्व पाथेयं कर्त्तव्यो नित्य संचयम्॥ २९॥

सूत्रार्थ—अपनी अपनी सामग्री करो॥ १९॥

टीका अर्थ—अपनी-अपनी सामग्री सब करो। सामग्री अर्थात् मोक्ष-मार्ग में पाथेय स्वरूप सम्यक्त्वादि॥ १९॥

काव्य अर्थ—विशेषकर सम्यक्त्वादि अपनी-अपनी सामग्री करो। मोक्षमार्ग में यह पाथेय है। नित्य संचय करो॥ २९॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्व और कषाय यह तो अपनी सामग्री नहीं है। इनके दूर होते ही जो सम्यक्त्वनिधि प्रगट होती है, वही अपनी सामग्री है। कषाय रहित भाव है वही अपनी सामग्री है॥ १९॥

पद्यानुवाद

अपनी करो सामग्रियां पर की कभी होती नहीं।
पर की करो तो भ्रमण की परिपाटियां खोतीं नहीं॥ १९॥

अनन्त सूर्यों का उदय

चक्रवर्ती के अनन्त कोड उत्पन्न। अनन्त अर्क अर्कऊ। अनन्त उत्पन्न प्रवेश॥ २०॥

टीका—अतीन्द्रियसुखस्योत्पत्तिर्भवति यस्य, षट्कमलरूपषट्खण्ड-विजयस्वरूपजेता सः चक्रवर्ती। अनन्तअर्कअंकितात्मा चक्रवर्ती। अनन्त-शुद्धस्वभावे उत्पन्ने प्रवेशको यः स चक्रवर्ती। स्वानुभव चक्रस्य वर्तनं करोति इति चक्रवर्ती। शुद्धात्मा सः स्वरूपेऽनन्तसूर्यप्रकाशं करोति ॥२०॥

काव्य

सुदृष्टयश्च प्रत्यक्षे रमन्ते स्वात्मनः सुखे।
स एव चक्री चक्रस्य धर्मणो वर्तने प्रभुः ॥ ३० ॥

सूत्रार्थ—अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का जनक वह चक्रवर्ती है। अनन्त के प्रकाश से प्रकाशित वह चक्रवर्ती है। अनन्त उत्पन्न का प्रवेशक वह चक्रवर्ती है ॥ २० ॥

टीका अर्थ—जिसके अतीन्द्रिय सुख की उत्पत्ति होती है। षट्कमल रूप षट्खण्ड विजय स्वरूप विजेता वह चक्रवर्ती है। अनन्त सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित आत्मा चकवर्ती है। अनन्त शुद्ध स्वभावोत्पन्न में जो प्रवेशक हो वह चक्रवर्ती है। स्वानुभव चक्र का वर्तन करे। वह शुद्धात्मा अपने स्वरूप में अनन्त सूर्यों का प्रकाश करते हैं ॥ २० ॥

काव्य अर्थ—सम्यग्दृष्टि जन प्रत्यक्ष में अपने आत्मा के सुख में रमण करते हैं। चक्रवर्ती वही है जो धर्मचक्र के वर्तने में पालने में समर्थ हो ॥ ३० ॥

विशेषार्थ—षट्कमल के छह खण्डों को छत्तीस अर्कों से, अनन्त अर्क से जो विजय करता है, वह वस्तु धर्मचक्र का प्रवर्तक चक्रवर्ती है। वही अपने अनन्त स्वरूप के सुख को उत्पन्न करता है। अनन्त के सूर्य प्रकाश से प्रकाशित उनका अन्तः स्वभाव है। अनन्त स्वरूप के उत्पन्न में ही उनका प्रवेश है। चक्रवर्तियों की बाह्य सम्पदा से इस धर्मचक्रीश की सम्पदा अनन्त गुनी है ॥ २० ॥

पद्यानुवाद

चक्रवर्ती है वही षट् कमल अपने जीत ले।
अपने अनन्त स्वरूप रस में डूबता अति प्रीत ले ॥ २० ॥

समवशरण महोत्सव

स्वयं इन्द्र कोड कियो । शतेन्द्र कोड कियो । वन्वित वन्वे । उत्पन्न समय कोड । चउ चतुष्टय के चारई आरते उठे । अनन्त उत्पन्न दुन्दुही शब्द । अनन्त अनन्त । इन्द्रधरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष अनन्त महोच्छो आये । मानस्तम्भ देखि मान गल्यो । उत्पन्न उत्पन्न अनन्त प्रवेश । अनन्त प्रवेशी । अनन्त अर्क अर्किऊ । अनन्त इच्छा निर्वांछने महोच्छो । अनन्त ध्रुवस्थान रोम रोम कोड उत्पन्न ।। २१ ।।

टीका—कृतः स्वयमिन्द्रेण महोत्सवः । शतेन्द्रेश्च कृतो वा महोत्सवः । वन्दितं वन्दे । उत्पन्नसमयमहोत्सवः चतुष्टयानां चतुरारते-उत्थिताः । अनन्त दुन्दुभिशब्दोत्पन्नाः । अनन्तश्चानन्तश्चानन्तानन्ताः । इन्द्र-धरणेन्द्र-गन्धर्व-यक्षाश्चानन्तमहोत्सवे आगताः । दृष्ट्वा मानस्तम्भं मानस्वभावो नष्टः । उत्पन्नोत्पन्नश्चानन्तप्रवेशः । अनन्ते प्रविष्टोऽहं । अर्कितोऽहमनन्तार्कः । अनन्तेच्छाश्च नृत्यन्ति महोत्सवे । अनन्त-ध्रुवस्थान रोमरोमांचिते सकलशरीरेसर्वात्मप्रदेशेषु वा महोत्सवोत्पन्नः श्रीगुरुतारणतरणदेवानां ।। २१ ।।

काव्य

तीर्थेशस्य समवशरणे वन्दितेन्द्रैः सुवृन्दैः,
उत्पन्नस्य सकलमहिमा स्तम्भितः स्तंभमानम् ।
इन्द्रैः वृन्दैः सकलविभवं सोत्सवे संगृहीतम्,
एतत्सर्वं कुरु कुरु निजे रूपे स्वयं तीर्थनाथ ! ।। ३१ ।।
चतुष्टयस्य संख्यांका आरते आगतास्तथा ।
वादित्रानन्दभेर्यादिः कुर्वन्ति मधुर ध्वनिम् ।। ३२ ।।
इन्द्रधरणेन्द्र यक्षाः गन्धर्वाः वानन्ता गताः ।
अनन्तेच्छाश्च नृत्यन्ति स्वान्तभवि महोत्सवे ।। ३३ ।।

तीर्थेशानां सा महिमा तव स्वात्मनि विद्यते ।
अवकाशेन त्वं पश्य स्वात्मनात्मनि चिन्मय ॥ ३४ ॥
रोम रोमे ध्रुवस्थाने परमानन्द साधने ।
अन्तर्मुखे हि त्वं पश्य समवशरणं स्वयम् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ—स्वयं इन्द्र ने महोत्सव किया। सौ इन्द्रों ने महोत्सव किया। वन्दितों ने वंदित की वंदना की। उत्पन्न समय महोत्सव में चार चतुष्टय के चार ही आरते आये। अनन्त दुन्दुभी के शब्द उत्पन्न हुये। अनन्त ही अनन्त है। इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्ष अनन्त के महोत्सव में आये। मान-स्तंभ को देखकर मान गलित हुआ। उत्पन्न में अनन्त प्रवेश उत्पन्न हुआ। अनन्त में प्रवेश किया। अनन्त सूर्यों का उदय हुआ। अनन्त इच्छाओं का नृत्य हो रहा है। अनन्त ध्रुव स्थान में रोम रोम में महोत्सव उत्पन्न हो रहा है ॥ २१ ॥

टीका अर्थ—स्वयं इन्द्र ने महोत्सव किया। सौ इन्द्रों ने महोत्सव किया। वंदित की वन्दना वंदितों ने की। उत्पन्न समय का महोत्सव है। चतुष्टय के चार आरते उठे। अनन्त दुन्दुभि के शब्द उत्पन्न हुये। अनन्त में अनन्त है। इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्ष अनन्त महोत्सव में आये। मान-स्तंभ को देखकर मान स्वभाव नष्ट हुआ। उत्पन्न में अनन्त का प्रवेश उत्पन्न हुआ। अनन्त में प्रविष्ट हूँ, अनन्त सूर्य प्रकाशित हुये। अनन्त इच्छायें नृत्य कर रही हैं। महोत्सव में, अनन्त ध्रुव स्थान में, रोम रोम रोमांचित सकल शरीर में, समस्त आत्म प्रदेशों में, श्रीगुरु तारणतरण स्वामी के समस्त आत्म स्वरूप में महोत्सव उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥

काव्य अर्थ—तीर्थंकरों के समवशरण में इन्द्रों के समूह ने वंदना की। यह तो उत्पन्न शुद्धात्म स्वभाव की सब महिमा है। मानस्तंभ को देखकर मान गलित हुआ। इन्द्रों के द्वारा समस्त वैभव इस महोत्सव में संगृहीत हुआ है। यह सम्पूर्ण महोत्सव हे तीर्थनाथ आत्मा! तू अपने स्वरूप में स्वयं कर ॥ ३१ ॥

चतुष्टय और आरतों की संख्या एक है। उत्सव में वादित्र और आनन्द भेरी की मधुर ध्वनि हो रही है ॥ ३२ ॥

इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व और यक्षों का समूह इस अनन्त के उत्सव में आये। अनन्त इच्छायें नृत्य करती हैं, यहाँ भाव के महोत्सव में भी यह सब हो रहा है ॥ ३३ ॥

तीर्थंकरों की सब महिमा तुम्हारी आत्मा में है। हे चिन्मय ! प्राप्त समय में अपने में यह उत्सव देखो ॥ ३४ ॥

रोम रोम में, ध्रुव स्थान में, परमानन्द की साधना में अन्तर्मुख होकर अपने स्वरूप में अपना समवशरण देखो ॥ ३५ ॥

विशेषार्थ—अरहन्त का ध्यान आया कि अपने स्वरूप में अपनी अरहन्त अवस्था भी आई। समवशरण लगा, और उसमें उसके सर्व महोत्सव होने लगे। इन्द्र स्वयं महोत्सव करने लगे। आत्मा के आनन्द का महोत्सव है। अनन्त के स्वभाव भी अनन्त हैं। अनन्त ध्रुव स्वभाव अपने अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण है। ऐसा यह रूपस्थध्यान में लगाया अपना समवशरण है ॥ २१ ॥

पद्यानुवाद

लीजिये फिर से स्वयं में समवशरण लगाइये।
सूत्र में वर्णित सभी वैभव स्वयं में पाइये ॥ २१ ॥

अन्तमंगल आशीर्वाद

आशा होई अबल बलो महोच्छो। आसन सिंहासन।
अनन्त ध्रुव। जय ध्रुव। जय महोच्छो ले उत्पन्न।
जय उत्पन्न। पांचई सापी। एतवार उत्पन्न। जय
जय जय ॥ २२ ॥

टीका—आशा भवति। अबलं ददाति बलमिति अबलबलो, तस्य महोत्सवः। अनुपमबलशाली अबलबली। आसने सिंहासने तिष्ठन्ति। अनन्त ध्रुवं जय ध्रुवं जयवंत महोत्सवमावायोत्पन्नः। जयोत्पन्नः। पंचसापी। रविदिने उत्पन्नो महोत्सवस्त्रिकाल जयवंतो भवतु।

काव्य

उत्सवो हि शुद्धात्मानमुदितं च रवौ दिने ।
अबलबलिस्वभावं वन्देश्री गुरुतारणम् ।। ३६ ।।

सूत्रार्थ—आशा होती है । अबलबली शुद्धात्मा का यह महोत्सव है । आसन सिंहासन सब हैं । अनन्तध्रुव स्वभाव है । जयवन्त ध्रुव स्वभाव है । जयवन्त महोत्सव लेकर उत्पन्न हुये हैं । जय जयकार उत्पन्न हैं । पाँच सापी हैं । रविवार को यह उत्सव उत्पन्न हुआ । जय जय जयवन्त हो ।। २२ ।।

टीका अर्थ—आशा होती है । निर्बलों को बलप्रदान करने वाले अबलबली हैं । उनका यह महोत्सव है, अथवा वे अनुपम बलशाली हैं अतएव अबलबली हैं । आसन सिंहासनों पर विराजते हैं । अनन्त ध्रुव स्वभाव है । जय ध्रुव स्वभाव है । जयवन्त महोत्सव को लेकर उत्पन्न हुये हैं । जय उत्पन्न हैं । पाँच सापी हैं । रविवार को यह उत्सव उत्पन्न हुआ है । त्रिकाल जयवन्त है ।। २२ ।।

काव्य अर्थ—यह शुद्धात्म स्वभाव का महोत्सव रविवार को उदय हुआ । इस उत्सव को, अबलबलि स्वभाव को श्रीगुरुतारणदेव को वन्दना करता हूँ ।। ३६ ।।

विशेषार्थ—अबलबली के महोत्सव से आशा होती है । शुद्धस्वभाव का यह महोत्सव है । इसे सर्व आत्मायें प्राप्त करें । और महोत्सव जयवन्त हो । इस सूत्र के साथ यह अध्याय समाप्त हो रहा है । आगे सप्तम अध्याय के प्रारम्भ में ही आत्म साक्षात्कार है ।। २२ ।।

पद्यानुवाद

ध्रुव जय महोत्सव ध्रुव स्वभाव अनन्त का यह हो रहा ।
रविवार का शुभदिन सफल क्षणक्षण स्वयं में हो रहा ।। २२ ।।

।। इति षष्ठोऽध्यायः ।।

ॐ

सप्तमोऽध्यायः

मङ्गल मन्त्र

सो सो सो। हों सो तू सो। तू सो हों सो। तू
सोऽहं। सो तू सोऽहं। सोऽहं हंसो। हंसो सो तू।
सोऽहं हूं जय। तू जय। हूं जय। स्वभाव स्वभाव
मुक्ति विलसाई। नाम धरे मोरो कहा जाई ॥ १ ॥

टीका—सः सः सः। अहं सः त्वं सः। त्वं सः अहं सः। त्वं सः अहं। सः त्वं सः अहं। सः अहं अहं सः। अहं सः सः त्वं। सः अहं। अस्मि जयः। त्वं जयः। अस्मि जयः। स्वभावे-स्वभावे मुक्तिर्विलसति। त्वं मम नामधरसि, का हानिर्भवति ॥ १ ॥

काव्य

अहं सोऽहं सोऽहं सोऽहं त्वं सः त्वं सः अहं चराः।
त्वं सोऽहं त्वं सः सोहं च, सोहं सोहं महं च सः ॥ १ ॥
त्वं स सोऽहं जयस्त्वं हं जयोऽहं सोऽहं सो जयः।
स्वभावे स्वभावे मुक्ति विलसन्ति विलासिनः ॥ २ ॥

सूत्रार्थ—वह वह वह। मैं वह तू वह। तू वह मैं वह। तू वह मैं। वह तू वह मैं। वह मैं मैं वह। मैं वह वह तू। वह मैं, मैं जय। तू जय, मैं जय। स्वभाव स्वभाव में मुक्ति विलस रही है। नाम रखने से मेरा क्या जावेगा ॥ १ ॥

टीका अर्थ—वह वह वह ही मैं हूँ। मैं वह है। तू वही है। तू वह है। मैं वह हूँ। तू वह मैं हूँ। वही तू वही मैं। वह मैं मैं वह। मैं वह वह तू। वह मैं। जयवन्त हूँ। तू जयवन्त है। मैं जयवन्त हूँ। स्वभाव स्वभाव में मुक्ति विलसती है। तुम मुझे नाम रखते हो, क्या हानि होती है ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—मैं वही हूँ। वही हूँ। वही हूँ। तू वही है। तू वही

है। मैं और तू वही है। तू वही मैं हूँ। वही तू वही मैं हूँ। मैं वही हूँ। मैं वही हूँ। वही तू है। वही मैं हूँ। जयवन्त तू। जयवन्त मैं। जयवन्त मैं। वही मैं हूँ। जयवन्त वह। स्वभाव स्वभाव में मुक्ति को उसके विलासी ही विलास करते हैं॥ १–२॥

विशेषार्थ—आत्म स्वरूप का साक्षात्कार इस मंगल मन्त्र में और उसके एक एक शब्द में हो रहा है। यह मन्त्र ऐसे साधक के अन्तरात्मा से प्रगट हुआ है कि जिनका पूरा जीवन ही आत्मा के साक्षात्कार में आत्मा की परिपूर्ण साधनाओं में तथा आत्म समाधि में व्यतीत हुआ है। आप मन्त्र का स्वयं में अनुभव करें। प्रत्येक शब्द अमृत कलश के समान भरापूरा है। अपने आत्मा से भरापूरा ही इस अनन्त स्वाद को लेने का, स्वयं स्वाद की अनुभूति का सौभाग्य प्राप्त करेगा॥ १॥

पद्यानुवाद

वही मैं हूँ, वही तू है, वही वह सोऽहं अहम्।
सब के स्वभावों में पड़ी है मुक्ति निधि देखो स्वयं॥ १॥

अपना भाव स्वयं जिन है

स्वभावई स्वयं त्वं ध्रुवं विलसाई। विट्ठारो स्वयं
विलो हुई जाई। स्वभावई स्वयं जिन। सुध्रुव जिन।
ध्रुव विलसाई। नामधरे मोरो कहा जाई॥ २॥

टीका—स्वभावेव स्वयं त्वं ध्रुवं विलससि। कर्मकलंकः स्वयं विलयं भविष्यति। स्वभाव एव स्वयं जिनः ध्रुवं जिनं ध्रुवमेव विलसति। नाम धरसि मम का हानिः॥ २॥

काव्य

नामधरसि का हानिः स्वभावैव स्वयं ध्रुवं।
राशिः कर्म कलंकस्य विलयं तद्भविष्यति॥ ३॥
स्वभावैव स्वयं सोऽहं विलसन्ति जिनाः ध्रुवं।
नाम धरसि का हानिः स्वभावः शुद्धचिन्मयः॥ ४॥

सूत्रार्थ—स्वभाव ही स्वयं तू है। ध्रुव स्वभाव का विलास करने वाला है। कर्म कलंक स्वयं विलय होगा। स्वभाव ही स्वयं जिन है। ध्रुव स्वभाव ही अपना जिन है। स्वभाव ही विलास करने योग्य है। नाम रखने से मेरी क्या हानि॥ २॥

टीका अर्थ—स्वभाव ही स्वयं तू है। ध्रुव को विलसता है, कर्म कलंक स्वयं विलय होगा। स्वभाव ही स्वयं जिन है। ध्रुव स्वभाव को स्वयं ही विलसता है। नाम रखने से मेरी क्या हानि है॥ २॥

काव्य अर्थ—नाम रखते हो, इससे क्या हानि है। स्वभाव ही स्वयं ध्रुव है। कर्म कलंक राशि का स्वयं विलय होगा। स्वभाव ही स्वयं जिन है। जिन ही ध्रुव स्वभाव का विलास करता है। नाम रखने से क्या हानि है। स्वभाव ही चिन्मय है॥ ३–४॥

विशेषार्थ—अपने शुद्धस्वभाव में स्थिर होने का अभ्यास और संस्कार हो तो कर्म कलंक तो स्वयं विलय होगा। स्वभाव ही स्वयं तू है। अपना स्वभाव ही जिन है। कर्म को जीतने वाला है। विभाव भाव ही भाव-कर्म हैं। इन भावकर्मों से ही द्रव्यकर्म और नोकर्म बनते हैं। विभावों को जीतने वाला ही जिन है। ध्रुव स्वभाव ही जिन है। यह जिन ही ध्रुव स्वभाव का विलास करेगा। उत्पाद व्यय तो आने जाने वाले हैं। अब नाम धरने वाले यदि नाम धरेंगे तो छद्मस्थ की क्या हानि है! यह है जिन स्वभाव का साहस॥ २॥

पद्यानुवाद

अपने स्वयं ध्रुव का स्वयं बन जा विलासी आप ही।
यह स्वयं कर्म विनाश हों तू स्वयं चिन्मय आप ही॥ २॥

आनन्द कमल को लीजिये

रयन स्वभाव। पुञ्ज जय। हुन्तकार ग्यारह।
कमल लीजहि। जु झुलपटै वार अपार। उत्पन्न
प्रवेश॥ ३॥

टीका—रत्नस्वभावोऽयमात्मा । गुणपुञ्जमयो जयः । हुन्तकारैकादश स्वभावोऽयम् । आनन्द कमलं, कमल स्वभावं, षट्कमलं लेहुरे गृहाण । अपारज्योतिपुञ्जस्वरूपेशिखारश्मयः उत्थीयते स्वशुद्धस्वभावे उत्पन्ने प्रविष्टो भव ॥ ३ ॥

काव्य

रत्नसमः स्वभावोऽस्ति स्वभावश्च रत्नत्रयः ।
रत्नपुञ्ज जयः सोऽहं हुन्तकारश्चैकादशः ॥ ५ ॥
स्वभावोऽपारवारिश्च कमलं लेहु लेहु रे ।
ज्योतिः पुञ्ज स्वभावोऽयं, स्फुरन्ति रश्मयः स्वयं ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—रत्न स्वभाव आत्मा है। रत्नपुञ्ज गुणमय जयवन्त है। ११ हुन्तकार मय है। आनन्द कमल स्वभाव को लीजिये। ज्योतिःपुञ्ज स्वभाव में रश्मियाँ उठ रही हैं। उसी स्वभाव में प्रवेश करो ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—रत्न स्वभाव यह आत्मा है। गुण पुञ्जमय जयवन्त है। हुन्तकार ग्यारह स्वभाव मय हैं। आनन्द कमल लीजिये। कमल स्वभाव लीजिये। षट्कमल लीजिये। अपार ज्योतिपुञ्ज स्वरूप में शिखायें-रश्मियाँ उठ रही हैं। अपने उत्पन्न शुद्धस्वभाव में प्रविष्ट हो ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—रत्न के समान स्वभाव आत्मा का है। स्वभाव ही रत्नत्रय है। रत्नगुण पुञ्जमय जयवन्त स्वभाव मैं हूँ। ११ हुन्तकार स्वभाव-मय मैं हूँ ॥ ५ ॥

स्वभाव ही समुद्र है। आनन्द कमलों को लीजिये। यह ज्योतिपुञ्ज स्वभाव है। इसमें रश्मियाँ-किरणें स्वयं प्रगट होती हैं ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—आत्मस्वभाव रत्नप्रकाशवत है। आत्मा गुणों का पुञ्ज है। ग्यारह हुन्तकार आत्मा की विशेषता को प्रकाशित करते हैं। ऐसी विशेषता जो स्वयं के ज्ञान में स्वीकृत हो चुकी है। यह हुन्तकारों का स्वरूप है। ज्ञान में स्वीकृत गुणों को हुन्तकार कहते हैं। आगे पिण्डस्थ ध्यान की धारणाओं का वर्णन है। इस ध्यान से आत्मा अपने स्वभाव में प्रवेश करता है ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

यह जगमगाता रत्न मेरा आतमा गुण पुञ्ज है।
मेरा स्वभाव समुद्र है, मैं हुञ्ज हूँ तू तुञ्ज है ।। ३ ।।

बारह सौ देव होंगे

उत्पन्न अंकूर चार दिखाये। कोड स्वभाव, अनन्त प्रवेश प्रवेशऊ। अनन्त अर्क अर्किऊ। अनन्त अवगाहन। कलनावती जयवन्त होई आरते ले आवो। आयरण परम इष्ट है। उत्पन्न पञ्च परमेष्ठी सु प्रसाद लेहु। हमारो उपदेश जो है—बारह सौ देव उपजि हैं ।। ४ ।।

टीका—दर्शन्ति चतुरुत्पन्नांकुराः। उत्साह प्रसन्न कोड स्वभावः। अनन्तप्रवेशो प्रवेशनं। अर्कितोऽनन्तार्के। शुद्धात्मस्वभावेऽवगाहनं। जयवन्ता भवतु कलनावती। आनयन्तु आरते। परमेष्टं चास्ति स्वरूपाचरणं। उत्पन्न पंचपरमेष्ठि स्वभावस्य प्रसादं लेहु गृहाण। अस्ति ममोपदेशस्तु एवं। शतद्वादश देवाः भविष्यन्तिः ।। ४ ।।

काव्य

अनन्ते प्रवेशश्च सुखं स्वभावे,
अर्क स्वभावेऽप्यवगाहनं च।
कलनावती सारते समेता,
जयवन्त भावा सा स्वागतार्हा ।। ७ ।।
अस्ति स्व चरणं परमेष्ट भावः,
उत्पन्न पञ्चैव परमेष्ठि भावः।
जिनोपदेशो हि ममोपदेशः,
शृण्वन्ति भव्यास्ते यान्ति स्वर्गे ।। ८ ।।

सूत्रार्थ—चार अंकूर उत्पन्न हुये दिखाई दे रहे हैं। १. कोड़ स्वभाव २. अनन्त प्रवेश ३. अनन्त अर्क ४. अनन्त अवगाहन। कलनावती जयवन्त

होवे। आरते ले आवो। स्वरूपाचरण परम इष्ट है उत्पन्न पंचपरमेष्ठि स्वभाव का प्रसाद लीजिये। हमारा उपदेश यह है कि बारह सौ देव होंगे॥ ४॥

टीका अर्थ—चार उत्पन्न अंकूर दिख रहे हैं। उत्साह प्रसन्न उत्सव स्वभाव। अनन्त प्रवेश स्वभाव। अनन्त अर्क उदय स्वभाव। शुद्धात्म स्वभाव में अवगाहन स्वभाव। कलनावती इन चार चिन्हों से जयवन्त होवे। आरते लावो। स्वरूपाचरण परम इष्ट भाव है। उत्पन्न पंच-परमेष्ठि स्वभाव का प्रसाद लीजिये। हमारा उपदेश है—बारह सौ देव होंगे॥ ४॥

काव्य अर्थ—अनन्त सुख स्वभाव में प्रवेश हो। अर्क स्वभाव में अवगाहन हो। आरते सहित जयवन्त स्वभाब कलनावती वह आ गई। स्वागत के योग्य है॥ ७॥

स्वरूपाचरण का भाव परम इष्ट है। उत्पन्न पंचपरमेष्ठिभाव भी उत्कृष्ट हैं। जिनोपदेश ही मेरा उपदेश है। जो भव्य सुनते हैं वे स्वर्गादि सुख को प्राप्त करते हैं॥ ८॥

विशेषार्थ—गणधर कलनावती जी के स्वभाव में चार अंकुर चिन्ह सम्यक्त्व के प्रगट हुए। १. आत्मानन्द का विकास, २. अनन्त स्वभाव में प्रवेश, ३. अनन्त अर्क से प्रकाशित स्वभाव, ४. शुद्धात्म स्वभाव की सूक्ष्मता में अवगाहन। ये चार चिन्ह कलनावती जी में देखे। इनसे ही कलनावती जयवन्त होंगी। स्वरूपाचरण ही परम इष्ट है। इसमें ही पंचपरमेष्ठी स्वभाव प्रगट होता है। इसका प्रसाद लीजिये। हमारे उपदेश से १२०० देवपर्याय को पावंगे॥ ४॥

पद्यानुवाद

यह अर्क का सुप्रवेश कोड अनन्त अवगाहन क्रिया।
ये चिन्ह ले सम्यक्त्व के कलनावती आई सिया॥ ४॥

तीन और तीन छह

तीन अरु तीन छह। ऐसे कोमल परिणामजो कलश

अर्बाहि एक दोई हुन्तकार उत्पन्न एक। उत्पन्न रमण चतुष्टय चार। उत्पन्न दर्शन। उत्पन्न ज्ञान। उत्पन्न चारित्र। उत्पन्न प्रवेश प्रवेश्यो। अनन्त बिन्द। अनन्त सुन्न। समय बाहुरो। अर्क रमण-स्वभाव। अनन्त अर्क। उत्पन्न प्रवेश ॥ ५ ॥

टीका—त्रि च त्रि च षट्। त्रयश्च त्रयश्च षट्। ईदृक्कोमलपरिणामाः येऽधुनैव चतुःषष्ठिकलशानां मध्ये हुन्तकाराणां मध्ये वा एकं-द्वौ कलशं हुन्तकारं वा स्वीकुर्वन्त्येव। उत्पन्नरमणचतुष्टयस्वभावमपि स्वीकुर्वन्ति। अपि च उत्पन्न दर्शनं। उत्पन्न ज्ञानं। उत्पन्न चारित्रं। उत्पन्न प्रवेशे प्रवेशनम्। अनन्तबिन्दशून्यस्वभावं स्वीकरणं। काललब्धिस्वरूप समयः प्राप्तः। अर्कं रमणस्वभावोऽनन्तार्के उत्पन्नश्च प्रविष्टो भव्यः ॥ ५ ॥

काव्य

त्रयोभावास्त्रयोभावाः षट्भावाः कलशास्तथा।
एकं द्वौ स्वीकारोत्पनः रमणं च चतुष्टये ॥ ९ ॥
उत्पन्न दर्शने ज्ञाने चारित्रे वा प्रवेशनम्।
अनन्त शून्यबिन्दोश्च स्वानुभूतिः पुनः पुनः ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—तीन और तीन छह। ऐसे कोमल परिणाम जो कलश अथवा हुन्तकार अभी एक दो उत्पन्न हों। रमण चतुष्टय उत्पन्न हों। दर्शन उत्पन्न हो। ज्ञान उत्पन्न हो। चारित्र उत्पन्न हो। उत्पन्न प्रवेश हो। अनन्त शून्य बिन्द प्रवेश हो। पुनः प्राप्त हुआ समय यह काललब्धि है। अनन्त अर्क रमण उत्पन्न प्रवेश हो ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—तीन और तीन छह। ऐसे कोमल परिणाम जो अभी इसी समय ६४ कलशों वा ११ हुन्तकारों में से एक दो कलश या हुन्तकारों को स्वीकार करेंगे ही। उत्पन्न रमण चतुष्टय स्वभाव को भी स्वीकार

करेंगे। और भी दर्शनज्ञानचारित्र को उत्पन्न करेंगे। उत्पन्न प्रवेश, अनन्त विन्द शून्य स्वभाव की स्वीकृति भी होगी। काललब्धि स्वरूप समय प्राप्त हुआ है। अनन्त अर्क स्वभाव में उत्पन्न प्रवेश भव्य जीव को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—तीन भाव और तीन भाव ऐसे षट्भाव के कोमल-कलश आत्मस्वरूप पर ढलते हैं। एक दो उत्पन्न रमण चतुष्टय स्वीकार करो ॥ ९ ॥

उत्पन्न दर्शन में, उत्पन्न ज्ञान में, उत्पन्न चारित्र में पुनः पुनः प्रवेश करने से ही अनन्त शून्य विन्दु स्वरूप की स्वानुभूति प्राप्त होती है ॥१०॥

विशेषार्थ—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और उत्पन्न प्रवेश, अनन्त विन्द, अनन्त शून्य ये तीन और तीन छह। शिष्यों के परिणामों की कोमलता में आत्मस्वरूप की स्वीकारता (हुन्तकार) देखते थे, गुरुदेव चाहते थे कि कलनावती के समान ही दूसरे शिष्य भी एक दो चिन्ह अभी प्रगट करें। अपने चतुष्टयों में रमणता हो। तीन और तीन छह को ले लें। अर्करमण स्वभाव प्रगट हो और सभी अपने आत्मानंद में सुखी रहें। यह भावना थी श्रीगुरुदेव स्वामीजी की जो कि सूत्र के प्रत्येक शब्द से प्रगट है ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

परिणाम कोमल सरल हों हो पात्रता सम्यक्त्व की।
लक्ष्य विन्दु स्वरूप की ही ओर, श्रद्धा तत्त्व की ॥ ५ ॥

सात दिनों के कार्य

शुक्रवार। शनीचर। आदित्यवार। उत्पन्न मिलन। सोमवार। मंगलवार। बुधवार। बृहस्पतिवार। रमण चतुष्टय। उत्पन्न रमण। प्रथम प्रवेश। पुञ्ज-स्थापन। उत्पन्न आयरण। उत्पन्न प्रवेश। अव-गाहन। अनन्त मिलन बेशक ॥ ६ ॥

टीका—शुक्रवासरे शनैश्चरदिवसे आदित्य दिने वा उत्पन्न मिलनं ॥

चन्द्रवासरे मंगलवार दिने बुध दिवसे च गुरौ दिने रमण चतुष्टयोत्पन्न रमणभावस्य प्रथमप्रवेशोऽभवत्। पुञ्जस्थापनं। उत्पन्नायरणं उत्पन्न प्रवेशोऽवगाहनमनन्तमिलनमतिश्रद्धाभाव स्वभावेन ॥ ६ ॥

काव्य

शुक्रवारादि वारेषु त्वं कस्मिन्हि दिनेऽपि वा।
दर्शनं स्व स्वभावस्य कुरु सा घटिका शुभा ॥ ११ ॥
पुञ्जस्थापनमुत्पन्नं स्वरूपाचरणं पुनः।
प्रवेशोऽवगाहनं स्यात्स्वात्मन प्राप्तये स्वयं ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—शुक्रवार, शनिवार, रविवार इन दिनों में उत्पन्न मिलन हुआ। सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार इन दिनों में रमण चतुष्टय, उत्पन्न रमण प्रथम प्रवेश पुञ्जस्थापन। उत्पन्न आयरण, उत्पन्न प्रवेश अवगाहन अनन्त मिलन ये साधना के कार्य निःसन्देह रूप से हुये ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—शुक्र, शनि, रवि दिनों में उत्पन्न मिलन हुआ। सोम, मंगल, बुध, गुरुवार इन दिनों में रमण चतुष्टय उत्पन्न रमण भाव और आत्मस्वरूप में प्रथम प्रवेश हुआ। पुंज स्थापन, उत्पन्न आयरण, उत्पन्न प्रवेश, अवगाहन अनन्त मिलन ये कार्य अति श्रद्धाभाव स्वभाव से सिद्ध हुये ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—शुक्रवारादि दिनों में तुम किसी भी दिन में अपने स्वभाव का दर्शन करो, वही घड़ी शुभ है ॥ ११ ॥

पुञ्जस्थापन, स्वरूपाचरण और फिर आत्मप्रवेश अवगाहन (आत्म स्वरूप की गहराई में जाना) आदि समस्त साधनायें अपनी आत्मा को स्वयं प्राप्त करने के लिये हैं ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—सप्ताह की साधना का विवरण दे रहे हैं। शुक्र, शनि, रवि इन तीन दिनों में उत्पन्न मिलन साधना हुई। और सोम, मंगल, बुध, गुरु इन चार दिनों में रमण चतुष्टयादि सूत्र निर्दिष्ट साधन और तपस्यायें हुईं ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

शुक्र शनि किस दिन करूँ आत्मस्वरूप प्रवेश में।
मत सोच अवगाहन मिलन कर ले किसी भी वेश में ॥ ६ ॥

प्रियतम मिलन

छह अवगाह स्थापन। आसन सिंहासन। पदवी उत्पन्न। कोड अनन्त प्रवेश। अनन्त अर्क उत्पन्न कोड। उत्पन्न विनोद लीला कोड। प्रीतम मिलन उत्पन्न, प्रमाण बार छह ॥ ७ ॥

टीका—षडवगाहस्थापनं। आसन सिंहासनं पदवी उत्पन्न। महोत्सवानन्द स्वरूपेऽनंते प्रवेशः। अनन्तार्कोत्पन्न कोड महोत्सवः। उत्पन्ने स्वरूपे विनोदलीलामहोत्सवं कुरु। प्रियतम स्वभाव चैतन्यमिलनमुत्पन्न प्रमाणं षट्बारं षट्कमले भवति ॥ ७ ॥

काव्य

लीला मात्र विनोदेन समयेऽर्क प्रकाशनम्।
वस्तु स्वभावे भावे च षडवगाहनं कुरु ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—छह अवगाह स्थापन—छह सरोवरों में षट् कमल स्थापन। पिण्डस्थ ध्यान में पहुँचने के लिये अपने स्वरूप में अपनी स्थापना अपने आसन सिंहासन, उनपर स्वयं विराजना। अपने पद को प्रगट करना। आनन्द स्वरूप अपने अनन्त स्वभाव में प्रवेश करना। अपने अनन्त सूर्य के प्रकाश में अपना आनन्द स्वरूप प्राप्त करना। विनोद लीला महोत्सव प्रगट करना। प्रियतम चिदानन्द से मिलना इसका प्रमाण छह बार है। षट्कमलों में ६ ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—छह अवगाह स्थापन करना। आसन सिंहासन पर विराजमान होकर अपना पद प्रगट करना। स्वयं महोत्सव आनन्द स्वरूप में प्रवेश करना। अपने अनन्त सूर्य के प्रकाश में अपना आनन्द महोत्सव

करना। अपने स्वरूप में विनोद लीला महोत्सव करो। प्रियतम चेतन्य से मिलन उत्पन्न करो। छह कमलों में छह बार मिलो ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—लीलामात्र विनोद के द्वारा अपने समय स्वरूप में अपने चेतन्य रवि का प्रकाश करो। वस्तु स्वभाव में अपने भाव में छह बार अवगाहन करो ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—कमल समाधि की विधि—छह सरोवर स्थापित करो, उनमें षट्कमलों के आसन सिंहासन स्थापित करो। उन पर अपने विन्द कमल आदि को स्थापित करो, फिर अपने समस्त चैतन्य पदों को ध्यान में प्रगट करो, तुम उनमें विहार करो। अपने आत्मानन्द स्वभाव में अपना अनन्त सूर्य स्वभाव उत्पन्न होगा। इस ध्यान के विनोद में आत्मप्रदेशों की लीला का आनन्द उत्सव देखिये। और अपने प्रियतम (प्रीतम) से मिलिये। किन्तु मिलने का प्रमाण छह बार है। प्रत्येक कमल में एक बार ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

यह भेद हैं उस भेद रहित स्वरूप प्रियतम के लिये।
उत्पन्न लीला कोड मिलन प्रमाण पदवी के लिये ॥ ७ ॥

परिचय मिलन प्रवेश

अवगाहन। मिलन। चतुष्टय सन्मुख। संयोग लब्धि।
अनन्तप्रवेश अवगाहन। अव्याबाध अनन्त। प्रवे-
मिलन। अन्मोद प्रिये। परम अवगाहन। बार
तीन ॥ ८ ॥

टीका—अवगाहनं। मिलन-चतुष्टयं। सम्मुख संयोगलब्धिः। अनन्त-प्रवेशावगाहनं। अव्याबाधानन्तस्वरूपे परिचय-मिलन-प्रवेशकरणं। प्रियानुमोदनं ध्यानं। परमावगाहनं। परिचयमिलनप्रवेशा, त्रिवार साधना कर्तव्या ॥ ८ ॥

काव्य

त्रिवारोत्पन्न प्रवेशे प्रियतमो मिलति सः ।
अधःकरणादि भावः अपूर्वानिवृत्तिस्तथा ॥ १४ ॥
अवगाहनेन प्राप्तिः स्व स्वभावचतुष्टयं ।
आत्म सन्मुखतावाप्तिः त्रिवारं कुरु पश्य च ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—अवगाहन (गहराई में पहुँचना) । मिलना । अपने चतुष्टय प्राप्त करना । सन्मुख संयोग लब्धि (स्वसन्मुख होकर मिलना) । अनन्त प्रवेश और अवगाहन । अव्याबाध स्वरूप से परिचय और मिलन । उसमें प्रवेश । प्रियानुमोदन । परमावगाहन इस प्रकार परिचय मिलन प्रवेश रूप तीन बार की साधना आत्म स्वरूप में निर्विकल्प प्रतीति कराने वाली है । यही समाधि, साधु समाधि है ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—अवगाहन, मिलन चतुष्टय, सन्मुख संयोगलब्धि । अनन्त प्रवेश, अवगाहन । अव्याबाध अनन्त स्वरूप में परिचय मिलन प्रवेश । प्रिय की अनुमोदना, अनुभूति, परम अवगाहन (पारिणामिकभाव में पहुँचना) । ऐसी तीन बार परिचय मिलन प्रवेश की साधना ही समाधि है ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—जो तीन बार अपने उत्पन्न में प्रवेश करता है । वह अपने प्रियतम से मिलता है । पहिली बार अधःकरण । दूसरी बार अपूर्व-करण । और तीसरी बार अनिवृत्तिकरण । ऐसे तीन बार अवगाहन से स्वभाव चतुष्टय की प्राप्ति होती है । आत्म सन्मुखता होती है ॥ १४-१५ ॥

विशेषार्थ—अपने प्रियतम के मिलन में अवगाहन, मिलन, अपने चतुष्टय, स्वसन्मुख, स्वसंयोग, स्वलब्धि, अनन्त प्रवेश, अनन्तावगाहन, अव्याबाध, अनन्त परिचय, मिलन, स्वानुभूति और परम अवगाहन तीन बार प्राप्त होना आदि की यह साधना ही आत्म साधना है । यही परिचय मिलन प्रवेश की साधना है । इन तीनों में तीन बार अपना स्वरूप अपने को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

सन्मुख सभी संयोग हैं अपने चतुष्टय लब्धियाँ।
परिचय मिलन अपना प्रवेश करो यही उपलब्धियाँ ॥ ८ ॥

रुइयाजिन से आग्रह

रुइयाजिन झट लेहु। झट लेहु। छोड़हु जिन लेहु
लेहु। छोड़हु जिन। लेहु हुन्तकार तीन। अनरघ
थार भरे आरत आये। तीन ये कोड हुन्तकार हैं रे।
जो मोरी समय जीति जय जय जय अरहंत
किये ॥ ९ ॥

टीका—हे रुइयाजिन! शीघ्रमेव लेहु गृहाण, शीघ्रं लेहि त्यजतु नैव। लेहु लेहु। त्यजतु नैव। ले हुन्तकार त्रयं। अनर्घ्यपात्रभरितारते आगताः कोड त्रय हुन्तकाराश्च सन्ति रे। मम समयं येन प्राप्तस्तेनैव जयो जयो जयवन्तारहंतः कृतः स्वरूपे ॥ ९ ॥

काव्य

रुइयाजिन ! त्वं स्वं लेहु शीघ्रं,
त्वं नैव तं वा त्यजतु स्वरूपम्।
लेहु त्रियोगेन स्वयं स्वलब्धि,
समय स्वभावं रत्नत्रयं वा ॥ १६ ॥
येन मम समयः प्राप्तः अरहन्त जयं कृतः।
अरहन्त स्वरूपस्य स्वानुभूति स्वभावतः ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—हे रुइयाजिन ! शीघ्र लीजिये ! शीघ्र लीजिये ! छोड़िये नहीं। लीजिये, लीजिये, छोड़िये नहीं। तीन हुन्तकार लीजिये। अनर्घ्य थाल भरे आरते आये हैं। ये तीन हुन्तकार कोड हैं रे। जिन्होंने मेरे समय को प्राप्त किया उन्होंने ही जय जय जय अरहन्त किये। अपने स्वरूप में अरहन्त देखा ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—हे रुइयाजिन शीघ्र लीजिये। शीघ्र लीजिये। छोड़िये

नहीं। लीजिये। लीजिये। छोड़िये नहीं। तीन हुन्तकारों को लीजिये। अनर्घ्य-बहुमूल थाल भरे आरते आये हैं। ये तीन हुन्तकार कोड हैं रे। जो मेरी समय को प्राप्त करेंगे वही तो त्रिकाल जयवन्त पद को स्वीकार करेंगे ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—हे रुइयाजिन ! तुम शीघ्र ही अपने स्वरूप को ले लो। उस स्वरूप को तुम छोड़ना नहीं। त्रियोग मन बचन काय से स्वयं ही अपना स्वभाव लो। समय स्वभाव या रत्नत्रय को लो ॥ १६ ॥

जिन्होंने मेरे समय को प्राप्त किया है। अरहन्त की जय जयकार की। उन्होंने ही अरहन्त के स्वरूप की अनुभूति में अपना स्वरूप देख लिया ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—श्री रुइयाजिन को सम्बोधन करके देशना है। लीजिये, लीजिये, शीघ्र ही तीन हुन्तकार लीजिये। इस देशना के समय ही अनर्घ्य थाल भरे हुये आरते आये। फिर देशना प्रारम्भ हुई। ये तीन हुन्तकार उत्पन्न कोड के हैं। अर्थात् ३॥ कोटि रोम-रोम स्थित आत्मप्रदेशों की जागृति की स्वीकृति के ये हुन्तकार हैं। जो मेरी समय को प्राप्त करेंगे वे ही त्रिकाल जयवन्त अरहन्तों के स्वरूप को स्वीकार करेंगे ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

रुइयारमण मेरी समय में आ गये यह लीजिये।
निज पूज्य पद सूचक समय है शीघ्रता से लीजिये ॥ ९ ॥

तिलक समाप्ति का दिन

जोड़ी दोई लागी। सापी दोई ले आये। अपछरा निवांछनै करत होंहि। अनन्त आरते ले आये। अनन्त रयन पदार्थ जड़ित आरते। महोच्छो अनन्त किये ॥ १० ॥

टीका—शाटके द्वे द्वे प्रदत्ते। उत्तरीयकेऽपि द्वे आनीते। अप्सरा नृत्यन्ति। अनन्तारत्ते आनीताः। अनन्तरत्नपदार्थजडितारत्ते सन्ति। कृतानन्त महोत्सवः ॥ १० ॥

काव्य

अन्तर्बाह्यारतेऽनन्ताः अनन्तं वस्त्रमागतम् ।
नृत्यन्ति चाप्सरा ताश्च महोत्सवेऽनन्तोत्सवे ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ—धोतियों की जोड़ी दो लगीं। सापी पिछोडी दो लाये, अप्सरायें नृत्य कर रही हैं। अनन्त आरते ले आये। अनन्त रत्न पदार्थ जड़ित आरते आये। अनन्त महोत्सव किये ॥ १० ॥

टीका अर्थ—धोतियाँ जोड़ी लगीं। सापी दो आईं। अप्सरा नृत्य कर रही हैं। अनन्त आरते लाये। अनन्त रत्न पदार्थ जड़ित आरते हैं। अनन्त महोत्सव किये ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—अन्तरंग और बहिरंग के अनन्त आरते आये, अनन्त वस्त्र आये। इस अनन्त के महोत्सव में अप्सरायें नृत्य कर रही हैं ॥ १८ ॥

विशेषार्थ—तिलक समाप्ति का समय है। अतः वहाँ के दृश्य का और सामग्रियों का वर्णन है। परन्तु अपने अनन्त का ध्यान अपने साथ है ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

सामग्रियाँ सब ही उपस्थित हैं महोत्सव कीजिये ।
अपने अनन्त स्वभाव के भी आरते अब लीजिये ॥ १० ॥

योग कलशाभिषेक

जोग कलश। संजोग कलश। स्वयं उत्पन्न। उत्पन्न जोग कलश। महा उत्पन्न जोगकलश। चैत्र सुदी पाँचें मंगलवार ॥ ११ ॥

टीका—योग कलशः। सयोग कलशः। स्वयमुत्पन्नः। उत्पन्नयोग कलशः। महोत्पन्न योग कलशः। चैत्र शुक्ल पंचमी मंगलदिने संपन्नस्तिलकोत्सवः ॥ ११ ॥

काव्य

योगश्च कलशोत्पन्नः सयोगः कलशस्तथा ।
महोत्पन्न योग कलशः स्वभावे व्युत्पन्नाः स्वयं ॥ १९ ॥

पंचमी चैत्र शुक्ले च मंगले मंगलं मये।
महोत्सवे सद्गुरुणा देशना मुक्तिदा कृता ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—योग कलश। सयोग कलश। तथा स्वयं अपने आप उत्पन्न। उत्पन्न योग कलश। महा उत्पन्न योग कलश। यह सब कलशारोहण महोत्सव या कलशाभिषेक चैत्र सुदी पंचमी मंगलवार को सम्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—त्रियोग के तीन कलश। सयोग कलश। स्वयं उत्पन्न। उत्पन्न योग कलश। महा उत्पन्न योग कलश। यह सब कलशारोहण चैत्र-सुदी पंचमी मंगलवार को सम्पन्न तिलक महोत्सव में हुआ। अथवा कलशाभिषेक ध्यान ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—योगों के कलश उत्पन्न हुये। सयोग कलश उत्पन्न हुये। महा उत्पन्न कलश। स्वभाव में उत्पन्न ये स्वयं कलश हैं ॥ १९ ॥

पंचमी चैत्र शुक्ला मंगलवार को मंगलमय महोत्सव में श्रीगुरुदेव स्वामीजी ने मुक्ति को देने वाली यह देशना प्रदान की ॥ २० ॥

विशेषार्थ—चैत्रसुदी पंचमी मंगलवार को योग समाधि में आत्म-स्वभाव पर योग कलश, सयोग कलश, स्वयं उत्पन्न हुये। ढले। उत्पन्न योग कलश, महा उत्पन्न योग कलश ये दोनों ही शुद्धोपयोग के कलश स्वभाव में ढले। योग समाधि हुई ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

योग का संयोग अपने योग के कलशा चढ़े।
चैत्र शुक्ला पंचमी मंगल महोत्सव सब पढ़ें ॥ ११ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

●

ॐ

अष्टमोऽध्यायः

आत्मसाक्षात्कार

अयं अयं अयं । जयं जयं जयं । अयं जयं । अयं जयं ।
स्वयं स्वयं स्वयं । सोऽहं सोऽहं सोऽहं । जयं अहं
तुहं । तुहं अयं जयं । अहं तुहं । तुहं अहं ॥ १ ॥

टीका—शुद्धचिद्रूपोऽयमस्ति । अयमस्मि शुद्धात्मा । अयं ज्ञायते ज्ञाता दृश्यते दृष्टा च मया । त्रिकालजयवन्तः शुद्धस्वभावोऽयम् । अयं जयतु । अयं जयतु जयवन्तः । स्वयमेवास्ति शाश्वत स्वरूपः । स्वयमेवास्त्यनादि-निधनोऽयं । पराश्रयरहितोऽयं केवलः स्वयं । स एवाहं । स एवाहं । स एवाहं जयोऽहं त्वं । त्वमपि अयमसि । जयोऽसि त्वं । अहं त्वमस्मि । त्वं च अहमसि । इत्यात्म स्वयं साक्षात्कारः ॥ १ ॥

काव्य

अयमस्म्यहं जयमयः सोऽहं स्वरूप-
स्त्वं मादृशोऽसि तव शुद्ध स्वरूपमस्ति ।
ज्ञाताहमस्मि स्वयमात्मस्वरूप दृष्टा,
परद्रव्यभावरहितोऽहमहं स्वयं स्वः ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—यह यह यह । जय जय जय । यह जय । यह जय । स्वयं स्वयं स्वयं । वह मैं वह मैं वह मैं । जय मैं तू । तू यह जय । मैं तू । तू मैं ॥ १ ॥

टीका अर्थ—यह है शुद्धचिद्रूप । यह हूँ शुद्धात्मा । यह ज्ञाता जाना जाता है, दृष्टा देखा जा रहा है । मैं ही वह हूँ । त्रिकाल जयवन्त शुद्ध-स्वभाव यही है । यह जयवन्त हो । यह जयवन्त हो । स्वयं ही शाश्वत स्वरूप है । यह स्वयं ही अनादि निधन है । यह पराश्रय रहित स्वयं ही केवल है । वही मैं हूँ । वही मैं हूँ । वही मैं हूँ । जयवन्त मैं तू । तू भी यह

है जयवन्त है। मैं तू हूँ। तू मैं है। इस प्रकार यह स्वयं आत्मा का साक्षात्कार है ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—यह हूँ मैं जयवन्त स्वरूप सोऽहं। तुम मेरे सदृश हो। तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। मैं ज्ञाता हूँ। स्वयं आत्म स्वरूप का दृष्टा हूँ। परद्रव्य से, परभाव से रहित हूँ। मैं स्वयं स्व हूँ ॥ १ ॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार सातवें अध्याय के प्रारम्भ में ही आत्मदर्शन कराया था। उसी प्रकार यहाँ पर भी आत्म साक्षात्कार कराया है। जिसकी खोज में हो वह तो यह है, यही है, यहाँ है। तेरा स्वरूप मेरे में है। मेरा स्वरूप तेरे में है। मैं तू है। तू मैं हूँ। स्वयं हूँ। सोऽहं हूँ। जैसा स्वरूप है जयवन्त है ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

अयं यह सोऽहं समय जयवन्त स्वयं स्वभाव ये।
मैं तू तथा तू मैं अभिन्न स्वरूप सोऽहं भाव ये ॥ १ ॥

महोत्सव का विचार

काके हाथ उत्पन्न महोच्छौ। काके एक आठ हाथ पाती। एक चौबीस हाथ पाती। एक बारह हाथ पाती। जो मोरी पाती फाटी तो हम न जानही। एक चौंसठ हाथ पाती। एक छह हाथ पाती ॥ २ ॥

टीका—कस्य करकमलेनमहोत्सवोत्पन्नः। कस्य करकमलेनैकाष्ट-हस्तप्रमितापत्रिकालेखनं भविष्यति। एकाचतुर्विंशति हस्तप्रमितापत्रिका भविष्यति। द्वादशहस्तैका पत्रिका। या मदीया पत्रिका प्रेषिता तदहं न जानामि। चतुःषष्ठिहस्तैका पत्रिका। हस्तापडेका पत्रिका ॥ २ ॥

काव्य

षडाष्टहस्तप्रमिता द्वादशा चतुर्विंशति।
चतुः षष्ठि पत्रिकैता हस्तमिता लिखापिता ॥ २ ॥

मदीया पत्रिका जाता लिखिता प्रेषिता मया ।
धर्मस्योत्सव सन्देशं पत्रिका प्रेषणं कुरु ।। ३ ।।
अहं न जानामि त्वं च ज्ञात्वा कुरु यथोचितः ।
वानो सर्व दयालोश्च गुरुदेव प्रसादतः ।। ४ ।।

सूत्रार्थ—किसके हाथ से यह महोत्सव उत्पन्न सम्पन्न होगा। किसके हाथ से एक आठ हाथ पाती लिखी जावेगी। एक चौबीस हाथ पत्रिका। एक बारह हाथ पत्रिका। जो मेरी पत्रिका भेजी गई तो फिर हम नहीं जानेंगे, तुम्हीं सम्हालना, एक चौंसठ हाथ पत्रिका। एक छह हाथ पत्रिका ।। २ ।।

टीका अर्थ—किनके करकमलों द्वारा महोत्सव है किनके करकमलों द्वारा एक आठ हाथ पत्रिका लिखी जावेगी। एक चौबीस हाथ पत्रिका। एक बारह हाथ पत्रिका। जो मेरी पत्रिका भेजी गयी तो मैं नहीं जानता सब आपको ही सम्हालना होगा, एक चौंसठ हाथ पत्रिका। एक छह हाथ पत्रिका। कोई भी पत्रिका फटे-टूटे न, सावधानी से भेजना ।। २ ।।

काव्य अर्थ—छह हाथ, आठ हाथ, बारह हाथ, चौबीस हाथ, चौंसठ हाथ, पत्रिकायें लिखाई गई है। मेरी पत्रिका भेज दी गई। धर्मोत्सव के सन्देशों को पत्रिकाओं द्वारा भेजो, मैं नहीं जानता, तुम सब जानकर यथायोग्य करो। सभी वाने दयालु गुरुदेव के प्रसाद से सर्वोत्तम बनेंगे। परिपूर्ण तैयारियाँ अच्छी होंगी ।। २-३-४ ।।

विशेषार्थ—महोत्सव का विचार हो रहा है। बड़ी-बड़ी पत्रिकायें देश-देशान्तरों को जाने वाली हैं। सबको पृथक्-पृथक् कार्यभार दिया जा रहा है। किसके हाथ का महोत्सव है। किसके हाथ से पत्रिकायें होंगी आदि-आदि विचार हो रहे हैं ।। २ ।।

पद्यानुवाद

कर कमल किनके सफल होंगे कर महोत्सव योजना ।
पाती अनेक बड़ी बड़ी उत्साह से सब दो बना ।। २ ।।

बैठक करके विचार कर लो

वानो सर्व दयाल प्रसाद । एतो बापुडे भोरे भोरी
मार्ग । ए तो कछु गुप्तार जानी नाहीं । अरु हमारो
पाती फाटी । आवहु रे भाई ! हम बैठके मतो
कीजे । एतो भोरे भोरी मार्ग साथ आवहिं
जाहिं ॥ ३ ॥

टीका—अत्रत्याः सर्वे वानो इति महोत्सवसम्बन्धिनि विविधिसुन्दर-सामग्रीप्रकारभेदाः परमदयालुसद्गुरुकृपाप्रसादेन सिद्धाः संपन्ना-श्चेति । एते सर्वे साधारणजनाः । सरल मार्गस्थाः । गुप्तवार्तां न जानन्ति । मदीयापत्रिका च प्रेषिता गता । आगच्छन्तु हे बन्धवः । वयं सर्वे मिलित्वा कर्तव्यानुमतिरेका एते सरलजनाः । अनुकरण प्रियाः सन्ति ॥ ३ ॥

काव्य

गुप्तवार्तां न जानन्ति सर्वे सरल भावुकाः ।
पत्रिका प्रेषिता सर्वा अत्रैकानुमतिं कुरु ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—तिलक महोत्सव की सर्व वस्तुयें, सब बाने परमगुरु दयालु की कृपा से सम्पन्न होंगे। ये तो विचारे भोले भोली मार्ग वाले हैं। इन्होंने कुछ रहस्यमय वार्ता जानी नहीं है। और हमारी पत्रिकायें फट चुकी हैं। चली गई हैं। आओ रे भाई ! हम बैठके विचार करें। ये तो भोले भोली हैं। मार्ग में साथ आते हैं और जाते हैं ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—यहाँ के सब बाने अर्थात् महोत्सव सम्बन्धी विविधि सुन्दर सामग्रियों के प्रकार भेद सब परमदयालु सद्गुरुदेव के कृपाप्रसाद से सिद्ध सम्पन्न होंगे। ये सर्व साधारण जन हैं। सरलमार्ग वाले हैं। गुप्त रहस्य को नहीं जानते। हमारी पत्रिका भेज दी गई। आओ रे भाई ! हम सब बैठकर विचार करें। ये तो सरल जन अनुकरण प्रिय हैं ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—गुप्त बात को (आत्म रहस्य को) ये लोग नहीं

जानते। सब सरल हैं। भावुक हैं। हमारी पत्रिका चली गई है, आओ अब एक अनुमति करो ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—जनता तो भोली है। साथ चलने वाली है। वानो सर्व दयालु का है, प्रसाद है। स्वामीजी का आशीर्वाद है। हमारी पत्रिका तो फट चुकी है। अर्थात् भेजी जा चुकी है। अब बैठ करके विचार कर लो। महोत्सव का कार्य सम्पन्न करो ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

वानों-विरद गुरुदेव का है और तो हम अज्ञ जन।
पाती फटीं सब देश देशों में गईं कर लो मथन ॥ ३ ॥

चैत्रवदी दशमी गुरुवार

पृथ्वी आठ। रमण चौबीस। पयोग बारह। अर्ध-
मागधी चौंसठ। वानो सर्व नौ सौ। बारह आठे
छ्यानबे। रमण छह। तिहिमे की चार सौ पाती
के दिन छह। छहरमण की पाती के दिन चैत्र वदी
दसैं गुरौ ॥ ४ ॥

टीका—पृथिवी अष्ट। रमणाश्चतुर्विंशतिः। द्वादशोपयोगाः। चतुःषष्ठ्यर्धमागधी। वानो सर्वे नवशतसंख्यायां। अष्टसंख्यातो गुणिते सति द्वादशसंख्या भवति षण्णवतिः। रमणस्वभावाः षट्। तेषां षट्दिनानि भवन्तिस्म चतुःशत पत्रिका प्रेषणे। षट् रमणस्य पत्रिकायाः दिनं, महोत्सवस्य वा निश्चित दिनमिति। चैत्र कृष्ण दशमि गुरौ ॥ ४ ॥

काव्य

अष्ट संख्यायां पृथिवी रमणश्चतुर्विंशतिः।
उपयोगो द्वादशश्च चतुःषष्ठ्यर्धमागधी ॥ ६ ॥
अन्तर्बाह्योत्सवं पश्य व्यवहारे वा निश्चये।
इत्यादि सामग्रीसूत्रे वर्णिता विधिवद्विधौ ॥ ७ ॥
चैत्रकृष्णदशम्यां च दिवसे गुरुवासरे।
उत्सवे निसईक्षेत्रे तिलके फागफूलना ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ—चित्रादि आठ पृथिवी। अर्क रमण चौबीस। उपयोग बारह। चौंसठ अर्धमागधी। बानी सर्व नौ सौ। बारह आठे छ्यानवे। रमण छह। उसमें चार सौ पत्रिका के दिन छह। छह रमण की पाती के दिन चैत्रवदी दशमी गुरुवार॥ ४॥

टीका अर्थ—आठ पृथिवी। अर्क रमण चौबीस। द्वादशोपयोग। चौसठ अर्धमागधी। नौ सौ सर्व बाने। बारह आठे छ्यानवे। रमण छह। उसमें की चार सौ पत्रिका के दिन छह। छह रमण की पत्रिका के महोत्सव का दिन चैत्रवदी १० गुरुवार है॥ ४॥

काव्य अर्थ—पृथिवी ८, रमण २४, उपयोग १२, अर्धमागधी ६४॥ ६॥

इस अन्तरंग बहिरंग महोत्सव को निश्चय में और व्यवहार में देखिये। इत्यादि सामग्री को विधिवत महोत्सव की विधि में सूत्र में वर्णन किया गया है॥ ७॥

चैत्र कृष्ण दशमी दिन गुरुवार को तिलक महोत्सव में श्रीनिसईजी क्षेत्र पर फाग-फूलना का समय जानों॥ ८॥

विशेषार्थ—महोत्सव की तैयारी हो रही है। सब ६ दिन में ४०० पत्रिकायें भेजी गईं। इधर अन्तरंग में गुरुदेव की विचार साधना, अपने पिण्डस्थध्यान में आठ पृथिवी, चौबीस अर्क रमण, द्वादशोपयोग, ६४ अर्धमागधी का विचार कर रहे हैं। समवशरण लगा है। महोत्सव के सब बाने- सामग्री की सूची में ९०० हो गये, बारह चीजें तो प्रत्येक के आठ-आठ नग के रूप में ९६ होंगी। छह कमल के छह रमण हैं, इनका ही तो महोत्सव है। महोत्सव की मिती श्रीनिसईजी पर फागफूलना के समय चैत्र वदी १० गुरुवार होगी। यह महोत्सव व्यवहार और निश्चय की संधि का विवेक पूर्ण ध्यान रखते हुये होगा। दोनों का साधन होगा॥ ४॥

पद्यानुवाद

गुरुदेव निज के रमण में हैं, रमण की पाती गई।
छह दिनों में चार सो पाती गईं मिति आ गई॥ ४॥

साधनाओं के दिन

योगध्यान दिन छह। पूषवदि दिनदोई। उत्पन्न मिलन दिन तीन। उत्पन्न रमण दिन तीन। उत्पन्न चतुष्टय दिन चार। पूषवदि दिन दोई। उत्पन्न शाह दिन एक। हुन्तकार दिन तीन। हितकार चौबीस। उत्पन्न स्वभाव। मिलन रमण। अनन्त अवगाह। अन्मोद ध्रुवस्थापन। उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ। अनन्त प्रवेशी। अचिन्त्य चिन्तामणि। अबलबली। हितकार चौबीस। हुन्तकार उत्पन्न ॥ ५ ॥

टीका—योगध्यानदिनानि षट्। पौषकृष्णपक्षस्य दिने द्वे। दिनत्रीणि-उत्पन्न मिलनस्य। उत्पन्नरमणस्यापि दिनानि त्रीणि। चतुर्दिनानि-उत्पन्न चतुष्टयस्य। दिनैकोत्पन्नशाह् समयस्य। हुन्तकारस्य दिनानि त्रीणि। हितकार चतुर्विंशतिः। उत्पन्न स्वभावः। रमण मिलनं। अनन्तावगाहः। अन्मोद ध्रुवस्थापनं। उत्पन्न त्रैलोक्यनाथः। अनन्तेप्रविष्टः अचिन्त्यचिन्तामणिः। अबलबलिः। हितकाराश्चतुर्विंशतिः। हुन्तकारोत्पन्नः ॥ ५ ॥

काव्य

योगध्यान दिनानि षट् पौषकृष्ण दिनद्वयं।
त्रिमिलनस्योत्पन्नश्च त्रिरमणोत्पन्नस्तथा ॥ ९ ॥
चतुश्चचतुष्टयस्य शाहोत्पन्नैक वा दिनं।
त्रिदिनं हुन्तकारस्य हितकारो विंशश्चतुः ॥ १० ॥
उत्पन्नस्य स्वभावस्य मिलनं रमणस्य च।
अनन्तऽवगाहनं च स्वान्मोयमनुभूति सा ॥ ११ ॥
ध्रुवस्थाप स्वभावे च उत्पन्ने हि प्रवेशकः।
त्रैलोक्यनाथ स्वभावे प्रविष्टोऽहमनन्तके ॥ १२ ॥

चिन्तामणिरचिन्त्यो हि स्वभावश्चाबलोबलो।
चतुर्विशो हितंकारो हुन्तकारोत्पन्न स्वयं ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—योगध्यान दिन छह्। पूषवदी के दिन दो। उत्पन्न मिलन के दिन तीन। उत्पन्न रमण के दिन तीन। उत्पन्न चतुष्टय के दिन चार। पूषवदी के दिन दो। उत्पन्न शाह् दिन एक। हुन्तकार दिन तीन। हित-कार चौबीस। उत्पन्न स्वभाव। मिलन रमण। अनन्त अवगाह्। अन्मोद ध्रुवस्थापन। उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ। अनन्त प्रवेशक। अचित्य चिन्तामणि। अबलबली। हितकार चौबीस। हुन्तकार उत्पन्न ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—योगध्यान दिन छह्। पौषकृष्ण पक्ष के दिन दो। उत्पन्न मिलन के दिन तीन। उत्पन्न रमण के दिन तीन। उत्पन्न चतुष्टय के दिन चार। उत्पन्न शाह् दिन एक। हुन्तकार दिन तीन। हितकार चौबीस। उत्पन्न स्वभाव। रमण मिलन। अनन्त अवगाहन। अन्मोद ध्रुवस्थापन। उत्पन्न त्रैलोक्यनाथ। अनन्त प्रवेशी। अचिन्त्य चिन्तामणि। अबलबली। हितकार चौबीसी। हुन्तकारोत्पन्न ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—योगध्यान दिन छह्। पौषकृष्ण पक्ष के दिन दो। तीन मिलन के। तीन रमण के। चतुष्टय के चार। उत्पन्न शाह् दिन एक। हुन्तकार दिन तीन। हितकार चौबीस। उत्पन्न स्वभाव। मिलन रमण। अनन्त अवगाह्। अन्मोद ध्रुवस्थापन। अनन्त प्रवेश। उत्पन्न त्रैलोक्य-नाथ। अचिन्त्य चिन्तामणि। अबलबली स्वभाव। चौबीस हितकार। हुन्तकारोत्पन्न स्वयं स्वभाव ॥ ९-१०-११-१२-१३ ॥

विशेषार्थ—कौन सी साधना कितने दिन में पूरी हुई, सूत्र में सब स्पष्ट है। हितकार चौबीसी के भेद हैं—उत्पन्न अर्थ परमेष्ठी १२, हितकार अर्थ परमेष्ठी ६, सहकार अर्थ परमेष्ठी ६ ऐसे सब २४ भेद हितकार पर-मेष्ठी के हैं। २४ तीर्थंकर भी अर्थ हैं ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

साधना के दिन बताये सूत्र में सब सूक्ष्म हैं।
निजभाव को पहिचान लें यह भाव कितना सूक्ष्म है ॥ ५ ॥

प्रियस्वभाव उत्पन्न प्रवेश

दयाल प्रसाद। अनन्त अवगाहन। प्रिय स्वभाव उत्पन्न प्रवेश। उत्पन्न समय स्वयमेव। अविष्ट विष्ट ॥ ६ ॥

टीका—दयालोः प्रसादेन अनन्तावगाहनं। प्रियशुद्धस्वभावः स्वात्मन्युत्पन्नः प्रविष्टोऽहं तस्मिन्नेव। उत्पन्न समयः स्वयमेव। अदृष्टो दृष्टः ॥ ६ ॥

काव्य

स्वयमेवोत्पन्नो भावः समयादृष्ट दृष्टितः।
समयोत्सवे चेन्द्रादिः स्वयमेवागताश्च ते ॥ १४ ॥

प्रिय स्वभावो भावे प्रवेशः,
अवगाहनं स्वानन्ते निवेशः।
प्रियप्रसादं प्राप्तोऽसि भव्य,
स्वस्य स्वरूपः स्वयमेव प्राप्तः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—दयालु की कृपा से अनन्तावगाहन, प्रिय स्वभाव, उत्पन्न प्रवेश प्राप्त हुआ। स्वसमय स्वयमेव ही उत्पन्न हुआ है। अदृष्ट को देखा ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—दयालु के प्रसाद से अनन्तावगाहन हुआ। प्रिय शुद्ध स्वभाव अपने आत्मा में उत्पन्न हुआ। तथा उसमें मैं प्रविष्ट हुआ। स्वसमय स्वयमेव उत्पन्न हुआ है। अदृष्ट को देखा ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—स्वयमेव उत्पन्न भाव, अदृष्ट समय का दर्शन। समय के महोत्सव में इन्द्रादिदेव स्वयमेव ही आये ॥ १४ ॥

प्रियस्वभाव का अपने भाव में प्रवेश, अवगाहन, अनन्त स्वभाव में निवेश, यह सब प्रिय प्रसाद है। जो तुझे प्राप्त है। अपना स्वरूप अपने आप प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—गुरु परमदयालु परमोपकारी का प्रसाद है। अनन्त

अवगाहन और प्रियस्वभाव के उत्पन्न में प्रवेश का यह समय स्वयमेव उत्पन्न हुआ है। ऐसा कभी देखा नहीं जो अब देख लिया। यही अदिष्ट दिष्ट है ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

गुरुदेव की है कृपा अवगाहन अनन्त स्वभाव का।
प्रिय में प्रवेश अदृष्टदृष्ट बना महोत्सव भाव का ॥ ६ ॥

स्वसमय के महोत्सव में सब आये

इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व जक्ष राक्षस भूत पिशाच गुह्यक
उत्पन्न अनन्त। उत्पन्न समय महोच्छो आये ॥ ७ ॥

टीका— इन्द्रधरणेन्द्रगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचगुह्यकोत्पन्नानन्तभेदाश्च देवनिकाये। ते सर्वे समयमहोत्सवे समवशरणे, महामहोत्सवेनागताः ॥ ७ ॥

काव्य

शुद्धात्मनः स्वभावस्य यदान्तर्महिमोत्सवः।
बाह्ये जगति देवादौ स्वयमेव महोत्सवः ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिचाश गुह्यक आदि भेदों के कारण देवपर्याय के अनेक भेदों में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। और इन्द्रादि देव महामहोत्सव के साथ समवशरण में आते हैं ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिचाश गुह्यकादि में उत्पन्न अनन्त जीवों की अपेक्षा है, भेद अनेक हैं। वे सब देव समय के महोत्सव में समवशरण में वैभव के साथ आते हैं ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—शुद्धात्मा के स्वभाव का जब अपने अन्तरंग में महोत्सव होता है, तब बाह्यजगत में देवादि समस्त जीवों में स्वयं महामहोत्सव होते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—आत्म स्वरूप के महोत्सव में सभी आते हैं। जैसे समवशरण में देवसमूह आकर धर्म लाभ करते हैं। उसी प्रकार इस धर्म सभा

में भी सभी भेदरहित, जीवमात्र धर्म लाभ लेवें। आत्मा अपने स्वभाव में जागृत होवे तो बाहर के जगत में तो अपने आप चमत्कार होता है ॥ ७॥

पद्यानुवाद

ये इन्द्र अरु धरणेन्द्र सब गन्धर्व आदिक शक्तियाँ।
शुद्धात्मा के चरण में करते महोत्सव भक्तियाँ ॥ ७ ॥

वहाँ तीन छत्र वहाँ एक-एक छत्र

छत्र तीन स्वयमेव उत्पन्न हुई आये। दुन्दुही शब्द। ऐरावत संयुक्त। साड़े बारह क्रोड़ि बाजे बाजंहि। सहित छत्र चमर सिंहासन, नौ निधि चौदह रयण, मणिमाणिक हीरा पदार्थ जड़ित आरते अनन्त उत्पन्न महोच्छो आये। महोच्छो कियो। वेशक प्रमाण के बैठारे। दियो वेशक उत्पन्न प्रवेश। छत्रश्वेत उज्ज्वल उत्पन्न के माथे दियो। छत्र एक कमलावती जु के माथे दियो। छत्र एक रुइयाजिन के माथे दियो ॥ ८ ॥

टीका—स्वयमुत्पन्नं छत्रत्रयं। दुन्दुभिशब्दः ऐरावतगजराजसंयुक्तश्च, सार्धद्वादशकोटिवादित्राणांध्वनिर्भवति समवशरणे। छत्रचामरसिंहासनादि नवनिधिचतुर्दशरत्नमणिमाणिकरत्नपदार्थ जटितारते अनन्तोत्पन्नाः महोत्सवे आगताः। तैश्च सर्वैः कृतो महोत्सवः। इति समवशरणे छत्रादि निरूपणम्। अथ श्रीगुरुदेव समवे तेषां परिषदिमहोत्सवेच—निःसन्देह प्रमाणपूर्वक सविनयबहुमानपुरःसरं सिंहासने विराजमानं कुर्वन्ति श्रीगुरुदेव महामहिममहोदयान्। निःशंकरूपेण प्रदत्तोत्पन्न प्रवेश प्रसादश्च तैः श्रीगुरुदेवैः। छत्रश्वेतोज्ज्वलं द्वादशांगश्रुतस्वरूप चतुर्दशग्रन्थाणामुपरिमस्तके च विभूषितं पट्टशिष्या श्री कमलावती श्रीणामुपरिमस्तके च छत्रैकं विभूषितं। रुइयाजिनस्योपरि च कृतं छत्रमेकं ॥ ८ ॥

काव्य

स्वयमेवागत छत्रत्रयं, च शब्दं करोति दुन्दुभिः ।
ऐरावत संयुक्तः सार्धद्वादश च कोटि वादित्रं ॥ १७ ॥
छत्रचामर संयुक्ताः निधिरत्न सिंहासनम् ।
मणिमाणिक्यरत्नादि पदार्थ जटितारते ॥ १८ ॥
महोत्सवानन्तभावे आगताश्च कृतोत्सवः ।
स्वभावेऽपि स्वयं शुद्धे एवं हि महिमोत्सवः ॥ १९ ॥
निशंक सप्रमाणं निःसंदेहोत्पन्न देशना दत्ता ।
छत्रं श्वेतोज्ज्वल शुभमुत्पन्ने द्वादशांग शिरसि दत्तं ॥२० ॥
कमलावतेः शिरसि वा रुइयाजिन शिरसि छत्रैकं ।
शुद्धस्वरूप चिन्मय सन्मुखता लेहु रे भव्य ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—छत्र तीन स्वयमेव उत्पन्न होकर आये दुन्दुभियों के शब्द गूँज रहे हैं। ऐरावत सहित आये। १२॥ कोटि वादित्रों की मधुरध्वनि होती है। छत्र, चमर, सिंहासन, नवनिधि, चौदह रत्न, मणिमाणिक, हीरापदार्थ जड़ित आरते अनन्त उत्पन्न महोत्सव में आये। महोत्सव किये। निःशंक प्रमाणपूर्वक विराजमान किये। निःसंदेह उत्पन्न प्रवेश दिया। छत्रश्वेत उज्ज्वल जिनवाणी के माथे दियो, एक गुरुदेव पर दिया, छत्रैक कमलावती जी के माथे दिया। छत्र एक रुइयाजिन के माथे दिया ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—स्वयं उत्पन्न तीन छत्र। दुन्दुभि शब्द ऐरावत गजराज संयुक्त, १२॥ करोड़ बाजे समवशरण में बजते हैं। छत्र, चमर, सिंहासनादि नवनिधि, १४ रत्न, मणि-माणिक्य, रत्नपदार्थजड़ित आरते अनन्तोत्पन्न महोत्सव में आये। और सब ने महोत्सव किया। इस प्रकार समवशरण में छत्र आदि का निरूपण किया। अब श्रीगुरुदेव के समय में, उनके सभा महोत्सव में और निःसंदेह प्रमाणपूर्वक सविनय बहुमान सहित सिंहासन पर विराजमान किया। श्रीगुरुदेव महिमा महान् महोदय के द्वारा निःशंक रूप से दिया गया उत्पन्न प्रवेश प्रसाद सब ने स्वीकार किया। छत्रश्वेत

उज्ज्वल द्वादशांग श्रुतस्वरूप १४ ग्रन्थों के ऊपर विभूषित हुआ। प्रमुख शिष्या श्री कमलावती जी के माथे पर भी एकछत्र विभूषित हुआ। रुइयाजिन के माथे एक छत्र दिया ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—स्वयमेव आगत छत्रत्रय। दुन्दुभिशब्द। ऐरावत संयुक्त, निधि, रत्न, सिंहासन, मणि, माणिक, रत्नादि पदार्थ जड़ित आरते अनन्त भाव के महोत्सव में आए, महोत्सव किया। ऐसा ही महोत्सव अपने स्वभाव में करना चाहिये। निशंक, सप्रमाण, निःसंदेह रूप में उत्पन्न देशना का प्रसाद प्रदान किया। छत्रश्वेत उज्ज्वल शुभ उत्पन्न-जिनवाणी एवं स्वामीजी के माथे दिया। कमलावती और रुइयाजिन के माथे एक एक छत्र दिये ॥ १७-१८-१९-२०-२१ ॥

विशेषार्थ—समवशरण के वर्णन में तीन छत्र आये। यहाँ भी सभा में तीन छत्र आये। गुरुदेव एवं द्वादशांग वाणी पर तथा प्रमुख शिष्या कमलावती जी एवं रुइयाजिन जी के शिर पर एक एक छत्र दिया गया। इससे इन दोनों शिष्यों की महानता विदित होती है। सभी अध्यायों में ग्रन्थराज में तो उक्त दोनों शिष्यों को अत्यन्त महत्त्व दिया है ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

जिनराज का फिर समवशरण स्वरूप वर्णन आप में।
कमलावती रुइयारमण बाहर, महोत्सव आप में ॥ ८ ॥

बड़े बड़े कहाँ पाऊँ

छत्रधारि भक्तावती। छत्रधारि सुवनावती। छत्रधारि रमणावती। चमर ढार अगम जिन। चमर ढार रमण श्रेण। चमर ढार विगस रंज। जो मैं थापो सो प्रमाण। आजु बड़े बड़े कहाँ पाऊँ। मोरे बड़े आज ये ही हैं जो मोरो महोच्छव करत होंहि। जो महोच्छो मोरो करतु हो सो मोरो अस्थाप को करहु ॥ ९ ॥

टीका—छत्रधारिणी भक्तावती। छत्रधारिणी सुवनावती। छत्र-धारिणी रमणावती। चामरं धुनोति जिनोऽगमः। चामरं धुनोति रमण-श्रेणिः। चामरं धुनोति विगसरंजः। यन्मया स्थापितं तत्प्रमाणं। इदानी-न्तनं तु महान्तो जनानां कुत्र प्राप्तिरस्ति! मदीयाः महान्तोजनाश्चाद्य एते ये सन्ति ये मम महोत्सवं कुर्वन्ति। यन्मम महोत्सवं कुरुत, तदेव मम स्थापस्य कुरुत ॥ ९ ॥

काव्य

छत्रधारिणी भक्ता च सुवना छत्रधारिणी।
रमणावती सछत्रा त्रयश्चामरधारिणः ॥ २२ ॥
अगमोजिनो विगसो रंजो रमण श्रेणि सः।
मया स्थापितं प्रमाणं प्रमाणं स्वस्य साधनम् ॥ २३ ॥
अद्य श्रीमन्तो महन्तः सर्वे हि कुत्र सन्ति ते।
इमे महान्तो मदीयाः यन्महोत्सवकारिणः ॥ २४ ॥
महोत्सवं मा कुरु रे! त्वं स्थापस्य सदा कुरु।
सन्मुखे स्व स्वभावस्य भव त्वं शीघ्रमेव हि ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—छत्रधारिणी भक्तावती है। छत्रधारिणी सुवनावती है। छत्रधारिणी रमणावती है। अगमजिन चमर ढारते हैं। रमणश्रेणि चमर ढारते हैं। विगस रंज चमर ढारते हैं। जो मैंने स्थापित किया है सो प्रमाण है। आज बड़े-बड़े कहाँ पाऊँ। मेरे बड़े आज ये ही हैं जो मेरा महोत्सव करते हैं। जो महोत्सव मेरा करते हो सो मेरे अस्थाप का करो ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—छत्रधारिणी भक्तावती हैं। छत्रधारिणी सुवनावती हैं। छत्रधारिणी रमणावती हैं। अगमजिन चमर ढारते हैं। रमणश्रेणि चमर ढारते हैं। विगस रंज चमर ढारते हैं। जो मैंने स्थापित किया है वह प्रमाण है। आज इस समय बड़े-बड़े जन कहाँ पायें! हमारे बड़े ये ही हैं जो हमारा महोत्सव करते हैं। जो महोत्सव मेरा करते हो सो मेरे इस अस्थाप का करो ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—छत्रधारिणी भक्तावती, सुवनावती, रमणावती हैं। अगम जिन, विगस रंज, रमणश्रेणि ये चमर ढारते हैं। मेरा स्थाप प्रमाण है। अपनी साधना प्रमाण है। आज बड़े-बड़े कहाँ पावें। यही बड़े हैं जो महोत्सव करते हैं। मेरा महोत्सव मत करो। मेरे अस्थाप का करो। और अपने आत्मस्वभाव के सन्मुख शीघ्र हो जाओ॥ २२-२३-२४-२५ ॥

विशेषार्थ—चँवर-छत्र धारण करने वालों के नाम हैं। महोत्सव करने वाले यही मेरे बड़े हैं इन शब्दों के मार्मिक भाव को और अपने शिष्यों के प्रति सन्मान के भाव को गम्भीरता से विचारें। अपने श्रीसंघ से गुरुदेव अत्यन्त सन्तुष्ट थे ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

छत्र धारण कर रहीं भक्तावती सुवनावती।
चँवर ढारें अगम जिन आदिक अहो ! रमणावती ॥ ९ ॥

अपने स्वभाव से परिचय करो

जो जैसे प्रचै उत्पन्न स्वभाव। प्रचै प्रवेश उत्पन्न
महोच्छो अनन्त अन्मोद। परिचय प्रवेश। नय
परिचित किये, मुक्ति प्रवेश ५५३३१९ ॥ १० ॥

टीका—ये यथा परिचयोत्पन्नस्वभावे ते परिचयोत्पन्नमहोत्सवेऽनुमोदानन्देऽनन्ते च। परिचयैव प्रवेशनयपरिचिते कृते सति मुक्तिप्रवेशः। पंचलक्षास्त्रिपंचाशत्सहस्त्रास्त्रिशतैकोनविंशतिर्मुक्ति पात्राः॥ १० ॥

काव्य

यथा स्वभावं सो जानाति भव्यः,
तथा प्रवेशं च करोति भावे।
महोत्सवानन्त स्वरूप रूपे,
नयं विजानाति स मुक्तिपात्रः॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—जो अपने स्वभाव से जैसे परिचय उत्पन्न करते हैं। वह वैसे ही परिचयोत्पन्न महोत्सव को अनन्त अनुमोदना को प्राप्त करते हैं ।

और परिचित स्वभाव में प्रवेश करते हैं। नयों से परिचित होने में मुक्ति-पात्रता प्राप्त होती है। ५५३३१९ ये मुक्ति के पात्र भव्यजीव हैं ॥ १० ॥

टीका अर्थ—जो जैसे अपने स्वभाव में परिचय उत्पन्न करते हैं, वे परिचयोत्पन्न महोत्सव में अनन्त अनुमोदना को प्राप्त होते हैं। परिचय ही प्रवेश है। नयों को परिचित करने से मुक्ति का प्रवेश प्राप्त होता है। ५५३३१९ मुक्ति के पात्र हैं ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—भव्य जीव जैसे-जैसे अपने स्वभाव को जानता है, तैसे-तैसे ही अपने भीतर के भाव में प्रवेश करता है, अपने अनन्त स्वरूप के महोत्सव को प्राप्त करता है। मुक्ति पात्र जीव ही नय विभाग को विवेक पूर्वक जानते हैं ॥ २६ ॥

विशेषार्थ—अपने स्वभाव से जो जैसा परिचय उत्पन्न करेगा उसकी योग्यता के अनुसार पात्रता होगी। महोत्सव का कारण आत्मा का परिचय है। अतएव अपने आपसे परिचय करो। नयों से परिचय होने पर मुक्ति की पात्रता होगी। ५५३३१९ ये सब जीव मुक्ति के पात्र हैं ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

मेरा महोत्सव मत करो अस्थाप का ही कीजिये।
परिचय स्वयं चिद्रूप का अन्मोद भर-भर लीजिये ॥ १० ॥

तसलीम किये

बहुत को पूछहि। मैं तो कमलावती अरु कइयाजिन कों तसलीम किये। हों तुम ही पै पूछिहों, जो तुम कियो सो प्रमाण के मानिऊँ। पंच लक्ष, त्रेपन सहस्र को तो तुम्हारो दामन पकड़िऊ ॥ ११ ॥

टीका—कोऽधिकं पृच्छेत्? अहं तु कमलावतीं च कइयाजिनं प्रमाणरूपेण स्वीकरोमि। अहं पृच्छामि, यत्त्वया कृतं तत्प्रमाणं कृत्वा मन्येऽहं। पंचलक्षत्रिपंचाशत्सहस्राणां जीवानां दामनं गृहीतं भवद्भिः ॥ ११ ॥

काव्य

रुइयाजिनं तां कमलावतीं च,
प्रमाण रूपेण हि स्वीकरोमि ।
त्वयाकृतं यत्तत्सत्प्रमाणं,
त्वमाश्रयो भव्य ! विशाल संघम् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ—बहुत कौन पूछे ? मैं तो कमलावती और रुइयाजिन को प्रमाण किया । मैं तुमसे ही पूछता हूँ । जो तुम किया सो प्रमाण करके मानता हूँ । ५५३३१९ जीवों ने तुम्हारा दामन पकड़ा है ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—अधिक कौन पूछे ? मैं तो कमलावती और रुइयाजिन को प्रमाण रूप से स्वीकार करता हूँ । मैं आप सबसे पूछता हूँ । जो तुमने किया वह प्रमाण करके मानता हूँ । ५५३३१९ जीवों ने तुम्हारा दामन पकड़ा है ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—रुइयाजिन और कमलावती को प्रमाण रूप से मानता हूँ । जो तुमने किया वह सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है । इस विशाल श्रीसंघ के तुम ही आश्रय हो ॥ २७ ॥

विशेषार्थ—कमलावती और रुइयाजिन को प्रमाण माना और यहाँ तक कि मैं भी तुमसे पूछूंगा । तुम्हारा किया प्रमाण मानूंगा । उक्त दोनों शिष्यों का पल्ला तो ५५३३१९ ने पकड़ा है । इसलिये इन्हें प्रमाण माना । तसलीम किया ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

कमलावती रुइयारमण को हो प्रमाण किया यहाँ ।
फिर पूछना ही क्या रहा, दामन तुम्हारा है जहाँ ॥ ११ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

ॐ

नवमोऽध्यायः

दो सौ सोलह स्वभाव

त्रैलोक्यमण्डन उत्पन्न स्वभाव। पयपूजा उत्पन्न चतुष्टय चार। त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी। हृदय अरिहन्त स्वभाव। हृदय आभरण। हृदय स्थापन। हृदय उत्पन्न। त्रैलोक्य उत्पन्न। अंकूर आचरण। आराध्य, आलाप, लोक, अवलोक, असह् साह् उत्पन्न। उत्पन्न असह् साह् उत्पन्न। उपदेश प्रवेश। दो सौ सोलह स्वभाव। बहत्तरि दो सौ सोलह स्वभाव ॥ १ ॥

टीका—त्रैलोक्यमण्डनस्त्रैलोक्यभूषणस्वभावः शुद्धात्मस्वरूपोऽयमुत्पन्नः प्रकटितश्चेति। पयपूजा स्वशुद्धपदपूजा, पयद्वादशजिनादि पयस्वभावेन पुनाति चित्तमनेनेतिपूजा, पयपूजा। अनयापूजयोत्पन्नः स्वचतुष्टयश्चत्वारः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावस्वरूपैः ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपैर्वा। त्रैलोक्यनाथोऽहं शुद्धात्मास्वानन्तस्वरूपे प्रवेशकोऽस्मि। हृदिवर्ततेऽरहन्त स्वभावः। हृदयाभरण स्वभावः सः। हृदिस्थापितोऽरहन्त स्वभावस्त्रैलोक्यमंडनशृंगार स्वभावः। हृद्युत्पन्नः सः स्वभावः। त्रैलोक्योत्पन्नो ज्ञाने प्रकाशितो वा। अंकुरश्च स्वरूपाचरण स्वभावः। आराधनीयः। आलापोच्चारणीय स्वभावः। लोकनीयावलोकनीयश्च। असह्यचित्पिण्डप्रचण्डस्वभावः शाहस्वरूपोत्पन्नः। उत्पन्नासह्यशाहस्वरूपोत्पन्नः। उपदेशवृष्टि प्रवेशः। द्विशतषोडश स्वभावाः। द्विसप्ततिद्विशतषोडश स्वभावाश्च ॥ १ ॥

काव्य

त्रैलोक्यमण्डन स्वभाव चिदात्मनस्तु,
पूजापय: स्वपद भाव चतुष्टयस्य।
त्रैलोक्यनाथ, जिन चिन्मय स्वप्रवेशो,
शुद्धोपयोग महिमात्मनि शुद्धदृष्टि: ॥ १ ॥
स्वात्मानुसार हृदि त्वं कुरु स्वार्हतां च,
हृद्भावरूप निजभाव स्वभूषणं च।
स्वस्थापनं च तिलकं हृ त्पन्नभावं,
स्वस्य स्वरूपचरणाचर ! स्व स्वभावं ॥ २ ॥
जागृत शाह स्वभावो निजवेशो प्रवेशनम्।
द्विशत षोडशाः भावा: प्रतिभावे द्विसप्तति ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—तीन लोक का भूषण शुद्धस्वभाव आत्मा में उत्पन्न हुआ। स्वपद पूजा, द्वादश पयपूजा स्वचतुष्टयों के उत्पन्न करने में हेतु है। मेरा त्रैलोक्यनाथ अपने अनन्त स्वरूप में प्रवेश करने वाला है। हृदय में अरहन्त स्वभाव है। वह स्वभाव हृदय का भूषण है। हृदय में स्थापन करने योग्य है। हृदय में उत्पन्न होता है। उसमें तीन लोक उत्पन्न होते हैं। उस शुद्धस्वभाव को उत्पन्न करने के लिये आचरण का अंकुरारोपण करो। वह आराध्य है। वह आलाप (अन्तर्ध्वनि) है। लोकनीय है, अवलोकनीय है। असह्य शाह उत्पन्न हुआ। उत्पन्न असह्य शाह उत्पन्न हुआ। देशनालब्धि उत्पन्न हुई। उपदेश में प्रवेश किया। दो सौ सोलह स्वभाव प्रगट हुये। बहत्तर बार प्रत्येक स्वभाव का विचार करो ॥ १ ॥

टीका अर्थ—त्रैलोक्यमण्डन, तीन लोक का भूषण स्वभाव शुद्धात्मा का स्वरूप यह प्रगट हुआ। उत्पन्न हुआ। पयपूजा, स्वशुद्धपदपूजा, द्वादशपय जिनादि पय बारह स्वभाव से चित्त को पवित्र करने वाली होने से यह पूजा है। पयपूजा है। इस पूजा से उत्पन्न चतुष्टय चार की प्राप्ति होती है। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव रूप में स्वचतुष्टय अथवा ज्ञानादि अनन्त चतुष्टयों के रूप में स्वचतुष्टय दोनों ही स्वपदपूजा से प्रगट होते हैं।

त्रैलोक्यनाथ में शुद्धात्मा अपने अनन्त स्वरूप में प्रवेश करने वाला हूँ। हृदय में अरहन्त स्वभाव है। हृदय का वह आभरण है। हृदय में स्थापित वह त्रैलोक्यमंडन स्वभाव है। हृदय में ही उत्पन्न वह स्वभाव है। तीन लोक उस स्वभाव में प्रकाशित होता है। उस स्वभाव का अंकुर स्वरूपाचरण है। वही आराधनीय है। उच्चारणीय है। लोकनीय, अवलोकनीय है। असह्यचिंत्पिण्ड प्रचंड स्वभाव शाह स्वरूप उत्पन्न हुआ है। उपदेश दृष्टि (देशनालब्धि) का प्रवेश हुआ। दो सौ सोलह स्वभाव हैं। बहत्तर बार दो सौ सोलह स्वभाव हैं॥ १ ॥

काव्य अर्थ— त्रैलोक्य मण्डन स्वभाव चैतन्य आत्मा का स्वभाव है। स्वपदपूजा, पयपूजा स्वचतुष्टय का कारण है। त्रैलोक्यनाथ जिन चिन्मय अपने स्वरूप में ही प्रवेश कर सकता है। शुद्धोपयोग की महिमा है। आत्मा आत्मा में शुद्धदृष्टि है॥ १ ॥

आत्मस्वभाव के अनुसार अपने हृदय में योग्यता हो। और हृदय के अनुसार निजभाव का भूषण हो। अपना स्थापन और तिलक अपने भाव में ही उत्पन्न होता है। तथा अपने स्वरूपाचरण का आचरण हो अंकुरारोपण है॥ २ ॥

जागृत शाह स्वभाव ही अपने देश प्रदेश उपदेश में प्रवेश करता है। दो सौ सोलह स्वभाव हैं। प्रत्येक भाव के ७२ भेद हैं॥ ३ ॥

विशेषार्थ—दो सौ सोलह स्वभाव। एक सौ आठ और एक सौ आठ ऐसे दो सौ सोलह स्वभाव, समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ को मन वचन काय से गुणा किया नौ हुये। इनको फिर कृत, कारित, अनुमोदन से गुणा किया सत्ताईस हुये। इन्हें फिर चार कषायों से गुणा किया तो एक सौ आठ हुये। और इन पाप स्वरूप भावों के त्याग करने पर इनसे विपरीत शुभरूप १०८ भाव पुण्यभाव हुये। पुण्य भाव १०८, पाप भाव १०८, दोनों मिलकर २१६ भाव जीव के होते हैं। अब इन २१६ भावों से भी जीव को अलग करने वाले भाव २१६ हैं। सो श्री गुरु महाराज की आज्ञानुसार इस प्रकार हैं—

छत्तीस अर्क और छह कमल हैं। छत्तीस अर्कों को ६ कमल से गुणा करने पर २१६ होते हैं। ये भाव शुद्धोपयोग के हैं। शुभाशुभ, पुण्यपाप से रहित हैं। अब इनके भी आगे सूक्ष्म भेदों को गुरु महाराज ने रमण बहत्तरी से गुणा करके उत्तर भेदों का विचार किया है। सो आगे हजारों और उत्तरोत्तर लाखों, करोड़ों व अन्त में अनन्त भावों को अपने स्वभाव में अनुभव किया है ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

त्रैलोक्य मंडन आत्मा का शुद्धभाव बनाइये।
अरहंत पद के भाव को निज हृदय में ठहराइये ॥ १ ॥

शून्य स्वभाव

गम्य अगम्य अथाह अगह अलह अभय भयरहित सहज सुकीय उत्पन्न। बालाग्र कोड मितं। अनन्तानन्त, अनन्तानन्त, अनन्तानन्त, अनन्तानन्त। अनन्त उत्पन्न प्रवेश। तं दिप्त शून्य स्वभाव। बंधान विलयं यान्ति ॥ २ ॥

टीका—चैतन्यस्वभावः शून्यस्वभावः कीदृगस्ति ? गम्यः। अगम्यः। अथाहः। अगहः। अलहः। अभयः। भयरहितः। सहजः। स्वकीयः। उत्पन्नो बालाग्रकोडमितः। अनन्तानन्तः। अनन्तानन्तः। अनन्तानन्तः। अनन्तानन्तः। अनन्तोत्पन्न प्रवेशः। तं दिप्तशून्यस्वभावं जानीहि ! तेन कर्मबन्धविलयं यान्ति ॥ २ ॥

काव्य

गम्यागम्याथाहोऽगहोऽलहोऽभय स्वकीय सहजादिः।
बालाग्रकोडमित सः उत्पन्नानन्त भावमग्नः सः ॥ ४ ॥
तं दिप्तशून्यभावः दिव्यो निजभाव शुद्ध समभावः।
विलयति कर्मप्रबन्धं शुद्धः शुद्धोपयोगः सः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ—गम्य, अगम्य, अथाह, अगह, अलह, अभय, भयरहित,

-सहज, स्वकीय, उत्पन्न, बालाग्रकोडमित वह चैतन्यभाव अनन्तानन्त है, अनन्तानन्त है, अनन्तानन्त है, अनन्तानन्त है, उत्पन्न प्रवेश स्वभाव, दिप्तशून्य, शून्यस्वभाव से कर्मों के बन्धन बिलय को प्राप्त होते हैं। नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

टीका अर्थ—चैतन्य स्वभाव शून्य स्वभाव कैसा है?—गम्य है। अगम्य है। अथाह है। अगह है। अलभ्य है। अभय है। भयरहित है। सहज है। स्वकीय है। उत्पन्न है। बाल के अग्रभाग के करोड़वें भाग प्रमाण है। इतना सूक्ष्म है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त स्वरूप है। अनन्तोत्पन्न प्रवेश स्वरूप है। वह दीप्त शून्य स्वभाव है। उसको जानो। उस स्वभाव से ही कर्मों के बन्धन विलय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—गम्य, अगम्य, अथाह, अगह, अलह, अभय, स्वकीय-सहजादि रूप, बालाग्रकोडमित वह अनन्त उत्पन्न अनन्तभाव में लीन शून्य स्वभाव है। वह दिव्य निज शुद्धस्वभाव, समभाव, शुद्ध, शुद्धोपयोग कर्म के बन्धनों को विलय करता है ॥ ४-५ ॥

विशेषार्थ—यहाँ शून्यस्वभावों के कुछ नाम दिये हैं। इस सूत्र में एक नाम है *"बालाग्रकोडमित" अर्थात् बाल के सूक्ष्म अग्रभाग के करोड़वें* भाग प्रमाण। यह सूक्ष्मता को बताने वाली एक उपमा है कि वह शून्य-भाव इतना सूक्ष्म है। अथवा वह चैतन्य आत्मा इतनी सूक्ष्म अवगाहना में भी निवास कर सकता है। अथवा ज्ञायकभाव के ज्ञान में, अनुभूति में इतनी सूक्ष्मता को ग्रहण करने की अपार शक्ति है। ऐसा है यह शून्य-स्वभावधारी आत्मा ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

गम, अगम, अगह, अथाह, अलह, अभय हमारा रूप है।
दैदीप्य शून्यस्वभाव भवनाशक अनन्त स्वरूप है ॥ २ ॥

स्वरूपाचरण शून्य स्वभाव

तदि पुञ्ज आयरण। शून्यस्वभाव। आयरण उत्पन्न।

त्रिलोक आयरण। हितकार त्रैलोक। सहकार त्रैलोक। आयरण विन्द प्रवेश। उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न शून्य स्वभाव। छद्मस्थ उत्पन्न। छद्मस्थ उत्पन्न ॥ ३ ॥

टीका— यदा शून्यस्वभावस्याचरणमुत्पन्नं करोति तदा हि पुञ्ज-राशि द्वादशपुञ्जसमूहं स्वरूपाचरणं वा प्राप्नोति। उत्पन्ने सति स्वरूपा-चरणे त्रिलोकाचरणं प्राप्नोति। हितकारस्त्रैलोक्यः। सहकारस्त्रैलोक्यः। शून्याचरणबिन्दुस्वभावे प्रवेशकः। उत्पन्नः उत्पन्नः उत्पन्नः शून्यस्व-भावः। छद्मस्थोत्पन्नः। छद्मस्थोत्पन्नः शून्यस्वभावे। यस्येयं वाणी सः छद्मस्थस्तारणतरणदेवोत्पन्नः स्वरूपाचरणशून्य स्वभावे इत्यर्थः।

काव्य

तत्पुञ्ज संख्याचरणं हि द्वादश,
शून्यस्वभावोत्पन्नः स्वभावे।
स्वयं स्वरूपाचरण स्वभावः,
शुद्धस्वभावश्च शुद्धोपयोगः ॥ ६ ॥
उत्पन्नं शून्यस्वभावं छद्मस्थस्य स्वकारणं।
छद्मस्थोत्पन्न स्वभावं कर्मक्षय निमित्तकं ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा जब शून्य स्वभाव का आचरण उत्पन्न अपने स्वभाव में करता है, उस समय बारह पुञ्ज और स्वरूपाचरण प्राप्त होता है। यह आचरण ही तीन लोक का आचरण है। तीन लोक का उपकारी हित-कारी है, सहकारी है। यह शून्य स्वभाव स्वरूपाचरण के लक्ष्य विन्दु से ही उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ यह शून्य स्वभाव छद्मस्थ में उत्पन्न हुआ और छद्मस्थ इस शून्य स्वभाव में उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—जिस समय शून्य स्वभाव का आचरण उत्पन्न होता है, उस समय बारह पुञ्ज और स्वरूपाचरण की प्राप्ति होती है। स्वरूपा-

चरण के उत्पन्न होने पर तीन लोक का आचरण प्राप्त हो जाता है। तीन लोक का हितकारी और सहकारी हो जाता है। स्वरूपाचरण के लक्ष्य बिन्दु से ही शून्य स्वभाव उत्पन्न होता है। उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ शून्य स्वभाव छद्मस्थ में उत्पन्न हुआ। जिनकी यह वाणी है वे छद्मस्थ तारणतरणस्वामी शून्य स्वभाव में उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥

काव्य अर्थ—उस पुञ्ज की बारह संख्याओं का आचरण करो, स्वभाव में ही शून्य स्वभाव उत्पन्न होता है। स्वयं स्वरूपाचरण स्वभाव शुद्ध है, शुद्धोपयोग है ॥ ६ ॥

छद्मस्थ अपना कारण आप है। शून्य स्वभाव छद्मस्थ का स्वभाव है। छद्मस्थ का (तारणतरण का) ऐसा स्वभाव उत्पन्न हुआ है जो कर्म क्षय का कारण है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—छद्मस्थ नाम श्रीतारणतरणदेव का है। स्वामीजी अपने स्वरूपाचरण की शून्यता में पहुँचे हैं। दो बार कहा गया है। तथा बार बार शून्य स्वभाव का स्मरण किया जा रहा है। इस शून्यता में शुद्ध-स्वरूप की साधना है। स्वरूप का आचरण है। स्वरूपाचरण है ॥ ३ ॥

तदि पुञ्ज आयरण में १२ पुञ्ज के आचरण की ओर संकेत है। पंचपरमेष्ठी स्वभाव, तीन रत्नत्रय और चार अनुयोग ये बारह पुञ्ज स्वभाव हैं, इनका ध्यान, आचरण, स्वरूपाचरण का कारण है। शून्य स्वभाव का कारण है ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद

छद्मस्थ ही प्रारंभ करते हैं स्वरूपाचरण को।
यह शून्य बिन्दु स्वरूप है समझो यहाँ आयरण को ॥ ३ ॥

रूपस्थ और रूपातीत ध्यान

मागधी भाषा। दिव्यध्वनि। शून्य उत्पन्न। शून्य प्रवेश। शून्यस्वभाव। शून्य त्रीलोक विजय। उत्पन्न पद तिलक। त्रीलोक विजय। उत्पन्न विजय। जय

शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् । जय शाह् दश ।। ४ ।।

टीका—मागधदेशीयभाषा मागधी । दिव्यध्वनिः । शून्योत्पन्नः । शून्यप्रवेशः । शून्यस्वभावः । शून्यस्वभावेन त्रैलोक्यविजयः । उत्पन्नपदतिलकः । त्रैलोक्यविजयः । उत्पन्न विजयः । चतुर्थगुणस्थानादारभ्य त्रयोदशगुणस्थानपर्यंत दशगुणस्थानानां दशैव जयशाह् पदं दश जयशाह्-शब्दपदेन जयस्वभावं विजयभावं कथयन्ति । चतुर्थगुणस्थाने विजयोत्पन्न स्वभावेन जयशाह्हो जयवन्तः । शुद्धस्वभाववैभवसंपन्नः सम्यग्दृष्टिः एवं प्रकारेणैव पंचमादि सर्वगुणस्थानस्वरूपं ज्ञातव्योऽस्ति । चतुर्थगुणस्थानादारभ्य विजयस्वभावः प्रारभते । उपरि प्रत्येके गुणस्थाने जयस्वभावस्य स्वामी स्व जयशाह् पदं प्रकटीकरोति । अतएव त्रयोदशपर्यन्त दशैवस्थाने शाह्पदोऽस्ति । अनेन हेतुना जयशाह्शब्दस्य संख्या दशेति निश्चिता लिखिता ।। ४ ।।

काव्य

दिव्यध्वनिर्ध्वनिश्चापि भाषा च मागधी स्वयं ।
शून्योत्पन्न प्रवेशश्च यत्र शून्य स्वभावतः ।। ८ ।।
शून्येन त्रैलोक्य जयः शून्यस्य तिलकं ध्रुवं ।
शून्य भावः स्वयंमुक्तिः साधयत्वं च यत्नतः ।। ९ ।।
जयशाह् शब्द संख्या सूत्रे दशबार किं तथाकथितं ।
यदि जिज्ञासाभावः सम्यग्दृष्टिश्च भवाद्यैव ।। १० ।।
चतुर्थादारभ्यत्रयो दशान्ते च गुणाः दश ।
जयशाह पदं तत्र प्रत्येके भवति स्वयं ।। ११ ।।

सूत्रार्थ—मागधीभाषा, दिव्यध्वनि, शून्य उत्पन्न, शून्य प्रवेश । शून्यस्वभाव । शून्यस्वभाव से ही त्रैलोक्य विजय है । पदतिलक उत्पन्न होता है । त्रैलोक्य विजय । उत्पन्न विजय । यह विजय स्वभाव चौथे से

तेरहवें तक उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है। अतएव प्रत्येक गुणस्थान का एक जयशाह पद है। सब मिलकर दश बार जयशाह शब्द पद का प्रयोग किया है ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—मागधी भाषा, दिव्यध्वनि। शून्योत्पन्न शून्य प्रवेश। शून्यस्वभाव। शून्यस्वभाव से त्रैलोक्य विजय है। पदतिलक उत्पन्न होता है। त्रैलोक्य विजय। उत्पन्न विजय। यह विजय स्वभाव चौथे से तेरहवें तक उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है। अतएव प्रत्येक गुणस्थान का जयशाह पद है। सब मिलकर दश बार जयशाह पद का प्रयोग किया। चौथे गुण-स्थान में विजयोत्पन्न स्वभाव से जयशाह जयवन्त पद शुद्धस्वभाव का वैभव सम्पन्न सम्यग्दृष्टि है। इसी प्रकार पंचमादि सभी गुणस्थानों के स्वरूप को जानना चाहिये। चौथे गुणस्थान से विजय स्वभाव प्रारम्भ होता है। ऊपर प्रत्येक गुणस्थान में जयस्वभाव का स्वामी अपने शाहपद को क्रमशः प्रगट करता है। अतएव १३ पर्यन्त शाहपद है। इसी कारण जयशाह शब्द की संख्या दश इस प्रकार निश्चित करके लिखी है। ऊपर १४वाँ गुणस्थान तो मुक्त पद है ॥ ४ ॥

काव्य अर्थ—मागधी भाषा, दिव्यध्वनि, शून्य उत्पन्न। शून्य-स्वभाव। शून्य प्रवेश। इस शून्य स्वभाव में ही तीन लोक की विजय है। शून्य का ही ध्रुव तिलक पद है। शून्यस्वभाव ही मुक्ति है। इसका यत्न से साधन करो। जयशाह शब्द की संख्या सूत्र में १० बार क्यों कही यदि जिज्ञासा का भाव है, तो आज ही सम्यग्दृष्टि होकर जान लो। चौथे से १३वें तक १० गुणस्थान हैं। इनमें जयशाह पद प्रत्येक में होता है। १४वाँ गुणस्थान मुक्त जीवों का है। इससे ऊपर सब सिद्ध हैं ॥ ८-११ ॥

विशेषार्थ—इस सूत्र में रूपस्थ और रूपातीतध्यान का वर्णन किया है। समवशरण सम्बन्धी वर्णन रूपस्थध्यान में तथा शून्यध्यान का वर्णन रूपातीतध्यान में होता है। सभी सूत्रों में ऐसा ही जानना चाहिये ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद

दश गुणस्थानों के विजेता लोकपति जयशाह हैं।
अरहन्त पद यह तो हमारा ही स्वपद जयशाह है ॥ ४ ॥

दुन्दुभि शब्द की व्यापकता

जय उत्पन्न तीन। जय उत्पन्न दुन्दुही शब्द। जय उत्पन्न दुन्दुही शब्द। हितकार उत्पन्न, उत्पन्न जय दुन्दुही शब्द। सहकार उत्पन्न जय दुन्दुही शब्द। आयरण जय दुन्दुही शब्द। आराध्य जय दुन्दुही शब्द। आलाप जय दुन्दुही शब्द। अन्मोद जय दुन्दुही शब्द। शाह जय दुन्दुही शब्द। उत्पन्न शाह जय दुन्दुही शब्द। खिपक जय दुन्दुही शब्द। मुक्ति जय दुन्दुही शब्द। अनन्तसौख्य। अर्ध कोड-साडे बारह कोड मुक्ति विलास ॥ ५ ॥

टीका—त्रिकालजयोत्पन्नः स्वभावे। दुन्दुभिशब्दः जयोत्पन्नं घोषयति। जयोत्पन्नं घोषयति। हितकारजयोत्पन्नं कथयति। सहकारजयोत्पन्नं च घोषयति। दुन्दुभिशब्दः आयरण जयं कथयति। आराध्य जयं प्रकटीकरोति। आलाप जयं प्रकाशयति। आलाप जयं स्पष्टीकरोति। अन्मोद जयं घोषयति। शाहजयं, उत्पन्नशाहजयं, क्षपकजयं, मुक्तिजयं घोषयति दुन्दुभिशब्दः। अनन्तसौख्यं, सार्धद्वादशकोटिमुक्तिविलासं घोषयन्ति दुन्दुभिवादित्राणां शब्दाः ॥ ५ ॥

काव्य

सर्वभावेषु यः शब्दो व्यापको भवति ध्वनौ।
दुन्दुभि शब्देषु नानाभावं भावे विचारणम् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—तीन जय उत्पन्न हैं। दुन्दुभि शब्द जय उत्पन्न कर रहा है। दुन्दुभि शब्द जय को उत्पन्न कर रहा है। दुन्दुभि शब्द से हितकार जय उत्पन्न है। सहकार जय उत्पन्न है। दुन्दुभि शब्द आयरण जय कर रहा

है। आराध्य जय, आलाप जय, अन्मोद जय, शाह जय, उत्पन्न शाह जय, खिपक जय, मुक्ति जय, अनन्तसौख्य जय को दुन्दुभि शब्द प्रगट कर रहे हैं। साड़े बारह करोड़ मुक्तिविलास स्वभावों को १२॥ करोड़ वादित्र प्रगट कर रहे हैं ॥ ५ ॥

टीका अर्थ—स्वभाव में त्रिकाल जय उत्पन्न है। दुन्दुभिका शब्द जयोत्पन्न घोषित करता है। जयोत्पन्न को घोषित करता है। हितकार की जयोत्पन्न को कहता है। सहकार जय को घोषित करता है। दुन्दुभि का शब्द आयरण की जय को कहता है। आराध्य की जय को प्रगट करता है। आलाप की जय को प्रकाशित करता है। अन्मोद जय को कहता है। और शाहजय को, उत्पन्न शाहजय को, क्षपक जय को, मुक्ति जय को, अनन्त सौख्य को कह रहा है। साड़े बारह कोटि मुक्तिविलासों को ये १२॥ करोड वादित्र प्रगट कर रहे हैं ॥ ५ ॥

काव्य अर्थ—दुन्दुभियों की ध्वनि में जो शब्द प्रगट हो रहे हैं, वे समस्त भावों में व्यापक हो रहे हैं। दुन्दुभियों के शब्दों में नाना प्रकार के भाव अपने भावों में विचारणीय हैं ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—दुन्दुभियों के शब्दों में जय जय नाद का अनुभव किया जा रहा है। किसकी जय हो रही है? आत्मा के स्वभाव की। जैसे—हितकार, सहकार, आयरण, आराध्य, आलाप, अन्मोद, शाह, उत्पन्न-शाह, खिपक, मुक्ति, अनन्तसुख आदि ये सब आत्मा के गुण हैं। और इन्हीं की जय जयकार सब ओर से सुनाई पड़ रही है ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

मुक्ति विजय करें इसी की सूचना यह दुन्दुही।
मागधो दिव्यध्वनी की प्रेरणा यह दुन्दुही ॥ ५ ॥

शून्य स्वभाव का अनुभव

वेवक उत्पन्न शून्य स्वभाव। अनन्त प्रवेश। अनन्त ध्रुव। बालाग्रकोडमितं। मुक्ति स्वभाव। स्वल्प

शून्य प्रवेश । शून्य प्रवेश । प्रवेश स्वल्पशून्य उत्पन्न ।
अनन्त प्रवेश । अनन्तानन्त । अनन्तानन्त । अनन्ता-
नन्त । अनन्तानन्त । अनन्तानन्त स्वभाव । अल्प
शून्य पूर्वनाम । तदि उत्पन्न स्वल्प शून्य । स्वल्प
इष्ट शून्य । स्वल्प शून्य उत्पन्न उत्पन्न शून्य ।
स्वल्प शून्य उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न चतुष्टय स्वभाव ।
तं दिप्त शून्य । अल्पशून्य अनन्तानन्त प्रवेश ॥ ६ ॥

टीका—वेदनमनुभवनमिति वेदकः । अनुभवकर्ता । शून्यस्वभावस्योत्पन्नस्य वेदकः संवेदकः अनन्ते प्रवेशः । अनन्तध्रुवं बालाग्रकोडमितं वस्तुस्वरूपं जानाति ज्ञानं । मुक्तिस्वभाव एव शून्यस्वभावः । शून्यस्वभाव एव मुक्तिस्वभावः । स्वल्पशून्य प्रवेशः । शून्य प्रवेशः । प्रवेशः स्वल्पशून्योत्पन्नः । अनन्ते प्रवेशः । अनन्तानन्तः स्वयं प्रवेशः । अनन्तानन्तः । अनन्तानन्तः । अनन्तानन्तः । अनन्तानन्तः । अनन्तानन्तः स्वभावः । पूर्वनामाल्पशून्यः । तदोत्पन्न स्वल्पशून्यः । स्वल्पेष्ट शून्यः । शून्यश्च-स्वल्प शून्योत्पन्नः । उत्पन्न शून्यः । स्वल्पशून्योत्पन्नोत्पन्नोत्पन्नोहि चतुष्टय स्वभावः । तं दिप्तशून्यं स्वानुभवे वेदकभावे वा चिन्तनं कुरुत, अल्पशून्येऽनन्तानन्ते प्रवेशं कुरुत ॥ ६ ॥

काव्य

शून्यस्वभावे भव वेदकस्त्वं,
संवेदनं स्वस्य निरन्तरं कुरु ।
प्रवेशभावं ध्रुव सत्स्वभावे,
अनन्तभावं भजऽनन्तकारं ॥ १३ ॥

मुक्तिभाव स्वल्प शून्य अल्पशून्य पूर्वकम् ।
प्रवेश शून्य स्वल्प त्वमुत्पन्न भाव नन्तकं ॥ १४ ॥
अल्प स्वल्प सहज शून्यभाव स्वप्रबायकम् ।
शून्य ध्यान वस्त्वतीत रूपध्यान संयुतम् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ—शून्यस्वभाव का अनुभव करने वाला वेदक उत्पन्न हुआ। अनन्त प्रवेश। अनन्त ध्रुव। बालाग्रकोडमितभाव मुक्तिस्वभाव स्वल्पशून्यप्रवेश। शून्यप्रवेश। प्रवेश स्वल्प शून्य उत्पन्न है। अनन्तप्रवेश तो अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त स्वभाव है पूर्वनाम अल्प शून्य है। अल्पशून्य पूर्वक ही स्वल्पशून्य उत्पन्न होता है। स्वल्प इष्ट शून्य। स्वल्पशून्य उत्पन्न उत्पन्न शून्य। स्वल्पशून्य से उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न चतुष्टय स्वभाव है। उस दिप्तशून्य को अनुभव में लाओ। अल्पशून्य तो अनन्तानन्त प्रवेश युक्त है ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—वेदन करे, जाने, अनुभव करे सो वेदक, अनुभव कर्ता। शून्यस्वभाव के उत्पन्न (प्रगट करने) का अनुभव करने वाला वेदक, संवेदक है। अनन्त में प्रवेश। अनन्त ध्रुव। बालाग्रकोडमितस्वभाव है। स्वल्पशून्य प्रवेश। शून्य प्रवेश प्रवेशस्वल्पशून्योत्पन्न। मुक्तिस्वभाव ही शून्यस्वभाव है, शून्यस्वभाव ही मुक्ति स्वभाव है। अनन्त प्रवेश है। स्वयं प्रवेश कही अनन्तानन्त हैं। अनन्तानन्त है, अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त स्वभाव है। अल्पशून्य पूर्वनाम है। उससे उत्पन्न स्वल्पशून्य है। स्वल्प इष्ट शून्य है। स्वल्पशून्योत्पन्न से शून्य उत्पन्न है। स्वल्पशून्य से ही उत्पन्न है, उत्पन्न है, उत्पन्न है चतुष्टयस्वभाव, उस दिप्त शून्य को अपने अनुभव में लाओ। अल्प शून्य में अनन्तानन्त बार उत्पन्न प्रवेश करो ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—तुम शून्य स्वभाव में प्रवेश करो। उसके वेदक बनो। अपना स्वसंवेदन निरन्तर करो। ध्रुव सत् स्वभाव में ही प्रवेशभाव करो। अनन्तभाव को अनन्त वार ही भजो, सेवन करो ॥ १३ ॥

अल्पशून्यपूर्वक ही स्वल्पशून्य प्रवेशशून्य आदि होते हैं। मुक्ति का भाव होता है। स्वल्पशून्य के अनन्तभाव में उत्पन्न होओ ॥ १४ ॥

अल्प, स्वल्प, सहज शून्य तो अपना स्वरूप प्रदान करते हैं। शून्यध्यान रूपातीत ध्यान है। इससे अपने शुद्धस्वभाव को विभूषित करो ॥ १५ ॥

विशेषार्थ—शून्य स्वभाव का वेदन (अनुभव) यहाँ पर शून्यों के

नामों के अनुसार कर रहे हैं। शुद्धोपयोग की स्थिरता शून्य स्वभाव में है। चतुर्थ गुणस्थान से शून्य स्वभाव प्रारम्भ होता है। योग्यता के अनुसार अल्पस्वल्प आदि नाम हैं। छद्मस्थ अवस्था को लक्ष्य करके ही अल्प-स्वल्प शून्य के नाम रखे गये हैं। अर्थात् छद्मस्थ अन्तर्मुहूर्त मात्र ही शून्यभाव की स्थिरता पा सकता है। इसीलिये इस अवस्था में अल्प-शून्यता ही होती है।

पद्यानुवाद

आतमा, मन, वचन और स्वभाव सब ही शून्य हों।
वेदक हुआ उत्पन्न तब ही विकल्पों से शून्य हो ॥ ६ ॥

चौदहसौ नब्बे कोड़ा-कोड़ी

चौदह से नव्वे कोड़ाकोड़ी सागर। आठ सै चौरानवे
काल। तुम लब्धि ऊपर लब्धि पावहु ॥ ७ ॥

टीका—चतुर्दशशतनवतिकोटाकोटिसागरकालो व्यतीतः। तन्मध्ये शताष्टचतुर्नवतिकालसंख्या प्रथम द्वितीय तृतीयाविरूपेण भवति। इति व्यतीते हुण्डावसर्पिणिकालो हि आयाति। शतैकोनपंचाशत् चतुर्विंशतिर्भवति तीर्थंकरदेवानां। त्वं लब्ध्युपरिलब्धि प्राप्नोतु ॥ ७ ॥

काव्य

शतैकोन पंचाशच्च संख्या यावच्चतुर्विंशतिः।
व्यतीते भवति हुण्डावसर्पिणि स्वभावजः ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—चौदहसौ नब्बे सागर कोड़ा-कोड़ी काल व्यतीत हुआ। इतने समय में आठसौ चौरानवे काल बीत चुके। तुम सब लब्धि के ऊपर की लब्धि को प्राप्त करो। इस लब्धि से नीचे की लब्धि में अब नहीं जाना ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—१४९० कोड़ा-कोड़ी सागर काल व्यतीत हुआ। इस बीच में ८९४ काल व्यतीत हुये। ३५७६ तीर्थंकरदेव मुक्त हुये। १४९ चौबीसी बीत चुकी, इसके बीतने पर हुण्डावसर्पिणि काल आता है। अब तुम सब लब्धि के ऊपर की लब्धि को ही पाओ ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—१४९ चौबीसी के व्यतीत होने पर हुण्डावसर्पिणि काल आता है। इसमें स्वाभाविक परिवर्तन होता है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—एक हुण्डावसर्पिणि से दूसरे हुण्डावसर्पिणि के मध्य का समय इस सूत्र में बताया है। १४९० कोड़ा-कोड़ी सागर का कुल समय इतने में होता है। १४९ चौबीसी होती हैं। १० कोड़ा-कोड़ी में ६ काल होते हैं अतः १४९ में ६ का गुणा करो १४९० कोड़ा-कोड़ी होंगे। तथा १४९ में २४ का गुणा करो ३५७६ तीर्थंकर मुक्ति प्राप्त कर चुके। आगे इसी सूत्र में आशीर्वाद भी है, सचेत भी किया है कि तुम लब्धि ऊपर लब्धि पावहु अर्थात् आज इस पर्याय में जितनी योग्यताएँ शरीरादि की पा चुके हो, अब इससे नीचे की योग्यता या पर्याय में नहीं जाना। इस योग्यता से ऊपर की लब्धि ही उत्तरोत्तर पाते जाना। यही पुरुषार्थ है ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

एक सौ उनचास चौबीसी गये पर आ गया।
हुण्डावसर्पिणि काल, अनहोनी बताने आ गया ॥ ७ ॥

मैं कब से कह रहा हूँ

तुम अपने किये। हों कबको कहतु आहुं। बड़ोपहरु
भयो। बड़ो पहर लंघिऊ। चन्दन गला बहु रे।
होंका आपुनु कों चाहतु हों ॥ ८ ॥

टीका—यूयं सर्वे कृताः स्वकीयाः। बहुसमयोगतः, कथयाम्यहं। दीर्घप्रहरकालो आगतः। गतश्च दीर्घप्रहरकालः। चन्दनं गालयतु रे। इच्छाम्यहं किं स्वार्थाय ॥ ८ ॥

काव्य

त्वं लब्ध्युपरि लब्धिं च प्राप्नुत स्वजनाः जनाः।
कितिकालेन कथयामि दीर्घो हि प्रहरो गतः ॥ १७ ॥
दीर्घप्रहरश्चाग्रे वा, भविष्यति स्वभावतः।
भविष्ये किं कर्त्तव्योऽस्ति सावधानतया कुरु ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ—तुम्हें अपने बनाया। मैं कब से कहता हूँ, बड़ा पहर हुआ। बड़ा पहर बीत गया। चंदन गलाओ रे। मैं क्या अपने लिये कहता हूँ ॥ ८॥

टीका अर्थ—तुमको अपना किया। बहुत समय से कह रहा हूँ। बड़ा पहर काल आ गया। बड़ा पहर वाला काल बीत गया। चन्दन गलाओ रे। मैं क्या अपने स्वार्थ के लिये कहता हूँ ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—तुम लब्धि के ऊपर लब्धि पाओ। तुम मेरे स्वजन जन हो। कब से कह रहा हूँ। बड़ा पहर गया ॥ १७ ॥

बड़ा पहर आगे भी स्वभाव से ही होगा। किन्तु भविष्य में कर्तव्य क्या है। सावधानी से करो ॥ १८ ॥

विशेषार्थ—श्रीगुरु आत्मीयता की बातें अपने शिष्यों से कर रहे हैं। मैंने तुम्हें अपना बनाया। कब से कह रहा हूँ। यह बड़ा काल आया है। अरे। अनादि से अभी तक का कितना काल बड़ा पहर बीत गया। क्या मैं अपने लिये कहता हूँ। तुम्हारे कल्याण की बात है ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

अपने बनाये आपको अब बड़ा पहर चला गया।
यह भी बड़ा ही जा रहा जो जा रहा सु चला गया ॥ ८ ॥

शून्यों के नाम

सुल्पशून्य। सुल्प इष्टशून्य। उत्पन्न सुल्प शून्य। महा उत्पन्न उत्पन्न सुन्न। सुल्प स्वयं सुल्प सुन्न। सुयं सुल्प उत्पन्न सुन्न। सुयं सुल्प आयरण सुन्न। सुयं सुल्प आराध्य सुन्न। सुयं सुल्प आलाप सुन्न। सुयं सुल्प सह साह सुन्न। सुयं सुल्प असहसाह सुन्न। सुयं सुल्प अथह थाह सुन्न। सुयं सुल्प अगह गाह सुन्न। सुयं सुल्प अलह लाह सुन्न। सुन्न सुयं सुल्प अध्रुव विलोध्रुव उत्पन्न सुन्न। सुयं सुल्प

सुयं अर्क उत्पन्न सुल्प सुन्न। सुल्प सुयं विन्द अनन्त स्वभाव। उत्पन्न सुल्प सुयं सुल्प अचिन्त्य अनन्तानन्त। सुयं सुल्प सुन्न सुयं सुल्प हितकार अनन्त स्वभाव। सुयं सुल्प सुन्न सुयं सुल्प हुन्तकार मुक्ति स्वभाव। सुयं उत्पन्न सुल्प सुन्न सुयं सुल्प मुक्तिरमण सुन्न, सुयं उत्पन्न सुल्प सुन्न अल्प सुन्न सुयं प्रवेश। अल्प सुन्न अनन्तानन्त प्रवेश। सुल्प सुन्न सुयं ध्रुव प्रवेश अनन्तानन्त। अल्प सुन्न सुयं उक्त शाह् अनन्तानन्त प्रवेश। अल्प सुन्न स्वयं श्रवण रमण अनन्तानन्त प्रवेश। अल्प सुन्न सुयं सुल्प सुन्न उत्पन्न प्रवेश अनन्तानन्त प्रवेश ॥ ९ ॥

टीका—

१. सम्यग्दृष्टेर्निर्विकल्प स्थितिः स्वल्पशून्य नाम साधना भवति।

२. छद्मस्थ सम्यग्दृष्टेर्निर्विकल्पस्वभाव साधना स्वल्पेष्ट शून्यनाम।

३. सम्यग्दृष्टि छद्मस्थस्य स्वरूपे उत्पन्न निर्विकल्प शून्य साधना उत्पन्न स्वल्प शून्यावस्था भवति।

४. महतिमहा शुद्धोपयोगे पुनः पुनः उत्पन्न निर्विकल्पोपयोग महाउत्पन्न उत्पन्न शून्यस्थितिः।

५. सम्यग्दृष्टि साधकस्य स्वयं सहजा पुनः पुनः भवति या साधना शून्यावस्था सा स्वल्प स्वयं स्वल्प शून्या स्थितिः।

६. स्वयं शुद्धोपयोगस्य निर्विकल्प शून्य साधना स्वयं स्वल्प उत्पन्न शून्यावस्था वर्तते स्वभावे।

७. स्वरूपाचरणस्य निर्विकल्पता स्वयं स्वल्प आचरण शून्यावस्था।

८. स्वयमाराध्याराधनायां वा निर्विकल्पस्थितिः स्वयं स्वल्प आराध्य-शून्यावस्थास्ति।

९. शुद्धोपयोगे वचन शून्यता। मौन समाधिः स्वयं स्वल्प आलाप शून्य स्थितिः।

१०. स्वयं शून्य स्वभावस्य सातिशय निर्विकल्प साधना स्वयं स्वल्प सहसाह शून्य समाधिः।

११. शुद्धोपयोगे-असह्य-प्रचण्ड शून्य समाधिर्यदा भवति सा स्वयं स्वल्प असहसाह शून्य समाधि स्थितिः।

१२. शुद्धोपयोगस्याथाह शून्यतायां तलस्पर्शी निर्विकल्प साधना स्वयं स्वल्प अथाह थाह शून्य समाधि साधना भवति स्वस्वरूपे।

१३. शुद्धोपयोगस्याग्राह्यापि शून्यतां ग्रहण साधना स्वयं स्वल्प अगहगाह शून्य स्थितिः।

१४. शुद्धोपयोगस्यालभ्यलाभं प्राप्ति शून्य साधना स्वयं स्वल्प अलह-लाह शून्य समाधिः।

१५. शुद्धोपयोगस्यास्थिरतां विलयति या निर्विकल्प साधना सा शून्य स्वयं स्वल्पाध्रुवविलय ध्रुवोत्पन्न शून्य समाधिः।

१६. शुद्धोपयोगे षट्त्रिंशत्यर्क साधना स्वयं स्वल्प स्वयं अर्क उत्पन्न स्वल्प शून्य समाधिर्नाम भवति शून्यावस्था।

१७. अनन्त स्वभावस्य स्वयं प्राप्ति शून्य साधना स्वल्प स्वय विन्द अनन्त स्वभाव शून्य समाधिः।

१८. अचिन्त्यानन्तानन्त स्वभावस्य शून्य शुद्धोपयोगे-अचिन्त्यशून्य साधनानाम उत्पन्न स्वल्प शून्य स्वयं स्वल्पाचिन्त्यानन्तानन्त शून्य समाधिः।

१९. शुद्धोपयोगे अनन्त हितकार स्वभाव साधनं स्वयं स्वल्प शून्य स्वयं स्वल्प हितकार अनन्त स्वभाव शून्य समाधिः।

२०. शुद्धोपयोगे हुन्तकार मुक्ति स्वभाव साधनं स्वयं स्वल्प शून्य हुन्त-कार मुक्तिस्वभाव शून्य समाधिर्भवति।

२१. स्वयमुत्पन्ने शुद्धोपयोगे मुक्ति रमणसाधनं स्वयं उत्पन्न स्वल्प शून्य स्वयं स्वल्प मुक्तिरमण शून्य समाधिर्नाम साधनास्ति ज्ञातव्या।

२२. स्वयमुत्पन्ने स्वभावसाधनायां स्वयं प्रवेशनं स्वयं उत्पन्न स्वल्प शून्य अल्प शून्य स्वयं प्रवेश शून्य समाधिर्भवति।

२३. छद्मस्थे सति अनन्तानन्त स्वरूपे गमनं प्रवेशनं अल्पशून्य अनन्तानन्त प्रवेश शून्यनाम समाधिः।

२४. अनन्तानन्त ध्रुवस्वभावे यः सम्यग्दृष्टि छद्मस्थः प्रविशति गच्छति शून्य स्वभावे तन्नाम स्वल्प शून्य स्वयं ध्रुव प्रवेश अनन्तानन्त शून्य समाधिर्भवति स्व-शुद्धस्वभावे।

२५. उक्तशाह् द्वादशांग विध्यध्वनेः अनन्तानन्त स्वभावे प्रवेशनं चिन्तनं अल्पशून्य स्वयं उक्तशाह् अनन्तानन्त प्रवेश शून्य समाधिः।

२६. स्वयं शुद्धोपयोगे स्वयं रमणं स्वयं श्रवणं स्वयं शब्द शून्य साधनानाम अल्पशून्य स्वयं श्रवण रमण अनन्तानन्त प्रवेश शून्य समाधिः।

२७. स्वशुद्धोपयोगेन स्वस्वभावे स्वरूपे स्थिरता प्राप्तिः अनन्तानन्ते प्रवेशनं उत्तरोत्तरोन्नतिः अल्पशून्य स्वयं शून्य उत्पन्न प्रवेश अनन्तानन्त प्रवेशनाम शून्य समाधि साधना।

काव्य

स्वल्प शून्यादि शून्यानां गणना सप्तविंशतिः।
शून्या समाधिर्भवति ध्यानं रूपातीतं तथा॥ १९॥
स्वयं स्वल्पादि शून्यार्कं गणना नाम कीर्तनं।
प्रवेशं मुक्तिविलासं स्वभावे रमणं कुरु॥ २०॥

सूत्रार्थ—शून्यों की संख्या ५७२ है। फिर भी यहाँ केवल २७ शून्यों के नाम-स्वरूप संक्षेप में लिखेंगे। शून्यों के नाम सूत्र क्रमानुसार स्वरूप सहित निम्न प्रकार हैं॥ ९॥

टीका अर्थ—

१. सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ की निर्विकल्प अवस्था स्वल्पशून्य है।

२. सम्यग्दृष्टि अल्पज्ञ की निर्विकल्प-साधना स्वल्पइष्ट शून्य अवस्था है।

३. सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ की स्वरूप में प्रगट होती हुई अभेद-साधना उत्पन्न स्वल्प शून्य है।

४. महान् शुद्धोपयोग की ओर बार-बार प्रगट होने वाली निर्विकल्प साधना महाउत्पन्न उत्पन्न शून्य है।

५. सम्यग्दृष्टि साधक की स्वयं सहज बार बार होने वाली परिणति की निर्विकल्प साधना स्वल्पस्वयं स्वल्पशून्य है।
६. स्वयं शुद्धोपयोग की शून्य अवस्था स्वयं स्वल्प उत्पन्न शून्य समाधि है।
७. स्वरूपाचरण स्वभाव की एकाग्रता स्वयं स्वल्प आयरण शून्य है।
८. स्वयं आराध्य और आराधना की शून्यता स्वयं स्वल्प आराध्य शून्य है।
९. स्वयं शुद्धोपयोग की वचन शून्यता, मौनसमाधि स्वयं स्वल्प आलाप शून्य है।
१०. स्वयं शून्य स्वभाव की सातिशय निर्विकल्प साधना स्वयं स्वल्प सहशाह शून्य है।
११. शुद्धोपयोग की प्रचण्ड शून्य साधना स्वयंस्वल्प असहशाह शून्य समाधि है।
१२. शुद्धोपयोग की अथाह शून्यता की थाह में जाने का पुरुषार्थ स्वयं स्वल्प अथहथाह शून्य समाधि है।
१३. शुद्धोपयोग की कष्टसाध्य शून्यता को ग्रहण करने का भाव स्वयं स्वल्प अगहगाह शून्य नामक समाधि है।
१४. शुद्धोपयोग की अलभ्य लाभ की शून्य साधना स्वयं स्वल्प अलह-लाह शून्य है।
१५. शुद्धोपयोग की अस्थिरता को विलय करने की ध्रुव साधना शून्य स्वयं स्वल्प अध्रुव विली ध्रुवोत्पन्न शून्य है।
१६. शुद्धोपयोग में ३६ अर्कमय शून्य साधन स्वयं स्वल्प स्वयं अर्क उत्पन्न स्वल्पशून्य है।
१७. अनन्त स्वभाव की स्वयं प्राप्ति शून्य साधना स्वल्प स्वयं विन्द अनन्त स्वभाव समाधि शून्य है।
१८. अचिन्त्य अनन्तानन्त स्वभाव की शून्य अचिन्त्य साधना उत्पन्न स्वल्प शून्य स्वल्प स्वयं अचिन्त्य अनन्तानन्त शून्य समाधि है।

१९. अनन्त हितकार स्वभाव की शुद्धोपयोगमय निर्विकल्प साधना स्वयं स्वल्प शून्य स्वयं स्वल्प हितकार अनन्त स्वभाव शून्य है।

२०. शुद्धोपयोग में हुन्तकार मुक्तिस्वभाव की शून्यता का साधन स्वयं स्वल्प शून्य हुन्तकार मुक्तिस्वभाव शून्य है।

२१. स्वयं उत्पन्न शुद्धोपयोग में मुक्तिरमण की शून्य साधना स्वयं उत्पन्न स्वल्पशून्य स्वयं स्वल्प मुक्तिरमण शून्य है।

२२. स्वयं उत्पन्न छद्मस्थ शून्य साधना में स्वयं प्रवेश की शून्य साधना स्वयं उत्पन्न स्वल्प अल्प शून्य स्वयं प्रवेश शून्य है।

२३. छद्मस्थावस्था में पूर्णता की अनन्तानुभूति अल्पशून्य अनन्तानन्त प्रवेश शून्य है।

२४. सम्यग्दृष्टि के शुद्धोपयोग की अनन्तानन्त ध्रुव प्रवेश की शून्य साधना स्वल्प शून्य स्वयं ध्रुव प्रवेश शून्य है।

२५. शुद्धोपयोग में उक्त शाह द्वादशांग के अनन्तानन्त चिन्तन की शून्य साधना अल्पशून्य स्वयं उक्त शाह अनन्तानन्त प्रवेश शून्य समाधि है।

२६. स्वयं शुद्धोपयोग की स्वयं रमण स्वयं श्रवण स्वयं शब्द शून्य साधना अल्पशून्य स्वयं श्रवण रमण अनन्तानन्त प्रवेश शून्य है।

२७. अपने स्वरूप शुद्धोपयोग में स्थिर होने वाला निर्विकल्प साधक अपनी इस शून्य साधना से अपने अनन्तानन्त स्वरूप की प्राप्ति अर्थ उसमें प्रवेश करता हुआ, आगे बढ़ता ही जाता है। यह शून्य साधना अल्पशून्य स्वयं शून्य उत्पन्ने प्रवेश अनन्तानन्त प्रवेश शून्य समाधि है।

जीवन-मुक्ति

अर्क समानो विन्दु में। विन्दु समानो सुन्न में।
सुन्न समानो औकास में। औकास समानो सिद्ध में॥

—श्री ठिकाने जी

काव्य अर्थ—स्वल्पशून्य ादि शून्यस्वभावों की जो गणना है वह २७ है। यह सब रूपातीत ध्यान की शून्यसमाधि का स्वरूप है। यह स्वयं स्वल्प आदि जो अर्क शून्यों की गणना है और नाम कीर्तन है, वह मुक्ति प्रवेश विलास कराने वाला है। अतएव अपने स्वभाव में रमण करो जो समस्त ऋद्धि और सिद्धियों का जनक है ॥ १९-२० ॥

विशेषार्थ—शून्यस्वभावों के २७ नाम स्वरूपादि का वर्णन किया। शून्य समाधि आत्मा के शुद्धोपयोग स्वभाव का ही नाम है। अपने स्वरूप में अथवा ज्ञायक भाव में शुद्धस्वभाव के अतिरिक्त अन्य सब का अभाव, एकमात्र सत्ता शुद्धात्मा की ही जहाँ हो, वही शून्य स्वभाव, विन्दु स्वभाव, शुद्धोपयोग, निर्विकल्प समाधि आदि विविध नामों से कही जाने वाली शून्य समाधि है ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

इस सूत्र में हैं नाम सब ही शून्य और स्वभाव के।
गुरुदेव कितने शून्य मय, प्रतिबिम्ब उनके भाव के ॥ ९ ॥
प्रत्यक्ष करके देख ली महिमा अनेकों शून्य की।
सर्वशून्यों का निजाश्रय भावना निज शून्य की ॥ १० ॥
वह अल्पशून्य स्वयं श्रवण उत्पन्न नन्तानन्त है।
जा देख अपने आपमें क्या क्या अनन्तानन्त है ॥ ११ ॥

रूपस्थ ध्यान

जय जय जय समवशरण। साड़े बारह कोड़ि बाजे बाजहिं। मुक्ति विलास उत्पन्न प्रवेश। उत्पन्न चार के चार। चार के सोलह। सोलह के चौबीस। चौबीस के चौंसठ। चौंसठ के छ्यानवे ॥ १० ॥

टीका—जयो जयो जयः समवशरणस्वरूपः। सार्धद्वादशकोटिवादित्राणां ध्वनिर्भवति। मुक्तेर्विलास स्वभावोत्पन्नः प्रवेशश्च। उत्पन्न-ध्यानचतुष्टयम्। ध्यानचतुष्टयषोडशभेदोत्पन्नाः। षोडशभेदस्वरूपाद्-

त्पन्नाश्चतुर्विंशतिः रमणार्कं भेदभावाः । तेभ्यश्च चतुःषष्ठिकलशोत्पन्नाः जिनश्रेण्यां । तेभ्यश्चापि षण्णवतिः उत्पन्ना षट्सोलहीति ॥ १० ॥

काव्य

उत्पन्नाश्चत्वारश्चापि चतुर्णां खलु षोडशः ।
षोडशायां चतुःषष्ठिः तेभ्यश्चापि षण्णवतिः ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ—जय जय जय समवशरण । साढ़े बारह कोटि बाजे बजते हैं । मुक्ति का विलास प्रगट हो रहा है । प्रगट हुये चार के चार । चार के सोलह । सोलह के चौबीस । चौबीस के चौंसठ । चौंसठ के छ्यानवे ॥१०॥

टीका अर्थ—जय जय जयवन्त समवशरणस्वरूप, साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं । मुक्ति का विलास प्रगट हो रहा है । चारों के चारों ध्यान उत्पन्न हो गये पदस्थादि । इन चारों से चार ध्यान के सोलह पाये, आठ हेय आठ उपादेय उत्पन्न हुये, इनसे फिर चौबीस अर्क उत्पन्न हुये । इनसे भी फिर जिनश्रेणि में चौंसठ कलश उत्पन्न हुये । तत्पश्चात् इनसे षट् सोलही के छ्यानवे हुये ॥ १० ॥

काव्य अर्थ—चार के चार उत्पन्न हुये । चार के सोलह उत्पन्न हुये । सोलह के चौबीस हुये । चौबीस के चौंसठ हुये । और चौंसठ के छ्यानवे उत्पन्न हुये ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—यहाँ फिर से समवशरण की रचना और रूपस्थ ध्यान में मुक्ति का विलास प्रारम्भ हुआ । चारों के चारों ध्यान उत्पन्न हो रहे हैं । इनसे उत्तरोत्तर सोलह, चौबीस, चौंसठ, छ्यानबे उत्पन्न स्वभाव प्राप्त हुये । जिनश्रेणि के ६४ कलश आत्मा में ढल रहे हैं । उत्पन्न, हितकार, खिपक, जान, इच्छ, अंकुर ये षट् इनके १६-१६ भेद से सब ९६ उत्पन्न हुये । ये सब भेद योगशास्त्र के हैं । योगियों की साधना के अंग हैं ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

जय समवशरण विलास मुक्ति स्वरूप दिन दूना बढ़े ।
चार के चौबीस चौंसठ छ्यानवे से भी बढ़े ॥ १२ ॥

छहजनों ने प्रसाद लिया

मुकुट दोई आये। सोने की घुंघरी। हीरा पदार्थ जड़ित। और माले अनन्त समूह। उत्पन्न प्रवेश प्रसाद दियो। जने पाँच छह लियो। कमलावती रुइया जिन। भक्तावती। सुवनावती। विगस रंज। रमण श्रेणि। छत्र चार उत्पन्न स्वभाव आये। आयरण छत्र। आराध्य छत्र। आलाप छत्र। सर्वांग छत्र। पदतिलक बैठे सुदृष्टि। साढ़े बारह कोड़ि परम आनन्द स्वभाव ॥ ११ ॥

टीका—मौलि द्वे आगते, अनन्तमालाश्च। सुवर्णकिंकणिका विभूषिते। रत्नपदार्थ जटिते। श्रीगुरुदेवैः प्रदत्तः उत्पन्नप्रवेशस्वभावस्य सम्यक्त्वस्य प्रसादः पञ्चषट् जनैश्च गृहीतः स्वस्वभाव प्रसादः। के ते पंच षट्जनाः? निम्नप्रकारेण, कमलावती, रुइयाजिनः, भक्तावती, सुवनावती, विगसरंजः, रमणश्रेणिः। स्वभावे उत्पन्नाद्चत्वारश्छत्रस्वभावा आगताः। आयरणछत्र स्वभावः। आलापछत्र स्वभावः। आराध्यछत्र स्वभावः। सर्वांगछत्रस्वभावश्च। सौम्यदृष्टिः स्वामीपदतिलकस्वरूपास्तिष्ठन्ति श्रीगुरुतारणदेवाः। सार्धद्वादशकोटि परमानन्द स्वभावाः ॥ ११ ॥

काव्य

मुकुटद्वयं सुवर्णा किंकणिका रत्नसंयुता।
मालिकानामनन्तानां समूहश्चागतात्र च ॥ २२ ॥
पंचषट्जनैर्गृहीतः रुइया कमलावती।
सुवनावती च भक्ताविगसो रमणस्तथा ॥ २३ ॥
उत्पन्नस्य स्वभावस्य चतुश्छत्र समागताः।
आयरणाराध्यालापोऽपि च सर्वांग भेवतः ॥ २४ ॥
सुदृष्टेश्चपदस्तिलकः सार्धद्वादशकोटयः।
परमानन्द स्वभावाः स्वात्मानन्दानुभूतिदः ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—सोने की घुंघरू तथा रत्नपदार्थ जड़ित दो मुकुट आये। अनन्त स्वभाव की मालाओं के समूह आये। शुद्धस्वभाव के प्रवेश का प्रसाद दिया। उस प्रसाद को पाँच छह जनों ने लिया—कमलावती, रुइयाजिन, भक्तावती, सुवनावती, विगसरंज, रमणश्रेणि। उत्पन्न स्वभाव के चार छत्र आये—आयरण छत्र, आराध्य छत्र, आलाप छत्र, सर्वांग छत्र। सुदृष्टि पदतिलक स्वामी बैठे हैं। १२॥ करोड़ परम आनन्द स्वभाव के ही भेद स्वरूप हैं॥ ११॥

टीका अर्थ—सोने की घुंघरू और रत्न पदार्थ जड़ित दो मुकुट आये और अनन्त मालाओं के समूह भी आये। श्रीगुरुदेव ने उत्पन्न प्रवेश स्वभाव सम्यक्त्व का प्रसाद दिया। पाँच छहजनों ने वह प्रसाद ग्रहण किया। कौन वे ५-६ जनें? निम्न प्रकार—कमलावती, रुइयाजिन, भक्तावती, सुवनावती, विगसरंज, रमणश्रेणि। उत्पन्न शुद्धस्वभाव के चार छत्र आये—आयरण छत्र, आराध्य छत्र, आलाप छत्र, सर्वांग छत्र। सौम्यदृष्टि पदतिलक स्वामी स्वरूप बैठे हैं गुरुतारणदेव। साढ़े बारह करोड़ परम आनन्द स्वभाव हैं॥ ११॥

काव्य अर्थ—दो मुकुट सोने की घुंघरू और रत्नपदार्थ जड़ित आये, अनन्त मालाओं के समूह भी आये। शुद्धस्वभाव का प्रसाद पाँच छह जनों ने लिया। रुइयाजिन, कमलावती, सुवनावती, भक्तावती, विगसरंज, रमणश्रेणि। उत्पन्न स्वभाव के चार छत्र आये—आयरण छत्र, आलाप छत्र, आराध्य छत्र, सर्वांग छत्र। सौम्यदृष्टि पदतिलक स्वरूप विराजे हैं। साढ़े बारह करोड़ परम आनन्द स्वभाव आत्मानन्द की अनुभूति के देने वाले हैं॥ २२-२३-२४-२५॥

विशेषार्थ—यह नौवाँ अध्याय है। अब १ अध्याय के बाद ही ग्रन्थ समाप्त होगा। गुरुमहाराज के शिष्यों की संख्या नाममाला ग्रन्थराज के अनुसार ११ लाख होती है। समझने की बात है। ग्यारह लाख शिष्यों में छह शिष्य-शिष्याओं ने वह प्रसाद प्राप्त किया जो गुरुदेव के जीवन भर की साधना का सार था, सम्यक्त्व। अर्थात् गुरुमहाराज का सम्पूर्ण उप-

देश अपने जीवन में उतार लिया इन छह जनों ने, इनके धन्यनाम ऊपर दिये ही हैं ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

इस सूत्र में मन्दिर विधी के समय का उत्सव नया।
आनन्द परम स्वभाव के बाजे बजाये कर दया ॥ १३ ॥

पिण्डस्थ ध्यान की ५ धारणायें

चरि चरन चरिय। चरण ध्रुव चरन चरिय। अगम, अथाह, असह, अलह, सुर उवन चरी। ककका। पपपा। सससा। ररा। ललला। धध-धा। भरनु औंजनु। अनन्त औंजनु। अनन्त प्रवेश ॥ १२ ॥

टीका—चारित्राचरणमाचरतु। ध्रुवस्वभाव चरणाचरणमाचरतु। अगम्याथाहासह्यालभ्यस्वरूपसम्यक्चारित्रमाचरतु। स्वस्य उवनदेवमपि स्वरूपे आचरतु। पार्थिव्याग्नेयी वायुवारुणी तत्र रूपवतीति पञ्चधारणा पिण्डस्थध्यानस्य। तासामेव ककका, पपपा, सससा, ररा, ललला, धधधाद्यक्षराणि साधनायामुपयोगिनश्च, कुम्भकरेचकपूरक प्राणायामभेदे भरनु इति पूरके औंजनु इति रेचके प्राणायामविधौ योगशास्त्रानुसारेण ज्ञातव्यमस्ति। अत्र अनन्त औंजनुशब्दश्च विचारणीयः। अनन्ते आत्मनि वा या कर्मसामग्री विद्यते तामनन्तस्वरूपान्निस्सारय इति औंजनु शब्दस्यार्थः। औंजनु इति रिक्तकरणं, शून्यकरणं। अनन्तस्य शुद्धिं कृत्वा तत्रैव प्रविष्टो भव ॥ १२ ॥

काव्य

चारित्राचरणाचरन्तु चरित्तं शुद्धं सुचरणं ध्रुवं,
अगमाथाह स्वलभ्य उवन चरणं पिण्डस्थ ध्यानं चरन्।
आग्नेयी पृथिवी च वायु जलदा तल्लक्षणं धारणा,
प्राणायाम विधि त्वथाक्षर विधि पिण्डस्थध्याने चरं ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ—स्वरूपाचरण चारित्र को आचरण में लाओ। ध्रुव स्वभाव के चारित्र को आचरण में लाओ। अगम्य अथाह असह्य अलभ्य यह उवन चरण स्वरूपाचरण का आचरण करो। ककका, पपपा, सससा, ररा, ललला, धधधा ये पार्थिवी आग्नेयी आदि धारणाओं के अक्षर हैं। भरनु और औंजनु ये प्राणायाम के भेदपूरक और रेचक के नाम हैं। अपने अनन्त को अपने शुद्ध स्वभाव से पूरक बनाओ और विभाव कर्म सामग्री को औंज दो, खाली कर दो। अनन्त में प्रवेश करो ॥ १२ ॥

टीका अर्थ—स्वरूपाचरण चारित्र का आचरण करो। ध्रुव स्वभाव के चारित्र का आचरण करो। अगम्य, अथाह, असह्य और अलभ्य यह चारित्र उवन का आचरण करो। पार्थिवी, आग्नेयी, वायु, वारुणी, तत्र रूपवती ये पांच धारणा पिण्डस्थ ध्यान की हैं। उनके ही ये ककका, पपपा, सससा, ररा, ललला, धधधा आदि अक्षर साधना विधि में उपयोगी हैं। कुम्भक रेचक पूरक इन प्राणायाम के भेदों में भरनु यह पूरक है और औंजनु यह रेचक है। प्राणायाम विधि में, योगशास्त्रों में योगियों ने कथन किया है। यहाँ अनन्त औंजनु शब्द विचारणीय है। अनन्त स्वरूप अथवा आत्मा में जो कर्म सामग्री है उसको अनन्त स्वरूप से बाहर निकालो, यही औंजनु शब्द का अर्थ है। और अपने शुद्ध स्वभाव से उसे पूरक बनाओ, भरो यह पूरक है। अनन्त की शुद्धि करके वहीं प्रविष्ट हो जाओ ॥ १२ ॥

काव्य अर्थ—शुद्ध स्वरूपाचरण चारित्र का आचरण करो। अगम अथाह अलभ्य वह दुर्लभ चारित्र को पालो, पिण्डस्थ ध्यान में आग्नेयी, पृथिवी, वायु, वारुणी और तत्र रूपवती धारणा होती है। प्राणायाम विधि को और ककादि अक्षरों की विधि को यथायोग्य पिण्डस्थ ध्यान में अनुभव करो ॥ २६ ॥

विशेषार्थ—पिण्डस्थ ध्यान की पांच धारणाओं की साधना के अक्षर आदि का वर्णन है। सभी विषय शास्त्रों में प्रसिद्ध है। अतएव यहाँ अनावश्यक विस्तार करना उचित नहीं ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

पिण्डस्थ ध्यान स्वरूप में जब धारणायें धारते।
उस समय का वर्णन यहाँ इस सूत्र में उच्चारते ॥ १४ ॥

स्वामी जी के समक्ष महोत्सव हो रहा है

दुन्दुही शब्द बारह। आयरण पति आयो रे। देखहु आपनो। आय देखहु। चौंसठ मुखा आयरण पति। मागधी भाषा। दुन्दुही शब्द। उत्पन्न दिव्यध्वनि अनन्त प्रवेश। ध्रुवरमण। करणावती आई। कमलावती कहु आय मिली। विनती करत हैंहि। आनन्द कोड महोत्सव। अनन्त करत हैंहि। उत्पन्न प्रवेश। बहुरि बहुरि एक आरते मांगत निवांछने करतु। अनन्त आभरण पहिरे। उत्पन्न प्रवेश। उत्पन्न आयरण। त्रिजोग कलश। उत्पन्न उत्पन्न आयरण उत्पन्न अनन्त आयरन। अनन्त उत्पन्न प्रवेश। आयरण त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी। अनन्तानन्त प्रवेश। अनन्तानन्त नाथ। अनन्तानन्त शाश्वते सुन्न प्रवेश। पात्र पात्र पात्र। उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न। आयरण जिन तं लाइये, आराध धरिय सम्हारे। आलाप जिन सन्मुख भये। तं पात्र नन्ते विचारे। जिनवर स्वल्प शाह सम्हारे ॥ १३ ॥

टीका—द्वादशदुन्दुभिशब्दाः भवन्त्यधुना। आयरणपति आगता रे! पश्यतामस्मदीयं। अत्रागत्य पश्यताम्। चतुःषष्ठिमुखाः आयरणपतिः। मागधीभाषा। दुन्दुभिशब्दाः। उत्पन्न दिव्यध्वनिः। अनन्ते प्रवेश। ध्रुवरमणं। आगता करणावती। आगत्य कमलावतीतः मिलिता। नतिविनतिविमर्श करोति, आनन्दकोडमहोत्सवेऽनन्ताश्च कुर्वन्ति। उत्पन्न प्रवेशः। पुनः पुनः एकारते याचति नृत्यति च। अनन्ताभरणैर्विभूषिता।

उत्पन्न प्रवेशः। उत्पन्नाचरणः। त्रियोगकलशाः। उत्पन्नोत्पन्नाचरणो-त्पन्नः। अनन्ताचरणाः। अनन्तोत्पन्नः प्रवेशः। आचरण त्रैलोक्यनाथः। अनन्ते प्रविष्टः। अनन्तावन्त प्रवेशः। अनन्तानन्तनाथः। अनन्तानन्त शाश्वत शून्येषु प्रविष्टः। पात्र पात्र पात्रस्वरूपः। उत्पन्नः। उत्पन्नः। उत्पन्नः। आचरणं जिन! त्वं गृहाण। आराध्यं सावधानतया धर! जिनसन्मुखालापोऽभूत् गृहाण। तमनन्तपात्रं विचारे आनीयताम्। हे स्वल्प शाह! शाह। स्वशुद्धात्मजिनवरं सावधानतया धर॥ १३॥

काव्य

स्वरूपाचरणस्वामी आगतः पश्य स्वं जनम्।
चतुःषष्ठिमुखा स्वामी समवशरणाधिपः॥ २७॥
दुन्दुभिर्मागधी भाषा च दिव्यध्वन्यन्तर्ध्वनिः।
ध्रुवानन्त प्रवेशो हि रमणं करणावती॥ २८॥
कमलावतीं मिलिता विनय प्रार्थना रता।
अनन्तोत्सवे नृत्यन्ति ज्योतिरेकारते युता॥ २९॥
अनन्ताभरणायुक्ता आचरणोत्पन्ना तथा।
त्रियोगकलशाचारस्त्रैलोक्याधिपतिः स्वयं॥ ३०॥
अनन्तनाथः प्रवेशी अनन्तानन्त भावनाः।
शून्यप्रवेश पात्रत्वं बारबारोत्पन्नं कुरु॥ ३१॥
आचरणं तं हे जिन! आनय, धर! यत्नपूर्वकाराध्यम्।
आलापं जिन सन्मुख विचारयत्वं च पात्रतानन्तम्॥ ३२॥
हे शाह! जिनवरस्त्वं! यत्नेन स्वल्पशून्यमाचरणं।
परिपूर्णं फूलनार्थं दृष्टव्यं ममल पाहुडं शास्त्रं॥ ३३॥

सूत्रार्थ—दुन्दुभी के शब्द बारह बार हो चुके हैं। आयरणपति आया। अपने जन देखो। आकर देखो, चौंसठ मुख वाले (जिनश्रेणि के ६४ कलश) हैं। मागधी भाषा है। दुन्दुभी शब्द हैं। उत्पन्न दिव्यध्वनि है। अनन्त प्रवेश है। ध्रुवरमण है। करणावती आ गईं। कमलावती से आकर

मिलीं। विनती कर रही हैं। आनन्दकोडमहोत्सव अनन्त के करते हैं। उत्पन्न प्रवेश हो रहे हैं। फिर फिर से एक आरते मांगती हुई नृत्य कर रही हैं। अनन्त स्वरूप के आभरणों से सुशोभित हैं। उत्पन्न प्रवेश हो रहे हैं। उत्पन्न स्वरूपाचरण है। त्रियोग के कलश हैं। प्रगट है, प्रगट है, स्वरूपाचरण प्रगट है। अनन्त आचरण है। त्रैलोक्यनाथ का आचरण अनन्त प्रवेशक है। अनन्तानन्त में प्रवेश है। अनन्तानन्त नाथ है। अनन्तानन्त शाश्वत शून्य में प्रवेश है। पात्र है। पात्र है। पात्र है। उत्पन्न है। उत्पन्न है। उत्पन्न है। हे जिन ! उसी आचरण को लाइये। आराध्य को सम्हालो। आलापजिन के सन्मुख हुये हो, उस अनन्त पात्रता का विचार करो। हे स्वल्प शाह ! अपने जिनवर स्वरूप को सम्हालो ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—दुन्दुभी के बारह शब्द इस समय हुये। आयरणपति आया रे। अपने जनों को देखो। यहाँ आकर देखो। चौंसठ मुखा आयरणपति (स्वरूपाचरण का स्वामी) है। मागधी भाषा है। दुन्दुभी के शब्द हैं। उत्पन्न दिव्यध्वनि है। अनन्त में प्रवेश है। ध्रुव में रमण है। करणावती आईं। आकर कमलावती से मिलीं। विनती कर रही हैं। अनन्त के आनन्दकोड महोत्सव हो रहे हैं। उत्पन्न प्रवेश है। फिर फिर से एक आरते मांगती हुई नृत्य कर रही हैं। अनन्त के आभरणों से सुशोभित हैं। उत्पन्न प्रवेश है। स्वरूपाचरण प्रगट है। त्रियोग के कलश हैं। उत्पन्न उत्पन्न आचरण उत्पन्न है। आचरण अनन्त है। अनन्त में हो उत्पन्न प्रवेश है। आयरण त्रैलोक्यनाथ है। अनन्त में प्रविष्ट है। अनन्तानन्त का प्रवेश है। अनन्तानन्त नाथ है। अनन्तानन्त शाश्वत शून्य में प्रवेश है। पात्र पात्र पात्र स्वरूप हैं, उत्पन्न हैं। उत्पन्न हैं। उत्पन्न हैं। हे जिन ! तुम आचरण को ही लाओ। ग्रहण करो। आराध्य को सम्हाल कर धारण करो। आलाप जिन (जिनवाणी) के सन्मुख हुये हो उसको ग्रहण करो। अनन्त की पात्रता का, योग्यता का विचार करो। हे स्वल्प शाह ! अपने जिनवर स्वरूप को सावधान होकर ग्रहण करो ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—स्वरूपाचरण के स्वामी आ गये। अपने स्वजन को देखो। चौंसठ मुखा आयरणपति समवशरण का स्वामी है ॥ २७ ॥

दुन्दुभी शब्द है। मागधी भाषा है। दिव्यध्वनि है। अन्तर्ध्वनि है। ध्रुव अनन्त में प्रवेश है, रमण है। करणावती आई ॥ २८॥

कमलावती से मिलीं, विनय प्रार्थना कर रही हैं। अनन्त के उत्सव में एक आरती के साथ नृत्य कर रही हैं ॥ २९ ॥

अनन्त के आभरण युक्त आचरण को उत्पन्न कर रही हैं। त्रियोग के कलश हैं। स्वयं त्रैलोक्याधिपति है ॥ ३० ॥

अनन्तनाथ है, अनन्तानन्त भावों के प्रवेशी है। शून्य में प्रवेश है। ऐसी पात्रता को बार बार उत्पन्न करो ॥ ३१ ॥

हे जिन ! अपने आचरण को लाइये। धारण कीजिये। समयसाली हे अपने आराध्य स्वभाव को सम्हालो। आलाप जिन के सम्मुख हुये हो—अपने अनन्त स्वभाव की पात्रता का विचार करो ॥ ३२ ॥

हे शाह ! तुम जिनवर हो। यत्न से स्वल्प शून्य को आचरो। और परिपूर्ण फूलना के लिये ममलपाहुड ग्रन्थ में आयरण फूलना देखो ॥ ३३ ॥

विशेषार्थ—श्रीगुरु महाराज के जीवन में उनकी उपस्थिति में बड़े बड़े विशाल तिलक महोत्सव ग्यारह बार हुये। एक तिलक उनकी अनुपस्थिति में रुइयारमण जिन ने कराया। ऐसे १२ हुये उन्हीं जैसा एक तिलकमहोत्सव इस सूत्र में कहा जा रहा है। श्री गुरुदेव के समक्ष महोत्सव के कार्यक्रम हो रहे हैं। परन्तु स्वामीजी की अपनी साधना, स्वरूपाचरण और आयरण के संगोत में अन्तर नहीं आया। स्वरूपाचरण को लावो। इत्यादि। अब आप बतलाइये महोत्सव कहाँ हो रहा है? बाहर या भीतर? बाहरवालों का महोत्सव बाहर और भीतर वालों का भीतर। श्री गुरु परमोपकारी जयवन्त हों ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

तारण तरण गुरुदेव की धर्मामृता देखो सभा।
मालूम ऐसा हो रहा हो ही रही है वह सभा ॥ १५ ॥
आयरण जिन ते लाइये वह फूलना उनके लिये।
जिन स्वल्प शाह स्वनाथ बन उनको बुलाने के लिये ॥ १६ ॥

शुद्धस्वभाव का स्पर्श

ज्ञान तीन । रयण तीन । उत्पन्न ज्वाला । उत्पन्न वायु । उत्पन्न अग्निज्वाला । बलात्कार चौथो सम्पूर्ण । संजोग अबल बली । उत्पन्न परस, उत्पन्न हितकार परस । उत्पन्न सहकार परस । उत्पन्न शाह परस । उत्पन्न सर्वांग परस । उत्पन्न परस पांच । आयरण शब्द । आराध्य शब्द । आलाप शब्द । शाह शब्द । सुवन शब्द । उत्पन्न शब्द । प्रवेश शब्द । नो उत्पन्न ॥ १४ ॥

टीका—ज्ञानानि त्रीणि । त्रीण्येव रत्नानि । उत्पन्नज्वाला पिण्डस्थध्याने आग्नेयधारणायां । उत्पन्न वायुः वायुधारणायां पिण्डस्थध्याने । उत्पन्न अग्निज्वाला आग्नेयधारणायां पिण्डस्थध्याने । बलात्कार चतुर्थ-प्राणायामचतुर्थेति "बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः" अनायासागन्तुकः राजयोगस्य प्राणायामोऽयं । अनायासेन बलात्कारेण वा भवति । अबल-बलीजिननाथः । उत्पन्न स्पर्शः पंच एवं प्रकारेण—१. उत्पन्न स्पर्शः, २. उत्पन्न हितकार स्पर्शः, ३. उत्पन्न सहकार स्पर्शः, ४. उत्पन्न शाह स्पर्शः, ५. उत्पन्न शाह स्पर्शः । सप्त शब्दाः—१. आयरण शब्दः, २. आराध्य शब्दः, ३. आलाप शब्दः, ४. शाह शब्दः ५. सुवन शब्दः, ६. उत्पन्न शब्दः, ७. प्रवेश शब्दः । नो उत्पन्न सूक्ष्म स्वभावे भवन्ति शब्दाः सर्वे ॥ १४ ॥

काव्य

सूत्रेऽस्मिन् पिण्डस्थध्याने धारणा पवनाग्नयः ।
बलात्कारेण चित्तस्य वृत्तिरोधं निरूपितम् ॥ ३४ ॥
अबलबली संयोगः उत्पन्नश्च स्वरूप संस्पर्शः ।
हित सहकार स्पर्शः सर्वांगे तव प्रवेश स्पर्शः ॥ ३५ ॥
स्पृशति पंच ज्ञानं आयरणाराध्य शब्दमालापं ।
शृणु रे शाह सुवन ! त्वं ! उत्पन्नं च प्रवेशतो शब्दं ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ—ज्ञान तीन हैं। रत्न तीन हैं। उत्पन्न ज्वाला। उत्पन्न वायु। उत्पन्न अग्निज्वाला। बलात्कार चौथी सम्पूर्ण। संयोग अबलबली। उत्पन्न स्पर्श। उत्पन्न हितकार स्पर्श। उत्पन्न सहकार स्पर्श। उत्पन्न शाह् स्पर्श। उत्पन्न सर्वांग स्पर्श। उत्पन्न स्पर्श ये पाँच हैं। आयरण शब्द। आराध्य शब्द। आलाप शब्द। शाह् शब्द। सुवन शब्द। उत्पन्न शब्द। प्रवेश शब्द। नो उत्पन्न॥ १४॥

टीका अर्थ—ज्ञान तीन मतिश्रुतावधि। रत्न तीन सम्यग्दर्शनादि। उत्पन्न ज्वाला। आग्नेय धारणा में पिण्डस्थध्यान की। उत्पन्न वायु, वायुधारणा में पिडस्थध्यान की। उत्पन्न अग्निज्वाला पिण्डस्थध्यान में। बलात्कार चौथा—प्राणायाम चौथा, बाह्याभ्यन्तर विषय विकारों को रोकने वाला चौथा, अनायास आगन्तुक राजयोग का प्राणायाम। बलात्कार या अनायास रूप में होता है। अबलबली अरहन्त जिननाथ। उत्पन्न स्पर्श पाँच हैं। इस प्रकार से—१. उत्पन्न स्पर्श २. उत्पन्न हितकार स्पर्श ३. उत्पन्न सहकार स्पर्श ४. उत्पन्न शाह् स्पर्श ५. उत्पन्न सर्वांग स्पर्श। ऐसे स्पर्श पाँच। शब्द सात—१. आयरण शब्द २. आराध्य शब्द ३. आलाप शब्द ४. शाह् शब्द ५. सुवन शब्द ६. उत्पन्न शब्द ७. प्रवेश शब्द। सूक्ष्म स्वभाव में उत्पन्न होने वाले शब्द ये सात हैं॥ १४॥

काव्य अर्थ—इस सूत्र में पवनधारणा तथा अग्निधारणा जो कि पिण्डस्थध्यान में होती है। उनके प्रयोग की बात है। तथा चित्तवृत्ति को बलात्कार पूर्वक चौथे प्राणायाम द्वारा रोकना यह निरूपण किया है॥ ३४॥

जिनराज सहयोगी ही अबलबली हैं। उत्पन्नस्वरूप स्पर्श हितकार, सहकार स्पर्श, सर्वांगस्पर्श में आत्मा के समस्त प्रदेशों का स्पर्श बताया॥ ३५॥

पाँच ज्ञानों को आयरण, आराध्य, आलाप शब्द को, हे जिन शाह् सुवन! तुम शाह् शब्द सुवन शब्द उत्पन्न और प्रवेश शब्द इनको सुनो तथा सूक्ष्म स्वभाव में प्रवेश करो॥ ३६॥

विशेषार्थ—आत्म स्वभाव को पाँच प्रकार से छुआ है। स्पर्श किया है। हितकार, सहकार, शाह, सवाँग और उत्पन्न ये मार्ग हैं जिनसे आत्मा के भीतर जाकर उसे स्पर्श किया जाता है, इसी प्रकार ७ शब्द हैं, जो अन्तर्ध्वनि स्वरूप हैं इन सूत्रों के सभी विषय स्वामी जी के प्रयोग किये हुये हैं ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

पिण्डस्थध्यान विधान से निज पिण्ड में पाले उसे।
छूले उसे स्पर्श के अनुयोग से ध्याले उसे ॥ १७ ॥

जो उत्पन्नी ने कहा सो होगा

जो उत्पन्नी कह्यो सो होई। जिन शाह। जिन उत्पन्न वाह। जिन उत्पन्न हियधार वाह। जिन उत्पन्न शाह वाह। जिन आयरण वाह। जिन उत्पन्न आराध्य वाह। जिन उत्पन्न आलाप वाह। जिन उत्पन्न वृष्ट वाह। जिन रमण प्रमाण वाह। जिन उत्पन्न प्रमाण वाह। जिन अक्षय वाह। जिन उत्पन्न अक्षय वाह। जिन अनन्त वाह। अनन्त प्रवेश वाह। जिन अल्प वाह। जिन उत्पन्न अल्प वाह। जिन स्वल्प वाह। जिन उत्पन्न स्वल्प वाह। जिन अवह वाह। जिन उत्पन्न शाह वाह। जिन अगम वाह। जिन उत्पन्न अनन्त अगम वाह। जिन दिप्ति वाह। जिन उत्पन्न दिप्ति अनन्त वाह। जिन दृष्टि वाह। जिन उत्पन्न दृष्टि अनन्त वाह ॥ १५ ॥

टीका—उत्पन्नी जिनोत्पन्नद्वादशांगवाणी यत्कथिता तद्भविष्यति। जिन एव शाहः। जिन एव उत्पन्न शुद्धात्मस्वरूपस्यवाहकः। जिन एव उत्पन्न हितकारवाहः। जिन एव उत्पन्न शाहवाहकः। जिन एव आयरण-वाहकः। जिन एव उत्पन्न आराध्यवाहकः। जिन एव उत्पन्न आलाप-

वाहकः। जिन एव उत्पन्न दृष्टवाहकः। जिन एव रमण प्रमाणवाहकः। जिनोत्पन्न प्रमाणवाहकः। जिन एव अक्षय स्वरूपत्वबाहकः। जिनोत्पन्नाक्षयत्ववाहकः। जिन एव अनन्तवाहकः। अनन्त प्रवेशवाहकः। जिनोऽल्पवाहकः। जिनोत्पन्नाल्पवाहकः। जिनः स्वल्प शून्यवाहकः। जिनोत्पन्न स्वल्पवाहकः। जिन एव अवहवाहकः। जिनोत्पन्न शाह-वाहकः। जिनोऽगमवाहकः। जिनोत्पन्नोऽनन्तोऽगमवाहकः। जिनो विमि-वाहकः। जिनोत्पन्नविमि अनन्तवाहकः। जिनोऽनन्तानन्त दृष्टिवाहकः॥

काव्य

वाहक-वाह-निवहनं, उत्पन्न्युक्ता तवेव सद्भवति।
सूत्रेऽस्मिन् जिनपरिणतिः, संक्षिप्ता सा निरूप्यते वात्र॥ ३७॥
जिनः शाहो जिनो वाहो जिनोत्पन्नश्च वाहकः।
जिनोत्पन्नो हितोवाहो जिनः शाहश्च वाहकः॥ ३८॥
जिनाचरणस्य वाहो जिनदृष्टिश्च वाहकः।
जिनोत्पन्नो दृष्टिवाहो जिनः सहजवाहकः॥ ३९॥
सहजोत्पन्नस्य वाहो वाहो जिन प्रमाणतः।
सहजानन्दमानन्दं जिनानां च चतुष्टयः॥ ४०॥
अक्षयोजिनवाहश्च जिनोत्पन्नाक्षयस्तथा।
जिनोऽनन्तस्य वाहः स्याद्वाहानन्त प्रवेशकः॥ ४१॥
अल्पवाहो जिनोक्तश्च जिनोत्पन्नाल्पवाहकः।
जिनश्च स्वल्पवाहो वा थाहवाहो जिनोऽथवा॥ ४२॥
जिनोत्पन्नः शाहवाहः, अगमो जिनवाहकः।
जिनोत्पन्नागमोवाहः, अनन्तो वाहकस्तथा॥ ४३॥
जिनदिप्ति वाहको वा जिनोत्पन्ना दिप्तिस्तथा।
अनन्तवाहश्चवाहोऽनन्तोत्पन्न प्रवेशकः॥ ४४॥
शून्यस्वभावान्सर्वान्हि, वहने वाहको भव।
निर्वहनेवक्षावृष्टिः आत्मवर्शी स्वभावतः॥ ४५॥

सूत्रार्थ—जो उत्पन्नी ने कहा वही होगा। जिन ही वाह हैं। जिन

ही उत्पन्न वाह हैं। जिन ही उत्पन्न हिययार वाह है। जिन उत्पन्न शाह-वाह हैं। जिन आयरण वाह हैं। जिन उत्पन्न आराध्य वाह हैं। जिन उत्पन्न आलाप वाह हैं। जिन उत्पन्न दृष्टिवाह हैं। जिन रमण प्रमाण-वाह हैं। जिन उत्पन्न प्रमाण वाह हैं। जिन अक्षय वाह हैं। जिन उत्पन्न अक्षय वाह हैं। जिन अनन्त वाह हैं। अनन्त प्रवेश वाह हैं। जिन अल्प-वाह हैं। जिन उत्पन्न अल्पवाह हैं। जिन स्वल्प वाह हैं। जिन उत्पन्न स्वल्प वाह हैं। जिन अवह वाह हैं। जिन उत्पन्न शाहवाह हैं। जिन अगम वाह हैं। जिन उत्पन्न अनन्त अगमवाह हैं। जिन दिप्तिवाह हैं। जिन अनन्तानन्त दृष्टिवाह हैं। जिन उत्पन्न दिप्ति अनन्त वाह हैं ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—जिनोत्पन्न द्वादशांग वाणी (उत्पन्नी) ने जो कहा है वही होगा। जिन ही शाह हैं। जिन ही उत्पन्न शुद्धात्म स्वरूप के वाहक हैं। जिन संज्ञा प्राप्त सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न हितकार के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न शाहपद के वाहक या निभाने वाले हैं। जिन ही आयरण वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न आराध्य के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न आलाप के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न दृष्ट के वाहक हैं, जिन ही रमण प्रमाण के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न प्रमाण के वाहक हैं। जिन ही अक्षय स्वरूप के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न अक्षय पद के वाहक हैं। जिन ही अनन्त के वाहक हैं। अनन्त प्रवेश के वाहक हैं। जिन ही अल्प वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न अल्प वाहक हैं। जिन स्वल्प वाहक हैं। जिन उत्पन्न स्वल्प वाहक हैं। जिन अवह के भी वाहक हैं। जिन उत्पन्न शाह के वाहक हैं। जिन अगमवाह हैं। जिन उत्पन्न अनन्त के वाहक हैं। जिन दिप्ति के वाहक हैं, जिन उत्पन्न अनन्त दिप्ति के वाहक हैं। जिन अनन्तानन्त दृष्टि के वाहक हैं ॥ १५ ॥

जिन संज्ञा प्राप्त चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि का स्वरूप इसी वर्णन से सम्बन्धित आगे दशम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही लिखते हैं ॥१५॥

काव्य अर्थ—वाह, वाहक, निवहन यह एक ही अर्थ के वाचक शब्द हैं। जिनोत्पन्न वाणी (उत्पन्नी) ने जो कहा है वही होगा। इस सूत्र में

जिन सम्यग्दृष्टि आदि की परिणति और सामर्थ्य का संक्षेप में वर्णन किया है ॥ ३७ ॥

जिनशाह, जिनवाह, जिनोत्पन्न के वाहक हैं। जिन ही उत्पन्न हितकार हैं। जिन शाहपद के वाहक हैं ॥ ३८ ॥

जिन ही आचरण को वहन करते हैं। जिन दृष्टि के वाहक हैं। जिन उत्पन्न दृष्टि वाहक हैं। सहज वाह हैं ॥ ३९ ॥

सहज उत्पन्न वाह जिन प्रमाण वाह सहजानन्द आनन्द को और जिनेन्द्र चतुष्टयों के भी जिन ही वाहक हैं ॥ ४० ॥

अक्षय जिन वाह जिनोत्पन्न अक्षय वाह, जिन अनन्त वाह होते हैं। जिन ही अनन्त प्रवेश वाह हैं ॥ ४१ ॥

अल्प वाह जिनोक्त वाह जिनोत्पन्न अल्प वाहक हैं। जिन स्वल्प वाह हैं अथाह वाह हैं ॥ ४२ ॥

जिनोत्पन्न शाह वाह हैं। जिन अगम वाह हैं। जिन उत्पन्न अगम वाह हैं। जिन अनन्त वाहक हैं ॥ ४३ ॥

जिन दिप्ति वाहक हैं। जिन उत्पन्न दिप्ति वाहक हैं, जिन अनन्त वाहक हैं। जिन अनन्त उत्पन्न प्रवेश वाहक हैं ॥ ४४ ॥

समस्त शून्य स्वभावों का वहन करने में जैसे जिन ही वाहक हैं, समर्थ हैं वैसे ही हम भी जिन स्वभाव के वाहक बनें। जिन स्वभाव के निर्वाह में दक्षदृष्टि ही स्वभाव से आत्मदर्शी होते हैं ॥ ४५ ॥

विशेषार्थ—अध्याय के अन्त में श्रीगुरुदेव ने द्वादशांग में अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त की है। पूरे सूत्र में जिनपद की सामर्थ्य का विवेचन है। सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जीव कितना सामर्थ्यवान होता है? अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में चित्रण है ॥ १५ ॥

पद्यानुवाद

जिनशाह से उत्पन्न द्वादश अंग वाणी जो कहे।
होगा वही "जयकुँवर" वाहक बनो, जिनवर जो कहे ॥ १८ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

ॐ

दशमोऽध्यायः

जिन सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

चौथे जो उत्पन्न जैसे ऐसे होई। शाह होई। वाह होई। वर होई। वराई होई। संवर होई। संवराई होई। तप होई। तेज होई। लब्धि होई। अलब्धि होई। नन्द होई। आनन्द होई। रंज होई। रमण होई। दया होई। दयालु होई। अन्मोद होई। प्रिय होई। प्रवेश होई। प्रसाद होई॥ १॥

टीका—गुणस्थाने चतुर्थे यो यथा उत्पन्नो ईदृशो वा भवति। यथा—शाहो भवति, निजवैभवसम्पन्नो जिनसंज्ञा समन्वितः। वाहो वाहको भवति, निजनिर्विकार स्वभावस्य। वरो भवति उत्कृष्टसर्वप्रियस्वभावः। वराई इति वरस्य भावः सर्वेषां प्रति मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थभाव-युक्तः सुदृष्टिः। संवरो भवति शुभाशुभास्रवभाव निरोधकः शुद्धोपयोग-युक्तः संवर स्वभावे तन्मयः संवारको वा भवति। इच्छानिरोधस्वरूप तप युक्तः। तेजस्वीति प्रभावयुक्तः। क्षयोपशमादि पंचलब्धिसंपन्नो भवति। अलब्धिः अभावो मिथ्यात्वादिविभावभावानां। नन्दाश्चिदा-नन्दादिस्वभावयुक्तश्चैतन्यः। आनंद स्वभावो निराकुलता लक्षण सुख-स्वरूप संयुक्तः। रंज स्वभावः शुद्धस्वभावे रंजायमानभाव विभूषितः। रमणेति रमण स्वभावो मुक्तिरमणी रमणो वा भवति। चिद्रूपे रमणं करोति। तस्य स्वभावे दया, दयालुश्च सो भवति। अनुमोदनाभावानु-भव युक्तः। प्रियोभवति सर्वेषां। स्वात्मनि प्रवेशो प्रवीणः। स्वसमय-प्रसाद प्राप्तः। ईदृशो जिनश्चतुर्थे उत्पन्नो भवति॥ १॥

काव्य

गुणस्थाने चतुर्थे ये सम्यग्दर्शन भूषितः।
कीदृग्भवन्ति ते सर्वे समासेन निरूप्यते॥ १॥

साहोवाहो वरश्चापि संवरश्च संवारकः ।
गुणनिधिस्तपस्वी सः लब्धोऽलब्धलब्धकः ॥ २ ॥
नन्दश्चानन्दो भवति रञ्जश्च रमणोऽथवा ।
अनुमोदको दयालुः प्रियपात्र प्रसादतः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—चौथे में जो जैसे ही उत्पन्न होता है वह ऐसा होता है। जैसे—शाह होता है। बाह होता है। वर होता है। वरयाई—अच्छाइयों का घर होता है। संवर होता है। संवारक होता है। तप होता है, तेज होता है। लब्धि संयुक्त होता है। अलब्धि संयुक्त होता है। नन्द होता है। आनन्द होता है। रंज होता है। रमण होता है। दया होता है। दयालु होता है। अन्मोद होता है। प्रिय होता है। प्रवेश होता है। प्रसाद होता है। इन सब विशेषताओं से विभूषित होता है जो सम्यग्दृष्टि होता है ॥ १ ॥

टीका अर्थ—चतुर्थ गुणस्थान में जो जैसे ही उत्पन्न होता है, वह ऐसा होता है। जैसे—निज वैभव संपन्न, जिन संज्ञा संयुक्त शाह होता है। निज निर्विकार स्वभाव का वाहक होता है। सर्व प्रिय स्वभाव सहित वर होता है। सबके प्रति वह भी मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थभाव सहित होता है सुदृष्टि होता है। शुभाशुभास्रवभाव का निरोधक होता है। शुद्धोपयोग सहित होता है। संवर स्वभाव में तन्मय होता है। संवारक होता है। इच्छा निरोध स्वरूप तप युक्त होता है। प्रभावशाली तेजस्वी होता है। क्षयोपशमादि पंचलब्धि संपन्न होता है। मिथ्यात्वादि विभावभावों का अभाव करने से अलब्धि भाव वाला होता है। चिदानन्द स्वभाव सहित नन्द होता है। निराकुलता है लक्षण जिसका ऐसे सुख स्वरूप सहित आनन्द का भोक्ता होता है। शुद्ध स्वभाव में रंजायमान रंज स्वभाव होता है। निज रमण स्वभाव अथवा मुक्तिरमणी का रमण होता है। उसके स्वभाव में दया, वह दयालु होता है। अन्मोद अनुभव युक्त होता है। स्वानुमोदना स्वभाव होता है। सबका प्रिय होता है। आत्मा में प्रवेशक होता है। स्वसमय का प्रसाद प्राप्त हुआ, होता

है। ऐसा जिन चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि पद की विशेषताओं से विभूषित व्यवहार व परमार्थ दोनों में निर्दोष होता है ॥ १ ॥

काव्य अर्थ—चतुर्थ गुणस्थान में जो सम्यग्दर्शन से विभूषित होते हैं वे सब और कैसे होते हैं ? संक्षिप्त में निरूपण करते हैं ॥ १ ॥

शाह, बाह, वर, संवर, संवारक, गुणनिधि, तप, तेज, लब्धि, अलब्धि ॥ २ ॥

नन्द, आनन्द, रंज, रमण, दया, दयालु, अनुमोद, प्रिय, प्रवेश, पात्र और प्रसाद स्वरूप होता है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—जिनश्रेणि और सम्यक्त्व भाव की महिमा में यह पूरा ग्रन्थ ओत-प्रोत है। नवमें अध्याय के अन्तिम सूत्र में जिन स्वभाव की सामर्थ्य और विशेषताओं का विवेचन करते-करते इस अध्याय के प्रारम्भ में भी इसी विषय से अध्याय को प्रारम्भ कर रहे हैं ॥ १ ॥

जिन स्वभाव चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है। एक बार जिनपद प्राप्त हुआ कि फिर अनन्तकाल पर्यन्त यह अविनश्वर पद आत्मा के साथ रहता है। पूरा जिनशासन ही जिनपद का स्वरूप है। यहाँ शाहवाह आदि गुण सम्यक्त्व के पश्चात् ही प्रगट होते हैं। ये विशेषण आत्मशक्ति के विकास में ही प्रकाशित होते हैं ॥ १ ॥

पद्यानुवाद

सम्यक्त्व लेकर के चतुर्थ सु गुणस्थान ही में रहे।
वह शाह निज संपत्ति का वाहक गुणों को ही वहे ॥ १ ॥

अमृत-वाणी

जहाँ उदय तहाँ दृष्टि। जहाँ दृष्टि तहाँ विप्ति।
जहाँ विप्ति तहाँ शब्द। जहाँ शब्द तहाँ प्रिय।
जहाँ प्रिय तहाँ अन्मोद। जहाँ अन्मोद तहाँ खिपक।
जहाँ खिपक तहाँ मुक्ति। जहाँ मुक्ति तहाँ सुख।

—श्री ठिकाने जी

समयशाह

उत्पन्न त्रैलोक्य समय शाह। उत्पन्न हितकार सह-
कार। उत्पन्न उत्पन्न त्रैलोक्य समय शाह। उत्पन्न
आयरण। आराध्य आलाप ध्रुव दर्शत्रिक उत्पन्न दर्श
त्रिलोक समय शाह। दर्शन ज्ञान चारित्र। उत्पन्न
भय विलयन्ति। भय शल्य शंक विलय समय शाह।
उत्पन्न उक्त त्रिक समय शाह ॥ २ ॥

टीका—उत्पन्नस्त्रैलोक्य समयशाहः। उत्पन्नो हितकारः सहकारश्च। उत्पन्नोत्पन्नस्त्रैलोक्य समयशाहः। उत्पन्नायरण चारित्र स्वरूपाचरणं। एव च—आराध्यः। आलापः। ध्रुव दर्शत्रिक स्वभावोत्पन्नः। त्रैलोक्यदर्शनीयः समयशाहस्त्रैलोक्यदर्शी वा समयशाहः। दर्शनं, ज्ञानं, चारित्रं। उत्पन्न भय सप्त विलयन्ति। भयशल्यशंकाविरहितः समयशाहः। उत्पन्नोक्तत्रिकसमयः ॥ २ ॥

काव्य

उत्पन्नस्त्रिक समयः शाहोत्पन्नो हितंकरः।
सहकारोत्पन्नश्चापि त्रिकोत्पन्नश्च शाह सः ॥ ४ ॥
उत्पन्नाचरणाराध्योऽऽलापो ध्रुव दर्शस्तथा।
दर्शोत्पन्नस्त्रिकः शाहः समयो ज्ञान दर्शनम् ॥ ५ ॥
चरणोत्पन्ने विलयः शल्य शंका विभावना।
सः समय शाहोत्पन्नः समय शाहोक्तत्रिकः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—तीन लोक का समय शाह उत्पन्न हुआ, हितकारी सहकारी समयशाह उत्पन्न हुआ। त्रैलोक्य समयशाह उत्पन्न हुआ। उत्पन्न हुआ। आयरण स्वरूपाचरण उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार आराध्य, आलाप, ध्रुव, दर्शत्रिक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उत्पन्न हुये। त्रैलोक्यदर्शी समयशाह अथवा त्रैलोक्य में दर्शनीय समयशाह है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र यह दर्शत्रिक है। उत्पन्न हुये समयशाह से सर्व भयों का विलय होता है। भय शल्य शंकादि का विलय करने वाला समयशाह है ॥ २ ॥

टीका अर्थ—त्रैलोक्य समयशाह उत्पन्न हुआ। हितकार और सहकार उत्पन्न हुआ। त्रैलोक्य समयशाह उत्पन्न हुआ। उत्पन्न हुआ। स्वरूपाचरण आयरण उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार आराध्य, आलाप, ध्रुव, दर्शत्रिक स्वभाव उत्पन्न हुआ। त्रैलोक्य में दर्शनीय अथवा त्रैलोक्यदर्शी समयशाह है। दर्शनज्ञानचारित्र वह दर्शत्रिक है। उत्पन्न भय सात विलय होते हैं। भय शल्य शंकादि रहित समयशाह है। उक्तत्रिक सम्यग्दर्शनादि से विभूषित समयशाह उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

काव्य अर्थ—त्रिक समय उत्पन्न हुआ। हितंकर और भव्य जीवों का आश्रयत्रिक समय संयुक्त समयशाह उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

आयरण, आराध्य, आलाप, ध्रुव, दर्शी, सम्यग्दर्शनादि गुण और गुणी समयशाह उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

चारित्र के उत्पन्न होने पर भय शल्य शंकादि समस्त विभावभाव विलय हो जाते हैं। उक्त त्रिक के साथ समयशाह उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—समयशाह का कितना अद्भुत स्वरूप पूरे सूत्र में निबद्ध किया है। समयशाह अपनी विभूति का स्वामी है। हितकार सहकारादि समस्त गुण समयशाह का वैभव है। यही वैभव जन्ममरण भय का विनाश करता है। भय शल्य शंका को समयशाह छूता भी नहीं। समयनाम शुद्धात्मा का है। जिसे अपना भान, अपनी भाव भासना हो चुकी है, वही समयशाह है ॥ २ ॥

पद्यानुवाद

गुणगण अनेकों सहित वह है शाह अपने समय का।
त्रैलोक्य का वह शाह उसका कार्य भव भय विलय का ॥ २ ॥

पञ्चामृत स्वभाव

उत्पन्न केवल, सम्पूर्ण केवली। उत्पन्न सर्व केवल।
उत्पन्न भुक्त चतुष्टय। उत्पन्न उक्त शाह। [illegible]री
समय समय समय। उत्पन्न समय। हितकार [illegible]।

सहकार समय । मोरो समय पंच त्रिक । पञ्चामृत
स्वभाव प्रवेश । त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेश ॥ ३ ॥

टीका—सम्पूर्णकेवलीनां ज्ञातमेकमेवोत्पन्नं केवलज्ञानं । सर्वेषां केवलीनां सदृशं ज्ञानं केवलज्ञानं । स्वानुभूत्यामुत्पन्नचतुष्टयस्वभावो भुक्तचतुष्टयः । उक्तशाह-जिनेन्द्रवाणी, द्वादशांगश्रुतज्ञानमुत्पन्नं । मम समय समय समयः । उत्पन्न समयः । हितकार समयः । सहकार समयः । पंचत्रिक स्वरूपो मम समयः । पंचामृत स्वभावेप्रविष्टोऽहं । अनन्त प्रवेशः । त्रैलोक्यनाथः ॥ ३ ॥

काव्य

उत्पन्न सदृशं ज्ञानं पूर्णज्ञानं च केवलं ।
उत्पन्न केवलीभुक्ताः स्वचतुष्टय भोगिनः ॥ ७ ॥
मत्समयश्च समयः समयो हितकारकः ।
सहकारश्च समयः मत्समयः पंचत्रिकः ॥ ८ ॥
पञ्चामृत स्वभावश्च नाथस्त्रैलोक्यभूषणः ।
अनन्तानन्त प्रवेशी शुद्धभावस्य ग्राहकः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—सम्पूर्ण केवली भगवन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होता है। सबको केवलज्ञान ही उत्पन्न होता है। उत्पन्न चतुष्टय को सब ही भोगते हैं, उनसे ही उक्त शाह उत्पन्न होते हैं। एक-एक समय, समय-समय मेरा स्व समय है। वही समय मेरे समय में उत्पन्न हुआ है। यही समय हितकार है, सहकार है। मेरा समय पांच त्रिकवाला है। त्रैलोक्यनाथ अनन्त समय में प्रविष्ट हैं ॥ ३ ॥

टीका अर्थ—सम्पूर्ण केवलज्ञानियों का ज्ञान एक सदृश उत्पन्न होनेवाला केवलज्ञान है। समस्त केवली भगवन्तों का ज्ञान एक समान है, केवलज्ञान है। स्वानुभूति में भुक्त उत्पन्न चतुष्टय ही भुक्तचतुष्टय हैं। उनसे ही उक्त शाह द्वादशांग श्रुत उत्पन्न होता है। मेरा समय एक एक समय समय है। उत्पन्न हो रहा है वही स्वसमय है। यह समय ही हित-

कारी है, सहकार है। मेरा समय पंचत्रिक वाला है। पंचत्रिक समय में प्रवेश है। त्रैलोक्यनाथ मेरा शुद्धात्मा अपने अनन्त स्वभाव में प्रवेश करता है॥ ३॥

काव्य अर्थ—पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान है। वह सदृश रूप में सब केवलियों को एकसा होता है। सर्व केवली अपने अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय का भोजन करते हैं, न कि पुद्गल पिण्ड का॥ ७॥

मेरा समय समय है। यह समय हितकार है। सहकार है। मेरे समय पाँच त्रिक हैं॥ ८॥

मेरा पञ्चामृत स्वभाव है। त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी है। मेरा आत्मा अपने स्वभाव का भूषण है और वाहक है॥ ९॥

विशेषार्थ—पाँचों परमेष्ठियों के परिपूर्ण पाँचों स्वभाव का पंचामृत जिस आत्मा में विद्यमान है, मैं वहाँ प्रवेश करता हूँ। मेरे स्वभाव में अनन्त अरहन्तों का स्वभाव इस समय विद्यमान है। पाँचों परमेष्ठियों का स्वभाव मेरे आत्मा में है इस पंचामृत स्वभाव की प्रतीति आये बिना विभाव का विष दूर नहीं होगा।। अपने स्वभाव के अरहन्त की प्रतीति आये बिना बाहर के अरहन्तों की मान्यता और श्रद्धा झूठी है। टिकने वाली नहीं है। पाँचत्रिक कौन-कौन सी हैं?

१. दर्शन-ज्ञान-चारित्र, २. परिचय, प्रवेश, मिलन, ३. आयरण, आराध्य, आलाप, ४. अर्क, अर्थ, विन्द, ५. जान, मान, दान॥ ३॥

पद्यानुवाद

मेरो समय यह समय है सम्पूर्ण केवलज्ञानमय।
हूँ शक्तिमय हों व्यक्त गुण, पर्याय कब हो ज्ञानमय॥ ३॥

हमारो तिलक ७२ को है

छद्मस्थ बुलाऊ आयो। तुम चलहु। हमारो समय निपजवे है। हमारो तिलक बहत्तर को है। सो आये आर्वल अनन्त है। उत्पन्न अनन्त हुई। जय जय जय।

जय जय जय । जय जय जय । जय एक नमोऽस्तु
कियो । जय आऊ । जय आऊ । जय लियो । जय
लियो । जय सुल्प । जय सुल्प । सुदिप्ति प्रवेश ।
सुल्प प्रवेश ॥ ४ ॥

टीका—छद्मस्थजिनैश्चामन्त्रितोऽहमागतोऽस्मि । त्वं चल ! मम समयस्योत्पत्तिर्भवति । अस्माकं तिलकमहोत्सवस्तु द्विसप्तति सम्वत्सरे भविष्यति । आयुर्बलमग्रेऽनन्तम् । उत्पन्नश्चाप्यनन्तैव । जयो जयो जयः । जयो जयो जयः । जयो जयो जयः । एक जय नमोऽस्त्विति कृतः । जयागम्यतां । जयागम्यतां । जयं गृहीतः । जयं गृहीतः । जयः स्वल्पशून्यः । जय स्वल्पशून्यः । स्वदिप्ति प्रवेशः । स्वल्पशून्ये । छद्मस्थस्वभावे प्रवेशो भवति ॥ ४ ॥

काव्य

आमन्त्रिताः छद्मस्थैश्चागतोऽहं त्वं चल ! त्वरा ।
अस्माकं समयोत्पत्तिः तिलकश्च द्विसप्ततिः ॥ १० ॥
कालोऽनन्तोत्पन्नोऽस्ति अनन्तश्च भविष्यति ।
नवबार जयं कृत्वा एको जय नमोऽस्त्विति ॥ ११ ॥
जयागतो जयागतो गृहीतो हि जयो जयः ।
जगत्रयं जयो यस्तो जयः स्वल्पः स्वल्पो जयः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—छद्मस्थ ने बुलाया सो आये है। तुम चलो, हमारे समय (सम्यक्त्व) की उत्पत्ति हो रही है। हमारा तिलक बहत्तर का है। सो आगे भी आयुर्बल अनन्त है। उत्पन्न भी अनन्त होंगे। जय जय जय। जय जय जय। जय जय जय। एक बार जय नमोऽस्तु किया। जय आओ। जय आओ। जय लिया। जय लिया। जय स्वल्प। जय स्वल्प। अपने देदीप्य स्वभाव में प्रवेश है। स्वल्प शून्य में प्रवेश है ॥ ४ ॥

टीका अर्थ—छद्मस्थ जिनके द्वारा आमन्त्रित हुये हम आये हैं। तुम चलो। हमारे समय (सम्यक्त्व) की उत्पत्ति हो रही है। और हमारा

तिलक सम्वत् बहत्तर का है। आगे आयुर्बल अनन्त है। उत्पन्न भी अनन्त है, जय जय जय। जय जय जय। जय जय जय। एक बार जय नमोऽस्तु किया। जय आओ। जय आओ। जय लिया। जय लिया। जय स्वल्प शून्य, जय स्वल्प शून्य। अपने दिप्ति स्वभाव में प्रवेश। स्वल्प शून्य नाम के छद्मस्थ स्वभाव में प्रवेश किया॥ ४॥

काव्य अर्थ—छद्मस्थ ने बुलाया सो आये। तुम चलो, जाओ। हमारे समय स्वरूप की उत्पत्ति है। और हमारा तिलक बहत्तर का है॥ १०॥

काल अनन्त है। उत्पन्न अनन्त है। और सदैव अनन्त ही होगा। नव बार जय जयकार करके एक बार जय बोलिये जय नमोऽस्तु किया॥ ११॥

जय आये। जय आये। जय लिया। जय लिया। यह जय तीन ही लोक को दी। जय स्वल्प। जय स्वल्प। शून्य प्रवेश॥ १२॥

विशेषार्थ—हम छद्मस्थ के बुलाने से आये हैं। तुम चलो। हमको अभी नहीं जाना है। हमारे समय के उत्पन्न होने का समय है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। गुरुदेव कह रहे हैं—हमारा तिलक बहत्तर का है। जैसे पूरे ग्रन्थ में अपने तिलक का समय अपनी दृष्टि के समक्ष रखते आये हैं, वैसे ही यहाँ भी कैसे भूल सकते थे। आगे अनन्त जीवों की अनन्त आयु है। जगत् भी अनादि निधन है। शिष्यगण जय जयकार, जय जय नमोऽस्तु कर रहे हैं। स्वामी जी अपने शून्य स्वभाव में प्रवेश कर रहे हैं॥४॥

पद्यानुवाद

छद्मस्थ ने लाया बुलाया, समय लाभ अनन्त है।
इस देह का सम्वत बहत्तर में सुनो सब अन्त है॥ ४॥

पाछे भयो सो लिखो

गुप्तार जानी। आयरन जानी। गुप्तार जानी।
आराध्य जानी। आलाप स्वयं। जो जैसे सो तैसे।
जय अर्थ कोड होई। गुप्त जानी। आलाप स्वयं।

जो जैसे सो तैसे । जो तुव भयो । जो तू पास । जो तू आस । जो तू लियो, जगत्रयहिं दियो । जैसो है तैसो है । हमारे जैसे है तैसे तुव । जैसो तुव तैसो हों । जु मोरो सो तोरो । जु मोरो सु तोरो । जु तोरो सु मोरो । मोरो सो ध्रुव । जैसे—लेहु, लेहु । जय उत्पन्न लेहु । साहि साहिऊ । जय जय जय त्रैलोक्य-नाथ । गणधर लेहु स्वभाव । उत्पन्न प्रवेश लेहु लेहु लेहु । अपनो प्रवेश, उत्पन्न शाह । जय लेहु लेहु लेहु । त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेश । पाछे भयो सो विली, आगे अनन्तानन्त प्रवेश हुई है ।। ५ ।।

टीका—गुप्तस्वरूपं गुप्तवार्तां वा जानातीति ज्ञानी । ज्ञाता गुप्त-वार्ता मया । आचरणं ज्ञातं मया । गुप्तवार्ता ज्ञाता मया । आराध्य-स्वरूपो ज्ञातः । आलापश्च स्वयं ज्ञातः ये यादृशास्ते तादृशा एव । यस्त्वं भूतः । यस्त्वं सो निकटे एव । यस्त्वं सा तवाशा । यस्त्वं गृहीतः सो जगत्रयमददाम् । सः शुद्धस्वरूपो यादृशस्तादृश एव यादृशो मम स्वरूप-स्तादृशो हि तवस्वरूपः । यादृशस्तव तादृशो मम । यो मदीयः स एव त्वदीयः । यो मदीयः स एव त्वदीयः । यत्तु त्वदीयः स एव मदीयः ध्रुवः सः स्वरूपो मम । येन केनोपायेन लेहु लेहु । जयोत्पन्नं गृहाण । साध्यं साधय । जयो जयो जयस्त्रैलोक्यनाथः प्रभुः । गणधर स्वभावं लेहुरे गृहाण, उत्पन्न प्रवेशं लेहु लेहु लेहु । स्वप्रवेशं गृहाण । उत्पन्न शाह अयं लेहु लेहु लेहु । त्रैलोक्यनाथस्यानन्त प्रवेशः । गते यद्भूतः तद् गतमेव । अग्रेऽनन्त प्रवेशो भविष्यति ।। ५ ।।

काव्य

गुप्तस्य ज्ञानं च गुप्तार ज्ञानम्,
जयो जयस्त्वं जय हे जयस्त्वम् ।
यस्तव समीपे आशा तवैव,
प्राप्तोऽवधि त्वं च जगत् त्रयं तं ।। १३ ।।

विप्तिप्रवेशो गुप्तस्य ज्ञायकः,
विज्ञः स्वरूपाचरणस्य ज्ञाता।
आराध्यज्ञाता स आलाप ज्ञाता,
स यादृशस्तादृश एव भावः॥ १४॥
यादृशः सः तादृशश्च भावृशस्त्वं च तादृशः।
तादृशस्तव यादृशस्त्वं तादृशश्च एव हि॥ १५॥
मदीयास्ते त्वदीयाश्च त्वदीयास्ते ममैव हि।
ममध्रुवः समयः सः लेहु लेहु जयो जयं॥ १६॥
जयोत्पन्नं लेहु लेहु स एव निश्चयेन सः।
जयो नाथस्त्रैलोक्यस्य स्वभावं रे गणधर॥ १७॥
उत्पन्नं प्रवेशं लेहु लेहुरे लेहु लेहुरे।
त्रैलोक्यनाथ प्रवेशी गतः सो हि गतो गतः॥ १८॥

सूत्रार्थ—गुप्त रहस्य को जान लिया। आचरण को जाना। गुप्त-वार्ता जानी। आराध्य को जान लिया। आलाप स्वयं को जाना। जो जैसे हैं वे वैसे ही हैं। जय अर्घकोडमहोत्सव है। गुप्त जान लिया। आलाप स्वयं है। जो जैसे हैं वे वैसे ही हैं। जो तुम्हारा हुआ जो तू है वह तेरे पास है। जो तू है वही तेरी आशा है जो तूने लिया वही जगत्रय को दिया। जैसा है वैसा ही है। जैसे हमारे है वैसे तुम्हारे है। जैसा तुम्हारा वैसा मैं। जो मेरा सो तेरा। जो मेरा सो तेरा। मेरा सो ध्रुव है। जैसे से ले सकते हो लेओ। जय उत्पन्न लेओ। साध्य को साधो, उसी का सहारा लो। जय जय जय त्रैलोक्यनाथ। अपने स्वभाव को हे गणधर! लेओ। उत्पन्न स्वभाव के प्रवेश को लेओ। लेओ। लेओ। अपना प्रवेश और उत्पन्न शाह की जय को लेओ। लेओ। लेओ। त्रैलोक्यनाथ अनन्त स्वरूप में प्रविष्ट है। पीछे हुआ वह विलीन हुआ। आगे अनन्तानन्त प्रवेश है॥ ५॥

टीका अर्थ—गुप्तस्वरूप को गुप्तवार्ता को जो जाने सो ज्ञानी। गुप्तवार्ता को मैंने जान ली। आचरण को मैंने जान लिया। गुप्तवार्ता

जानी। आराध्य स्वरूप को जाना। आलाप स्वयं है। जो जैसे हैं वे वैसे हैं। जो तुम्हारा हुआ। जो तुम हो वह तो तुम्हारे निकट है। जो तुम हो वही तुम्हारी आशा है। जो तुमने लिया वह जगत्रय को दिया। वह शुद्ध स्वरूप जैसा है वैसा ही है। जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही तेरा स्वरूप है। जैसा तुम्हारा स्वरूप है। वैसा ही मेरा स्वरूप है। जो मेरा है वही तुम्हारा है। जो मेरा है वही तुम्हारा है। जो तुम्हारा है वही मेरा है। वह ध्रुव स्वरूप मेरा है। जिस किसी भी उपाय से लेओ। लेओ। जय उत्पन्न को ग्रहण करो। साध्य को साधो। जय जय जय त्रैलोक्यनाथ प्रभु। हे गणधर! स्वभाव को लेओ, उत्पन्न प्रवेश को लेओ, लेओ, लेओ। उत्पन्न शाह जय को लेओ। लेओ। लेओ। त्रैलोक्यनाथ का अनन्त प्रवेश है। जो बीत गया सो बीत गया। आगे अनन्तानन्त प्रवेश होगा॥ ५॥

काव्य अर्थ—गुप्त स्वरूप का जो ज्ञान है वही गुप्तार ज्ञान है। जयवन्त स्वभाव तुम जयवन्त रहो। जो तुम्हारे पास है, वही तुम्हारी आशा है। जो तुमने प्राप्त किया वही तीन लोक को दिया॥ १३॥

अपने स्वरूप का ज्ञाता दिप्त स्वरूप में प्रवेश करता है। वही विज्ञ स्वरूपाचरण का ज्ञाता है। वह जैसा है वैसा ही उसका भाव है॥ १४॥

वह जैसा है वैसा ही है। मेरे जैसे तुम हो। तुम जैसा मैं हूँ। जैसा स्वरूप तुम्हारा है वैसा ही वह है॥ १५॥

जो मेरे हैं वही तुम्हारे हैं। जो तुम्हारे हैं वही मेरे हैं। मेरा समय ध्रुव है। लेओ उस जयस्वभाव को ग्रहण करो॥ १६॥

जयोत्पन्न को लेओ लेओ। वही निश्चय से वह है। त्रैलोक्य का नाथ जयवन्त हो। हे गणधर! स्वभाव को लेओ॥ १७॥

उत्पन्न प्रवेश को लेओ। लेओ, लेओ। त्रैलोक्यनाथ अनन्त प्रवेशी है। जो बीत गया वह बीत गया। जो पीछे रहा सो नष्ट हुआ॥ १८॥

विशेषार्थ—शुद्धात्मवाद अथवा अध्यात्मवाद का चित्र इस सूत्र में है। एक एक शब्द में अन्तिम निर्णय है। एक बात बड़े ही मर्म की है

पाछे भयो सो विली अर्थात् जो पीछे रहा सो नष्ट हुआ। यह भी निर्णय की बात है। अतएव प्रमाद छोड़कर कल करने का आज करो ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद

इस सूत्र में है गुप्तवाणी गुप्तरूप स्वरूप की।
त्रैलोक्यनाथ वही बनेगा, छवि निहारे रूप की ॥ ५ ॥

जो जहाँ हैं वहाँ से हो लेवें

अनन्त समय आवे तो कहो अनन्त प्रवेश लेहु। रुइया-जिन कहौंहि थाती लेहु। कमलावती रुइया जिन ! समय की थाती लेहु। तुम हम पायो सो त्रैलोक पायो। जैसे लेहु तैसे देहु। जैसे लियो तैसे दियो। जो मोरी आस सो मोही पास। बहुरि आयो रे। उत्पन्न समय बुलावो। जय जय अनन्त जय। बहुरि लेहुरे सर्व लेहु। लेहु कौन स्वभाव है ? देतु हों। पै लेहुरे लेहु। पै अब प्रमाण पाड़िऊ। ध्रुव अब लेहु। अब जो जहाँ सो तहाँ तैं लेहु ॥ ६ ॥

टीका—आगमिष्यत्यनन्तसमयस्तर्हि कथय यदनन्तप्रवेशं लेहु। कथयन्ति रुइयाजिनः—थातीति लेहु हे कमलावती रुइयाजिन ! स्वसमयस्य थाती निधिलेहु। तुभ्यं मम प्राप्तिस्त्रैलोक्य प्राप्तिः। यथालेहु तथा-देहि। यथा गृहीतस्तथा दत्तः। ये ममाशां कुर्वन्ति ते ममैव निकटे वसन्ति। पुनरागतो रे ! उत्पन्नसमयं आमंत्रय। जयो जयोऽनन्तजयः। पुनः लेहुरे सर्वं लेहु लेहु इति कः स्वभावोऽस्ति ? ददाम्यहम्। परन्तु लेहुरे लेहु। परन्त्वधुना प्रमाणं कुरु। ध्रुवं लेहु। इदानीं तत्रं ये यत्र सन्ति ते तत्रै-वाप्नुत ॥ ६ ॥

काव्य

अधुना कथय स्व समयं लेहु प्रवेशं स्वयं स्वरूपस्य।
रुइयाजिन त्वं लेहु ! कमलावति लेहु समय थाती हि ॥ १९ ॥

प्राप्तस्त्वया नु प्राप्तस्त्रैलोक्यो लेहु यथातथा देहि ।
दत्तस्तथा यथाहमस्मि गृहीतस्तथैव रे लेहु ॥ २० ॥
ये ममाशां च कुर्वन्ति ते सन्ति समीपे सदा ।
पुनस्ते आगमिष्यन्ति समयेन निमंत्रितः ॥ २१ ॥
जयो जयोऽनन्तो जयः पुनश्च लेहु लेहुरे ।
सर्वं हि लेहु त्वं किन्तु लेहुरे लेहु लेहुरे ॥ २२ ॥
प्रमाणं कुरु स्वं भावं प्रमाणं कुरु स्वं ध्रुवं ।
गृहाण स्वभावं शुद्धं तत्रस्थैव हि यत्र ये ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ—अनन्त समय आवे तो कहो कि अनन्त का प्रवेश लेओ। जिनरुइयारमण कह रहे हैं कि थाती लेओ! हे कमलावती रुइयाजिन! समय की थाती लेओ। तुमने हमको पाया सो तीन लोक को पा लिया। जैसे लेओ तैसे देओ। जैसे लिया तैसे दिया। जो मेरी आशा करेंगे वे मेरे पास रहेंगे। फिर से आया रे। उत्पन्न समय को बुलावो। जय जय अनन्त जय। फिर लेओ रे सर्व लेओ। लेहु कौन स्वभाव है। देता हूँ। परन्तु लेओरे। लेओ। परन्तु अब प्रमाण करो। अब ध्रुव को लेओ। अब जो जहाँ है सो वहाँ ही लेवें ॥ ६ ॥

टीका अर्थ—अनन्त समय आवे तो कहो कि अनन्त के प्रवेश को लेओ। रुइयाजिन कह रहे हैं कि थाती लेओ। हे कमलावती रुइयाजिन! समय की थाती (धरोहर) को लेओ। तुम्हारे लिये हमारी प्राप्ति ही त्रैलोक्य की प्राप्ति है। जैसे लेओ वैसे देओ। जैसे लिया वैसे दिया। जो मेरी आशा करेंगे वे मेरे पास रहेंगे। फिर आया रे! उत्पन्न समय को बुलावो। जय जय अनन्त जय। फिर लेओरे सब लेओ। लेहु यह कौनसा स्वभाव है। जो दे रहा हूँ। परन्तु लेओ रे लेओ, अब प्रमाण करो। ध्रुव लेओ। इस समय जो जहाँ हैं वे वहाँ से ही प्राप्त करें ॥ ६ ॥

काव्य अर्थ—अब कहो कि समय को और स्वयं अपने स्वरूप के प्रवेश को लेओ। रुइयाजिन! तुम लेओ! कमलावती! समय की थाती लेओ ॥ १९ ॥

मुझे प्राप्त करके तुमने तीन लोक पा लिया। जैसे लेओ तैसे देओ। जैसे लिया वैसे दिया। तुम लेओ ॥ २० ॥

जो मेरी आज्ञा करेंगे वे मेरे पास रहेंगे। फिर से आवेंगे। वे समय के आमन्त्रित किये आवेंगे आवेंगे ॥ २१ ॥

जय जय अनन्त जय। फिर लेओ रे। लेओ। सब लेओ। परन्तु लेओ रे। लेओ। लेओ ॥ २२ ॥

प्रमाण करो अपने भाव को। प्रमाण करो ध्रुव को, ग्रहण करो अपने शुद्ध स्वभाव को। जो जहाँ हैं वे वहाँ से ही ग्रहण करें ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—समय की थाती (धरोहर) कमलावती और रुइयाजिन को दे रहे हैं। इसे प्रमाण करना। मानना। कोई शिष्य पूछता है—यह लेहु कौन सा स्वभाव है? उत्तर मिलता है जो दे रहा हूँ वही। अपना ध्रुव स्वभाव लेना चाहिये जो जहाँ हैं वे वहीं से अपने ध्रुव स्वभाव को लें ॥ ६ ॥

पद्यानुवाद

कमलावती रुइयारमण के समय की थाती यही।
जैसी इसे लें आप वैसी हो इसे देना सही ॥ ६ ॥

सर्वार्थ स्वयं प्रवेश

जो जहाँ हुतेऊ सो तहाँ तें निकलिऊ। एकेन्द्रिया इत्यादि तें निकलि आयो। उत्पन्न उदय प्रवेश। उत्पन्न उदय ध्रुव। अर्क अर्थ समय। अस्थाप आयरण समय प्रवेश। बेशक प्रसाद उत्पन्न स्वभाव। बेशक सर्वार्थ स्वयं प्रवेश। अनन्त सौख्य ॥ ७ ॥

टीका—ये यत्रासन्ते तत्रतः निकसिताः। एकेन्द्रियादि योनितो निकसिताश्चात्रागताः। उत्पन्नोदय प्रवेशः। उत्पन्नोदयः ध्रुव स्वभावस्य। स्वसमयार्थरविः उदितः। स्वरूपाचरणस्थापना समयः प्रवेशः। निःसंदेहरूपेण मुक्तिस्वभावप्रसादोत्पन्नः। निःशंककरेण स्वयं सर्वार्थे प्रविष्टः। अनन्तसौख्य समये प्राप्तश्च ॥ ७ ॥

काव्य

एकेन्द्रियादितः सर्वे निःसरितापि चागता ।
अर्कोत्पन्नोदयस्तेषां प्रवेशोत्पन्नश्च ध्रुवे ॥ २४ ॥
अर्थार्क समयो भानुः स्वाचरणं तं स्थापनं ।
निःसंदेह स्वरूपेण प्रसादो समयस्य च ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—जो जहाँ थे सो वे वहाँ से निकल आये, एकेन्द्रियादि से निकल आये। उत्पन्न उदय का प्रवेश है। ध्रुव स्वभाव का उदय प्रगट हुआ है। अर्थ समय सूर्य का उदय हुआ है। स्वरूपाचरण की स्थापना का समय प्रस्तुत हुआ है। निःसंदेह अपने समय स्वभाव का प्रसाद उत्पन्न हुआ। बेशक सर्व अर्थ का स्वयं प्रवेश प्राप्त हुआ। अनन्तसौख्य समय प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

टीका अर्थ—जो जहाँ थे वे वहाँ से निकल आये, एकेन्द्रियादि योनि से निकल कर यहाँ आ गये, उदय उत्पन्न हुआ है। ध्रुव स्वभाव का उदय भी प्रस्तुत हुआ है। स्वसमयार्थ रवि प्रगट हुआ है। स्वरूपाचरण की स्थापना का समय आ गया। निःसंदेह रूप से मुक्ति स्वभाव का प्रसाद प्राप्त हुआ। बेशक स्वयं सर्व अर्थ में प्रवेश प्राप्त है। अनन्तसौख्य समय का आगमन है ॥ ७ ॥

काव्य अर्थ—एकेन्द्रियादि पर्यायों से सब निकल आये। उदय अर्क उत्पन्न हुआ। ध्रुव स्वभाव को प्राप्ति हुई। अर्थ अर्क समय सूर्य का उदय हुआ। अपने स्वरूपाचरण की स्थापना करने का समय आ गया। निःसंदेह समय मुक्ति का प्रसाद पाया ॥ २४-२५ ॥

विशेषार्थ—क्षयोपशमलब्धि की बात हो रही है, एकेन्द्रियादिक पर्यायों से यह जीव निकल कर आ गया। अब अपना उदय करो। उसी में प्रवेश करो। अपने स्वभाव में अपना आचरण (स्वरूपाचरण) स्थापित करो, उसमें प्रवेश करो। निःसंदेह स्वभाव का प्रसाद उत्पन्न हुआ। सर्वार्थ नाम का शून्य स्वभाव है। उसमें स्वयं प्रवेश करने करने से ही सर्वार्थ की सिद्धि होगी। अनन्तसौख्य स्वभाव प्राप्त होगा ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद

एकेन्द्रियादिक योनि से यह जीव निकला भाग्य से।
उत्पन्न उदय प्रवेश अब यह समय पाया भाग्य से ॥ ७ ॥

रत्न जड़ित हार मालायें

सत सही। तीर्थंकर साथ उत्पन्न। आयरण आराध्य।
आलाप। ध्रुव। अनन्त विन्दु। रतन जड़ित हार
आये। लेहुरे लेहुरे लेहुरे। पहिरावहु रतन जड़ित
माले। दयाल प्रसाद दियो। लेहुरे पहिरावहु। जो
माणिकमोती निवहैः जं जासु परापति सो लहै ॥ ८ ॥

टीका—सदेव सत्यं। सहसमये तीर्थंकरदेवैः सहोत्पन्नसत्स्वरूपः। आयरण स्वरूपाचरण स्वभावः। आराध्यः स्वयं चिद्रूपः। आलापश्च द्वादशांगश्रुत समयः, ध्रुवशुद्धस्वभावः। अनन्त निर्विकल्पविन्दुस्वरूपोऽसौ शुद्धात्मा। रत्नजटित हारागताः। लेहुरे लेहुरे लेहुरे। स्वीकुरु। गृहाण। रत्नजटितहारमालारोहणं कुरु समर्पणं स्वचैतन्यचिदानन्दात्मने। श्रीगुरु-दयालुना प्रदत्त समयस्य प्रसादोऽयम्। लेहुरे शीघ्रेणैव समर्पणं कुरु स्वात्मनेचिदानन्दाय। माणिक्यमुक्ता निवहैः विभूषितोऽयं शुद्धात्मस्व-भावः गुणगणालंकृतोऽयमित्यर्थः। अतः यस्मै यत्प्राप्तिस्तस्मै तत्प्रापणीयो-ऽयमस्वभावः ॥ ८ ॥

काव्य

तीर्थंकराणामुत्पत्तिः स्वरूपाचरणे भवेत्।
आलापं च ध्रुवानन्तं विन्दुं शून्यं लक्ष्ये कुरु ॥ २६ ॥
रत्नजटितहारादि स्वागते लेहु लेहुरे।
बहुमूल्य मालिकाभिः स्वागतं च कृतं तव ॥ २७ ॥
दयालु प्रदत्तभावं प्रसादं लेहु धारय।
माणिक्यमौक्तिकाराशिः यत्प्राप्तिर्यस्य सो लभेत् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—सत्स्वरूप ही सत्य है। यह स्वरूप ही तीर्थंकरों के साथ

उत्पन्न होता है। स्वरूपाचरण। आराध्य। आलाप-वाणी। ध्रुव स्वभाव। अनन्त विन्दु। रत्नजड़ित हार आये। लीजिये, लीजिये, लीजिये। पहिनाइये रत्नजड़ित मालाएँ। सद्गुरु परम दयालु ने यह प्रसाद दिया है। लेओ, पहिनाओ, शीघ्र ही समर्पण करो अपने चैतन्य चिदानन्द आत्मा को। जो माणिक मोतियों की राशि है उसमें जिसे जो प्राप्त हो जावे वही ले लेना चाहिये ॥ ८ ॥

टीका अर्थ—सत् ही सत्य है। तीर्थंकर देवों के समय के साथ यह सत्स्वरूप उत्पन्न होता है। आयरण स्वरूपाचरण स्वभाव है। आराध्य स्वयं चिद्रूप है। आलाप द्वादशांश श्रुत समय है। ध्रुव शुद्धस्वभाव है। अनन्त निर्विकल्प विन्दु स्वरूप ऐसा यह शुद्धात्मा है। रत्नजड़ित हार आये हैं। लीजिये, लीजिये, लीजिये। स्वीकार करो, ग्रहण करो। रत्नजड़ित हार मालायें चढ़ाओ अपने चिदानन्द चैतन्य को समर्पित करो। श्रीगुरु दयालु ने यह प्रसाद दिया है। लेओ धारण करो। अपने आत्म स्वरूप को समर्पण करो। जो माणिक्य मुक्ता राशि है उससे विभूषित यह शुद्धात्म स्वभाव है। गुणों के समूह से अलंकृत है। अतः जिसके जो प्राप्त हो जाय उसके वही रत्न स्वभाव प्राप्त करने योग्य है ॥ ८ ॥

काव्य अर्थ—सत्य सत्स्वरूपाचरण में तीर्थंकरों की उत्पत्ति है आलाप और अनन्तध्रुव स्वभाव को अपना लक्ष्य विन्दु बनाओ ॥ २६ ॥

स्वागत में ये निश्चय के हार मालायें आये इन्हें लीजिये। लीजिये। बहुमूल्य मालाओं से स्वागत हुआ ॥ २७ ॥

श्रीगुरुदयालु के द्वारा दिया हुआ यह भाव का प्रसाद है। धारण करो। माणिक्य मोतियों की राशि लगी है। लुटा रहे हैं। जिसे जो लेना हो, जो मिल जावे सो ले लो ॥ २८ ॥

विशेषार्थ—सत्स्वरूप ही सही है। सत्य है। तीर्थंकरों ने इस सत्स्वरूप को स्वीकार किया है। आयरण, आराध्य, आलाप, ध्रुव और अनन्तविन्दु के अनन्त रत्नों के हार मालाएँ आये हैं। इन्हें ले लो। अपने स्वभाव को ये हार पहिनाओ।

शब्द तो व्यावहारिक हैं परन्तु इनमें जो अर्थ है वह अत्यन्त पारमार्थिक है। इन शब्दों को पढ़ते-पढ़ते परमार्थ भाव जागृत होते हैं। अतः यही शब्द ब्रह्म हैं ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद

आचरण वा आराध्य औ आलाप ध्रुव शुद्धातमा।
ये रत्न जड़ित हुये समर्पित, हार ले ले आतमा ॥ ८ ॥

५७२ शून्य स्वभाव

पाँच सौ बहत्तर देखत हो रे! शून्य समूह बारि बारि हृदय ही में देखहु। आहूठ कोडि सम्पूर्ण। सम्पूर्ण बिन्दु उत्पन्न। चतुष्टय उत्पन्न। आदि ही सर्वार्थ उत्पन्न गणियहु रे! पालकी लिवाउन आये। पालकी आगौनी अनन्त। चौरासी आसन सिंहासन। सिंहासन प्रवेश। मनुविली। खिपक राशि। जिन स्वभाव ॥ ९ ॥

टीका—पञ्चशतद्वासप्ततिः शून्यस्वभावान्पश्यथवा न वारे। शून्य समूहं पुनः पुनः हृदि स्थाने एव पश्यतां। सार्धत्रिकोटि सम्पूर्णं। सम्पूर्ण बिन्दुरूपेणैवोत्पन्नाः। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव चतुष्टयस्वभावे उत्पन्नाः शून्यस्वभावाः-शून्यस्वभावे उत्पन्ना स्वचतुष्टयभावाः। प्रथमतः सर्वार्थोत्पन्न शून्यगणना कर्तव्या। पालकी संयुक्तानयनार्थमागताः। पालकी आगमनी स्वानन्त स्वभावा। चतुरशीति योगासनेष्वेव सिंहासनेषु तिष्ठाम्यहं। प्रस्तुत सिंहासनं स्वीकरोमि। मनश्च विलयति। क्षपक स्वभावस्य राशिर्भवति। जिनस्वभावश्च स्वभावे उदयति ॥ ९ ॥

काव्य

पञ्चशत द्वासप्तति पश्यथ वा न वा हि शून्यभेदानाम्।
हृदिशून्य समूहेषु, विचरति रे! शून्य भाव धारी सः ॥ २९ ॥

सार्धत्रिकोटि संख्या प्रमाण शून्य स्वभाव त्वं पश्य ।
स्वचतुष्टय स्वभावं पूर्वे हि सर्वार्थ शून्यमाचरतु ॥ ३० ॥
स्वागतार्थं च सर्वे ये पालकी सहितागताः ।
पालकी सानन्तागौनी स्वरूपे स्वयमागता ॥ ३१ ॥
सिंहासनस्वभावे आसन योगासने च तिष्ठामि ।
यत्र मनो विलयति सः क्षपक जिनस्य स्वभाव उद्भवति ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ—५७२ को देखते हो रे ! शून्यसमूह बार-बार हृदय ही में देखो । सम्पूर्ण ३॥ करोड़ (रोमसंख्या प्रमाण) शून्य हैं । सम्पूर्ण शून्य विन्दु के आकार स्वरूप में उत्पन्न हैं । अपने द्रव्यादि और ज्ञानादि चतुष्टयों में यह शून्यता उत्पन्न हैं । पहले ही सर्वार्थ नामक शून्य को गिनना रे । पालकी सहित लिवाउन को आये अथवा पालकी जी को लिवाने आये । पालकी आगौनी तो अनन्त स्वभाव की है । चौरासी योगासनों के सिंहासनों पर बैठता हूँ । प्रस्तुत सिंहासन भी स्वीकार है । मन विलय होगा । उसकी अस्थिरता नष्ट होगी । क्षपक राशि उत्पन्न होगी । जिन-स्वभाव प्रगट होगा ॥ ९ ॥

टीका अर्थ—५७२ को देखते हो । शून्य समूह बार बार हृदय ही में देखो । सम्पूर्ण साढ़े तीन करोड़ शून्य हैं । सम्पूर्ण विन्दु के स्वरूप में उत्पन्न हैं । अपने द्रव्यादि चतुष्टय के स्वभाव में शून्य स्वभाव है । और शून्य स्वभावों में स्वचतुष्टय भाव हैं । पहले सर्वार्थ नाम का शून्य गिनो । पालकी सहित लिवाने को अथवा पालकी जी को लिवाने (स्वागतार्थ) आये हैं । पालकी आगौनी तो अनन्त स्वभाव के हैं । ८४ आसन योगासन स्वरूप सिंहासन हैं । प्रस्तुत सिंहासन को स्वीकार करता हूँ । मन की अस्थिरता का विलय होगा । तब क्षपक स्वभावों की राशियाँ लगेंगी । और जिन स्वभाव का अपने स्वभाव में उदय होगा ॥ ९ ॥

काव्य अर्थ—५७२ शून्य स्वभाव के भेदों को देखते हो कि नहीं रे, हृदय में शून्य समूह के मध्य में । हे भव्य ! वह शून्यभावचारी विचर रहा है ॥ २९ ॥

साढ़े तीन करोड़ संख्या प्रमाण शून्य स्वभावों को तुम देखो। अपने चतुष्टय स्वभाव को शून्यों में देखो। सर्वप्रथम सर्वार्थ नाम का शून्य है उसे गिनो ॥ ३० ॥

ये सब पालकी सहित या पालकी के स्वागत को आये हैं। पालकी आगौनी तो अनन्त के साथ ही है। स्वरूप में स्वयं आई हैं ॥ ३१ ॥

सिंहासन स्वभाव में आसन योगासन पर बैठता हूँ। जहाँ मनविलय होगा वहाँ क्षपक जिनका स्वभाव उद्‌भूत होता है ॥ ३२ ॥

विशेषार्थ—शून्यों के ५७२ भेद तो स्थूल हैं, परन्तु साढ़े तीन करोड़ रोम संख्या प्रमाण शून्य स्वभाव सूक्ष्म हैं। रोम-रोम में शून्यता की अनुभूति करके श्रीगुरुदेव शून्य स्वभाव का वर्णन करते हैं। शून्यों को विन्दु स्वरूप बताया है। शून्य में ही चतुष्टय, चतुष्टय में शून्य है।

पालकी लेकर लेने को आये सो ठीक है परन्तु हमारी पालकी और आयरण को आगौनी तो हमारे भीतर है। अनन्त स्वभाव में है। चौरासी आसन सिंहासन मेरे योग स्वरूप में हैं, मैं उन पर ही तो सदैव बैठता हूँ।

मन की अस्थिरता का विलय हो तभी क्षपक स्वभाव प्रगट हो। जितने भी अनन्त प्रकार के विभाव भाव हैं, उनको क्षय करने वाले उतने ही क्षपक भाव हैं। अतएव क्षपक राशि शब्द कहा। विभावों के दूर होने पर जिन स्वभाव का उदय होता है। यह सब शून्य स्वभाव की साधना में गर्भित हैं ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद

है पाँचसौ ऊपर बहत्तर शून्य की संख्या अहा।
निज में इन्हें तू देख बारंबार, अब सुन ले कहा ॥ ९ ॥

सहज स्वभाव प्रमाण आनन्द

अशोक वृक्ष। दिव्यध्वनि। मागधी भाषा। दुन्दुभी शब्द उत्पन्न। इष्ट उत्पन्न। इष्टपुहुप वृष्टि। हुन्त-कार दो। दिव्यध्वनि, अन्मोद वृद्धि। सहज स्वभाव

प्रमाण आनन्द । मिलन औकास कहिऊ । हुन्तकार चार । अक्षर उत्पन्न ध्रुव शाहु । सरण विली । मुक्ति विलास । हुन्तकार दो ।। १० ।।

टीका—अशोकवृक्षः । दिव्यध्वनिः । मागधीभाषा । दुन्दुभिशब्दाः । इष्टोत्पन्नः । इष्टपुष्पवृष्टिः । हुन्तकारौ द्वौ । दिव्यध्वनिः । अन्मोदवृद्धिः सहजस्वभावप्रमाणानन्द स्वभावः । मिलनावकाश स्वभावं कथितं । हुन्तकारश्चत्वारः । अक्षरोत्पन्न ध्रुवशाहश्च । संसारस्यशरणं विलयति । मुक्तेर्विलासं करोति । हुन्तकारौ द्वौ ।। १० ।।

काव्य

जिनस्वभावो भावे अशोकवृक्षश्च दिव्यध्वनिः ।
भाषा मागधदेशा दुन्दुभि शब्दाश्च स्वयमुत्पन्नाः ।। ३३ ।।
सहजानन्दस्वभावः पुष्पान्मोद वृष्टिवृद्धि भावाश्च ।
अक्षय स्वभावभावं विलसति ध्रुवमुक्ति मुक्तसमभावं ।। ३४ ।।

सूत्रार्थ—जिन स्वभाव (अरहन्त पद) के प्रगट होने पर अशोक वृक्ष, दिव्यध्वनि, मागधीभाषा, दुन्दुभिशब्द उत्पन्न होते हैं। इष्ट स्वरूप उत्पन्न होता है । इष्ट पुष्प वृष्टि होती है। दिव्यध्वनि और अन्मोदवृद्धि ऐसे दो हुन्तकार प्रगट होते हैं। सहज स्वभाव प्रमाण आनन्द होता है। मिलन और अवकाश कह चुके हैं। अक्षर, उत्पन्न, ध्रुव और शाह ये चार हुन्तकार होते हैं। संसार के शरण भाव का विलय हो जाता है। और मुक्ति का विलास होता है। ये दो हुन्तकार होते हैं।। १० ।।

टीका अर्थ—जिन स्वभाव के उदय से अशोक वृक्ष, दिव्यध्वनि, मागधीभाषा, दुन्दुभिशब्द होते हैं। इष्ट स्वभाव उत्पन्न होता है। इष्ट पुष्प वृष्टि । दो हुन्तकार—दिव्यध्वनि, अन्मोदवृद्धि । सहज स्वभाव प्रमाण आनन्द स्वभाव । मिलन अवकाश । हुन्तकार चार—अक्षर, ध्रुव, उत्पन्न, शाह । संसार का शरण विलय हुआ । मुक्ति विलास । हुन्तकार दो ।। १० ।।

काव्य अर्थ—जिन स्वभाव भाव में अशोक वृक्ष, दिव्यध्वनि, मागधी भाषा, दुन्दुभिशब्द ये सब स्वयं उत्पन्न होते हैं ॥ ३३ ॥

सहजानन्द स्वभाव, पुष्प वृष्टि, अन्मोद वृद्धि भाव, अक्षर स्वभाव भाव, ध्रुव मुक्ति का विलास ये भी सब स्वयं स्वरूप होते हैं ॥ ३४ ॥

विशेषार्थ—अन्तरंग का आनन्द तो सहज स्वभाव की साधना के अनुसार तो होता ही है, किन्तु समवशरण और उसकी समस्त महिमा आदि भी समस्त अतिशय उसी साधना का सुफल है, वह न होती तो यह भी न होता। शुद्धोपयोग जितना होता है उसकी उपस्थिति में बँधा हुआ सातिशय शुभ बंध भी तदनुकूल ही होता है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि आकांक्षा नहीं करता। अपने शुद्ध स्वभाव की प्रतीति और लक्ष्य की उपस्थिति में बँधे पुण्य का यह महोत्सव है। बिना सम्यक्त्व का पुण्य अप्रशस्त पुण्य है। उसका मोक्ष मार्ग में कोई मूल्य नहीं ॥ १० ॥

पद्यानुवाद

निज आत्मा में फिर लगा ले समवशरण अनन्त का।
यह बात होती है तभी जब समय भवदधि अन्त का ॥ १० ॥

कलनावती और रहयाजिन

कलनावती कोधारि प्रिय प्रवेश। ध्रुव शाह प्रवेश।
जिन दान रहया जिन। हुन्तकार छह। जय बहत्तरि।
जय बहत्तरि। जय चौबीस रतन जड़ित पालने। रत्न
जड़ित विमान। हुन्तकार छह। स्वयं उत्पन्न चतुष्टय।
आयरण। आराध्य। आलाप। मुक्ति प्रसाद। अनन्त
चतुष्टय। मुक्ति विलास ॥ ११ ॥

टीका—कलनावतीशक्तिसहितप्रिय स्वभावे स्वस्वरूपे प्रविष्टो भव। ध्रुव शाह प्रवेशः। जिनदानं च रहयाजिनाय प्राप्तं। हुन्तकाराः षट्। जयो द्विसप्ततिस्त्रिकालवर्ति तीर्थंकरदेवाः जयो द्विसप्ततिः। जयचतुर्विंशतिस्तीर्थंकरदेवाः। रत्नजटितपालने विमानादय-

स्थापिताः । हुन्तकाराः षट् । स्वयमुत्पन्न चतुष्टयस्वभावः । आयरणाराध्यालापश्च मुक्तिप्रसाद स्वभावोऽनन्तचतुष्टयः । मुक्तेर्विलासः ॥ ११ ॥

काव्य

प्रिय स्वभावे कलनावतेः सह,
ध्रुवे प्रवेशो जिनदानतश्च ।
रुइयाजिनः सोहि ददाति दानम्,
पश्य स्वमन्तस्तव सर्वं वैभवम् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ—अपनी कलनावती शक्ति सहित अपने प्रिय प्रवेश को प्राप्त करो। ध्रुवशाह स्वभाव में प्रवेश करो। जिनदान रुइयाजिन को प्राप्त हुआ। हुन्तकार छह। जय बहत्तर, जय बहत्तर। जय चौबीस। रत्नजड़ित पालने। रत्नजड़ित विमान। हुन्तकार छह। स्वयं उत्पन्न चतुष्टय। आयरण। आराध्य। आलाप। मुक्ति का प्रसाद। अनन्त चतुष्टय। मुक्ति विलास ॥ ११ ॥

टीका अर्थ—अपनी कलनावती शक्ति सहित अपने प्रिय स्वभाव में प्रविष्ट होओ। ध्रुवशाह स्वभाव में प्रवेश करो। जिनदान रुइयाजिन को प्राप्त हुआ। हुन्तकार छह। त्रिकालवर्ति बहत्तर तीर्थंकर देव जयवन्त हैं। जय बहत्तर। जय चौबीस वर्तमान। रत्नजड़ित पालने और विमानादि आये। हुन्तकार छह। स्वयं उत्पन्न चतुष्टय। आयरण। आराध्य। आलाप। मुक्तिप्रसाद स्वभाव। अनन्तचतुष्टय। मुक्ति का विलास ॥ ११ ॥

काव्य अर्थ—कलनावती शक्ति के साथ प्रिय स्वभाव में प्रवेश होगा। जिनदान से अपने ध्रुव स्वभाव में प्रवेश होगा। यह दान श्री रुइयाजिन दे रहे हैं। तुम अपने भीतर अपने समस्त वैभव को देखो ॥ ३५ ॥

विशेषार्थ—आत्मा का समस्त वैभव आत्मा में विद्यमान है। उसे देखने के लिये दृष्टि चाहिये। भीतर की सामग्री बाहर से नहीं देखी जाती। भीतर पहुँच होना चाहिये। यह मुक्ति का प्रसाद है ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद

कलनावती शक्ति सहित प्रिय आप में तू चला जा ।
हैं हुन्तकार सभी वहाँ ध्रुवशाह पद में चला जा ।। ११ ।।

तीन—मुनि—हुये

एक स्वभाव । पै एक । सोई एक । सुन्न विन्द का है
रे ! लैहो नाहीं । नो उद्दण्ड वर्ग । ग्यारह उवडंड वर्ग ।
तीनो मुनी उत्पन्न । मैं कलनावती अरु रुइया जिन
कहँ दियो । अरु तुम कहँ दियो ।। १२ ।।

टीका—एक स्वभावः । परन्त्वेकः । सोऽपि केवलैकः । शून्यविन्दश्च किमस्ति रे । गृहीतुमिच्छसि न वा । नो उद्दण्ड वर्गः । एकादशोपदण्ड वर्गः । मुनिपदे त्रयो जनाः उत्पन्ना । कथितोऽहं कलनावतीं रुइयाजिनं च । प्रदत्तो वा जिनस्वभावः अवदामहं तुभ्यमपि जिनस्वभावं ।। १२ ।।

काव्य

एक स्वभावं स्वं शून्य विन्दुम्,
किमस्ति शून्यञ्च गृहातुमिच्छसि ।
उद्दण्ड वर्गो उपदण्ड वर्गो,
त्रयो जना सन्ति निवृत्ति मार्गे ।। ३६ ।।

सूत्रार्थ—एक स्वभाव । परन्तु एक स्वभाव । वही अपना एक स्वभाव । शून्य विन्दु क्या है रे ! लेओगे नहीं । नो उदण्ड वर्ग । ग्यारह उपदण्ड वर्ग । तीन मुनी उत्पन्न होंगे । मैंने कलनावती और रुइयाजिन को जिन स्वभाव दिया है, कह दिया । और तुमको भी दिया कह दिया ।।१२।।

टीका अर्थ—एक स्वभाव । परन्तु एक । वह भी केवल एक । शून्य विन्द क्या है रे । ग्रहण करोगे कि नहीं । नो उद्दण्ड वर्ग । ग्यारह उपदण्ड वर्ग । मुनि पद में तीन जनें उत्पन्न होंगे । मैंने कलनावती और रुइयाजिन को दिया कह दिया । और तुमको दिया ।। १२ ।।

काव्य अर्थ—अपना एक स्वभाव शून्य विन्दु है । शून्य क्या है ?

ग्रहण करोगे या नहीं। उद्दण्ड वर्ग। उपदण्ड वर्ग। तीन जनें निवृत्ति मार्ग में—मुनिपद में रहेंगे ॥ ३६ ॥

विशेषार्थ—मुनिमार्ग को यहाँ उद्दण्ड वर्ग में कहा है। उपदण्ड मार्ग को ग्यारह श्रावक धर्म में कहा है। अपने श्रीसंघ में तीन मुनि हुये, यह स्पष्ट कहा है। जिनस्वभाव, कलनावती रुइयाजिन और तुम्हें दिया (एक नाम सम्भव है दिप्तजिन का हो यहाँ स्पष्ट नाम नहीं दिया है)।

एक स्वभाव, परन्तु विलकुल एक, वही एक उसकी सत्ता ही शून्य-विन्दु है। शून्यविन्दु क्या है रे ! इसे लेओगे या नहीं ? सूत्र के ये महत्त्व-पूर्ण वाक्य हैं। विचारणीय हैं ॥ १२ ॥

पद्यानुवाद

मैं एक मेरा पारिणामिक एक ही वह भाव है।
शून्य क्या है ? विन्दु क्या है ? लीजिये यह भाव है ॥ १२ ॥

असंख्य समूह को दिया

अनन्त प्रवेश। नो उत्पन्न निधि। चौ उत्पन्न रयन। अचिन्त्य चिन्तामणि। उत्पन्न प्रवेश प्रसाद। अनगिनत समूह समय कहूँ दयाल हो दियो। अनन्त प्रवेश प्रवेशिऊ। अनन्त महोच्छौ ॥ १३ ॥

टीका—अनन्ते प्रवेशः। उत्पन्ना सूक्ष्मनिधिः। रत्नोत्पन्न चत्वारि। अचिन्त्यचिन्तामणिः। प्रवेश प्रसादोत्पन्नः। असंख्यसमयसमूहो दयालुना प्रदत्तः। अनन्तप्रवेशे प्रविष्टोऽहं। महोत्सवानन्तः ॥ १३ ॥

काव्य

अनन्ते स्वप्रवेशे च नो उत्पन्न निधिर्भवेत्।
रत्नं चतुष्टयोत्पन्नमचिन्त्यं स्वचिन्तामणि ॥ ३७ ॥
उत्पन्न प्रवेशो वापि प्रसादं समयस्य च।
प्रदत्ता देशनालैश्च श्रीगुरुदेव स्वामिना ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थ—अनन्त प्रवेश से नोउत्पन्न सूक्ष्मनिधि और चार रत्न

उत्पन्न हुईं। वे अचिन्त्यचिन्तामणि हैं। उत्पन्न का प्रवेश प्रसाद है। असंख्य समय समूह को दयालु होकर दिया। अनन्त प्रवेश में प्रविष्ट हुये। अनन्त महोत्सव अपने स्वरूप में ही होंगे ॥ १३ ॥

टीका अर्थ—अनन्त में प्रवेश। सूक्ष्मनिधि उत्पन्न। चार रत्न उत्पन्न। अचिन्त्यचिन्तामणि। प्रवेश प्रसाद उत्पन्न। असंख्य समूह समय दयालु होकर दिया। अनन्तप्रवेश प्रविष्ट। अनन्त महोत्सव यह सब अपने स्वभाव में होता है ॥ १३ ॥

काव्य अर्थ—अनन्त स्व प्रवेश में सूक्ष्मनिधि उत्पन्न हुई। चार रत्न उत्पन्न हुये। वे अचिन्त्यचिन्तामणि रत्न हैं ॥ ३७ ॥

उत्पन्न प्रवेश का व समय का प्रसाद दिया। श्री गुरुदेव स्वामी जी ने देशनालब्धि का प्रसाद दिया ॥ ३८ ॥

विशेषार्थ—अनगिनत समय समूह दयालु होकर दिया। इन समयों में अपने अनन्त समय का प्रवेश प्राप्त कर लिया। अपने स्वरूप में ही मैंने अनन्त महोत्सव देखा। ऐसा अचिन्त्यचिन्तामणि चार रत्न नवनिधि स्वरूप उत्पन्न का प्रसाद दयालु गुरुदेव ने प्रदान किया ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद

अनगिनत समय स्वरूप तुमने दे दिया स्वामी हमें।
उत्पन्न निधि निज में बता दीं वे हमारी ही हमें ॥ १३ ॥

अनन्त भ्रमण भवान्तर गया

मानप्रमाण का है रे। अबहि की उपजी लेहो नाहा
रे। का सोवत हो। हों देतु हों। अनन्त निधि। अबतो
अनन्त भ्रमण भवान्तर गयो। अबहिं के मुक्ति प्रवेश।
रुइया जिन कहें मुक्ति प्रसाद दियो ॥ १४ ॥

टीका—किमस्ति मानंप्रमाणं। अधुनोत्पन्नंगृहीतुमिच्छसि न वा। स्वपिषि किं? ददाम्यहं। अनन्तनिधिं। इदानीमनन्तभ्रमणभवान्तरं भवसागरस्य[illegible] व्यतीत[illegible] वा पश्यन्तु सर्वे। वर्तमाने एव मोक्षमार्गे प्रवेशं कुर्वन्तु। [illegible] मुक्तिप्रसादं प्रदत्तं ॥ १४ ॥

काव्य

स्वपिषि किं भव जागृत भव्य हे,
निधि गृहाण महा महिमा मया ।
निज स्वभावप्रसाद मह् ददे,
गतमनन्त भवान्तर कारणम् ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ—मान और प्रमाण क्या है रे ! अर्थात् अब तेरी मान्यता क्या है ! और तूने कौन सा तत्त्व प्रमाण माना है । अभी की उत्पन्न हुई देशना लोगे या नहीं । क्या सोते हो ! मैं दे रहा हूँ, अनन्त निधि । अब तो अनन्त भ्रमण भवान्तर गया । अब तो इसी वर्तमान में इसी पर्याय में मोक्षमार्ग का प्रवेश प्राप्त करो । रुइयाजिन ने यह मुक्ति प्रसाद प्राप्त कर लिया है ॥ १४ ॥

टीका अर्थ—मान और प्रमाण क्या है ? इस समय उत्पन्न हुई देशना ग्रहण करोगे या नहीं । क्या सोते हो । मैं दे रहा हूँ । अनन्त निधि (सम्यक्त्व) अब तो अनन्त भ्रमण भवान्तर गया । अब के मोक्षमार्ग में प्रवेश करो । रुइयाजिन को मुक्ति का प्रसाद दिया ॥ १४ ॥

काव्य अर्थ—सोते हो क्या ? सावधान होओ ! जागृत होओ । हे भव्य ! महामहिमा स्वरूप अपनी निधि निजस्वभाव का प्रसाद मैं वितरण कर रहा हूँ । लेओ अब तो अनन्त भ्रमण भवान्तर का कारण गया ॥ ३९ ॥

विशेषार्थ—रुइयाजिन को मैंने मुक्ति का प्रसाद दिया है । अब तुम्हारी मान्यता क्या है ? तुम्हें क्या प्रमाण है ? इस समय की देशना और परिणति को स्वीकार करो । क्या सोते हो ? मैं अनन्त निधि दे रहा हूँ । अनन्त भ्रमण भवान्तर गया, यदि मोक्षमार्ग अथवा मुक्ति स्वभाव स्वीकार करो तो । यह है श्रीगुरुदेव की करुणामय वाणी जो जीव का भ्रमण भवान्तर दूर करने के लिये ही अमृतवर्षा कर रही है ॥ १४ ॥

पद्यानुवाद

गुरुदेव कितना सावधान करें तुम्हें इस [illegible] में ।
पूछा उन्होंने आपसे, दें आप उत्तर [illegible] में ॥ १४ ॥

रुइया जिन को पहिरावनी

गणधर ग्यारह। ग्यारह के चौबीस। चौबीस के बहत्तर। और अनन्त प्रसाद। अनन्त दृष्टि। अदृष्टि उत्पन्न प्रसाद। पहिले रुइया जिन पहिराये रत्न जड़ित पहिरावनी। तिलक ग्यारह। अनन्त प्रसाद। अनन्त समय संयुक्त प्रसाद ॥ १५ ॥

टीका—एकादशैव संख्या गणधरदेवानां। तेषां चतुर्विंशतिः। तेषामपि द्विसप्ततिः। अनन्तप्रसादश्च। अनन्तदृष्टिः। अदृष्टि प्रसादोत्पन्नः। प्रथमतः रुइयाजिनाय रत्नजटितापहिरावनी समर्पिता। तिलकाश्चैकादश संख्यायां महामहिमासंयुक्ताः सर्वे सम्पन्नाः। श्रीगुरुदेवैः श्रीरुइयाजिनादिभिश्च। प्रदत्तानन्त प्रसादं सर्वेष्वेकादश तिलकेषु। अनन्त समय स्वस्वभावमहिमासंयुक्तः प्रसादं सर्वैः प्राप्तं ॥ १५ ॥

काव्य

गणधर संख्यैकादश तस्य चतुर्विंशतिस्तथा तस्य।
द्विसप्ततेरनन्तमनन्त दृष्टिरदृष्ट चोत्पन्ना ॥ ४० ॥
पूर्वं रुइयारमणं सुसज्जितङ्कृतमनन्तरत्नाभरणैः।
समयानन्त सुयुक्तं प्रसाद तिलकैकदश युक्तं ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थ—गणधर ग्यारह। ग्यारह के चोबीस। चोबीस के बहत्तर। और अनन्त प्रसाद। अनन्त दृष्टि। अदृष्ट उत्पन्न प्रसाद। पहिले ही रुइयाजिन को रत्नजड़ित पहिरावनी पहिराये। तिलक ग्यारह हुये। अनन्त प्रसाद। अनन्त समय संयुक्त प्रसाद ॥ १५ ॥

टीका अर्थ—गणधरदेवों की संख्या ग्यारह। उनके चोबीस। उनके भी बहत्तर। और अनन्त प्रसाद स्वरूप। अनन्त का दृष्टि अदृष्टि प्रसाद उत्पन्न। पूर्व ही रुइयाजिन के लिये रत्नजड़ित पहिरावनी पहिराये। समर्पित किये। तिलक सब ग्यारह हुये। श्रीगुरुदेव एवं रुइयाजिनादि के द्वारा। अनन्त प्रसाद दिया। अनन्त समय संयुक्त स्वभाव प्रसाद ॥ १५ ॥

काव्य अर्थ—गणधर ११, उनके २४, उनके ७२, उनके अनन्त। दृष्टि अदृष्टि उत्पन्न समय अनन्त है। पहिले रुइयाजिन को अनन्त रत्न आभरणों कर सुसज्जित किया। और अनन्त समय संयुक्त प्रसाद दिया। सर्वतिलक महोत्सव ग्यारह हुये ॥ ४०-४१ ॥

विशेषार्थ—अनन्त समय संयुक्त अनन्त समय के प्रसाद से सुशोभित श्री रुइयाजिन को पहिले रत्नजड़ित पहिरावनी पहिराई गई। तिलक ११ हुये। गणधर ११ होंगे। ११ के २४। २४ के ७२। और अनन्त जीवों को परस्परा प्रसाद मिलेगा॥ १५ ॥

पद्यानुवाद

तीर्थंकरों गणधरों की परिपाटियों में भी अहा।
पहिरावनी रुइयारमण को तिलक ग्यारह की कहा॥ १५ ॥

अन्तिम समय के शब्द

जो थाती लिखि प्रवेश दियो,
प्रिय संसर्ग अनन्त प्रवेश,
लेहुरे, बड़े प्रिय प्रमाण दियो।
प्रिय प्रमाण ध्रुव। उत्पन्न शाह ॥ १६ ॥

टीका—या थाती लिखिता मया प्रस्तुता, तया स्वचिन्मयचैतन्यस्य प्रिय संसर्गेऽनन्तस्वभावे प्रवेशं गृह्णीध्वम्। महात्मना प्रमाणैः स्वानुभूतिसम्पन्नवैभवैश्च प्रदत्ता। प्रियस्वचैतन्यस्य प्रमाणं ध्रुवं। तेनैव प्रमाणेन उत्पन्नोऽयं मम शाह् स्वभावो जिनः ॥ १६ ॥

काव्य

समर्पिता या लिखिता मया निधिः,
सुरक्षणीया हि यत्नेन गुप्ता।
प्रियस्य संसर्गमनन्तवेशम्,
प्रिय प्रमाणं कुरु त्वं गृहाण ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ—जो धरोहर लिखकर तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत की है। इसके

द्वारा अपने प्रियस्वभाव का संसर्ग, अनन्त का प्रवेश होगा। इसको लीजिये। अत्यन्त प्रियस्वरूप के स्वानुभव-प्रत्यक्ष-प्रमाण से देख रहा हूँ। यह प्रिय प्रमाण अटल है, अकाट्य है, इस प्रमाण से ही यह शाह स्वभाव उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥

टीका अर्थ—जो धरोहर लिखी, मैंने प्रस्तुत की है। दी है। उसके द्वारा चिन्मय चैतन्य के प्रिय संसर्ग स्वभाव को, अनन्त स्वभाव के प्रवेश को ग्रहण करो। महान् आत्मा के प्रमाणों द्वारा स्वानुभूति के वैभव सहित दे रहा हूँ। अत्यन्त प्रिय अपने चैतन्य का स्वानुभूति से प्रत्यक्ष हुआ। प्रिय प्रमाण ध्रुव है। अटल है। उसी प्रमाण से यह मेरा शाह उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥

काव्य अर्थ—यह मेरी गुप्तनिधि जो समर्पित कर रहा हूँ, लिखकर दे रहा हूँ। यत्नपूर्वक सुरक्षित रखना। इससे अपने प्रिय आत्मा का संसर्ग, अनन्त का प्रवेश होगा। इस प्रिय थाती को तुम प्रमाण करना, ग्रहण करना ॥ ४२ ॥

विशेषार्थ—समस्त चौदह ग्रन्थों में जो अपनी आत्मा का स्वरूप लिखकर प्रस्तुत किया है। वह थाती है। धरोहर है। उसे निधि समझ कर अपने हृदय से लगाकर रखना, हृदय में रखना। और उसके प्रकाश में अपने अनन्त स्वरूप में प्रवेश करना। लीजिये बड़े ही प्रिय प्रमाण से दे रहा हूँ। स्वानुभव प्रत्यक्ष मेरा प्रिय प्रमाण है। वह ध्रुव है। इस प्रमाण से ही मेरा शाह स्वरूप उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद

यह धरोहर लिखित प्रस्तुत, प्रिय प्रमाण अनन्त को।
लेहुरे प्रिय ध्रुव प्रमाण प्रवेश शाह अनन्त को ॥ १६ ॥

कलशाभिषेक

चौदह सौ बहत्तर कलश ॥ १४७२ ॥ अर्क एक प्रति
चौबीस उत्पन्न कमल वृद्यते। छत्तीस सौ अट्ठानवै

कलश ॥ ३६९२ ॥ चतुष्टय उत्पन्न चौदह लाख, सात सहस्र, दो सौ आठ ॥ १४०७२०८ ॥ कलश ढले—तीन क्रोड़, साठ लाख, आठ से दोय— ॥ ३,६०,००,८०२ ॥ कलश कलश कलश, तीन के चतुष्टय चार ॥ १७ ॥

टीका—चतुर्दशशतद्विसप्तति: कलशाः। अर्कैकं प्रति चतुर्विंशतिः कलशाः। उत्पन्नकमले दृश्यन्ते। षट्त्रिंशतिशतद्वि नवतिः। चतुष्टयोत्पन्ने चतुर्दशलक्षसप्तसहस्रद्विशताष्टौ कलशाः। कलशाभिषेके सर्व कलशाः—त्रिकोटिषष्ठिलक्षाष्टशतद्वय प्रमिताः। कलशः। कलशः। कलशः। त्रिण्यश्चतुष्टयश्चत्वारः ॥ १७ ॥

काव्य

अस्मिन्हि सूत्रे कलशाभिषेकं,
कुर्वन्ति भेदान्हि निरूपयन्ति।
सहस्र लक्षश्चानेक कोटि,
स्वरूप रूपे कलशं गृहाण ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थ—१४७२ कलश। एक अर्क के प्रति २४ कलश उत्पन्नकमल में दीखते हैं। ३६९२ कलश। चतुष्टय उत्पन्न के १४०७२०८ कलश। कलश ढले तीन करोड साठलाख, आठसौ दो ॥ ३,६०,००,८०२ ॥ कलश कलश, कलश। तीन के चतुष्टय चार ॥ १७ ॥

टीका अर्थ—१४७२ कलश। अर्क एक के प्रति चौबीस कलश। उत्पन्न कमल देखे जाते हैं ॥ ३६९२ कलश ॥ चतुष्टय उत्पन्न में १४०७२०८ कलश। कलशाभिषेक के सर्व कलश ३,६०,००,८०२। कलश, कलश, कलश। तीन के चतुष्टय चार ॥ १७ ॥

काव्य अर्थ—इस सूत्र में कलशाभिषेक का वर्णन हो रहा है। कलशों के भेदों को कहते-कहते हजार, लाख, करोड तक अमृतकलशों का अभिषेक चैतन्य स्वरूप पर किया। ये सब कलश आत्मा में हैं, वहीं ढलते हैं। वहीं से प्राप्त करना चाहिये ॥ ४३ ॥

विशेषार्थ—१४७२ कलश, एक अर्क में २४ उत्पन्न कमल स्वभाव तो ३६ अर्कों में ८६४ कलश हुये तथा ३६ अर्कों के मूलभेद और ५७२ शून्यों के कलश मिलाइये १४७२ कलश हुये।

आगे ३६९२ कलश हैं, ये शून्य स्वभाव के ३॥ कोटि कलशों में से ३६९२ कलश अपने बढ़ते हुये शुद्धोपयोग में प्राप्त होते हैं। बहुत सूक्ष्म बात है, आगे बढ़ते हुए १४०७२०८ कलश उक्त शून्यस्वभाव के ही ढलते हैं। तथा सम्पूर्ण कलश शरीर की रोम संख्या प्रमाण हैं ३॥ करोड। परन्तु गुरुमहाराज के आत्मस्वरूप पर ३,६०,००,८०२ कलश ढले उनके समस्त शरीर की रोमावली इतनी संख्या में थी। इसी दशम अध्याय के ९वें सूत्र में—"देखत हो रे! शून्य समूह बार बार हृदय ही में देखहु। आहूठ कोड़ि सम्पूर्ण। सम्पूर्ण विन्दु उत्पन्न"। इन वाक्यों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से ये ३॥ करोड कलश समझ में आते हैं। यह भी कलशों के स्थूल भेद हैं। आगे इन कलशों के सम्पूर्ण भेद उतने हैं जितने आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं। प्रकरण चित्त की एकाग्रता का है। एकाग्रता ही ध्यान है। यह शून्यध्यान रूपातीत ध्यान है। जहाँ अपने एक आत्मस्वरूप का निर्विकल्प ध्यान होता है॥ १७॥

पद्यानुवाद

छत्तीस अर्क स्वभाव के सब भेद कलश स्वरूप हैं।
शून्य स्वभाव मिलाइये सब भेद, भेद स्वरूप है॥ १७॥

॥ श्रीछद्मस्थवाणी ग्रन्थराज की विषय प्ररूपणा यहाँ समाप्त॥

आगे श्री तारकल स्वामी तारणतरणदेव गुरुदेव की अन्तिम समाधि-महोत्सव के मंगल सूत्र को एवं उसमें महामंगल आशीर्वाद को १८वें सूत्र में कहते हैं।

अन्तिम समाधि महोत्सव

सम्वत पन्द्रह से बहत्तर (१५७२) वर्षे, ज्येष्ठवदि छठि की रात्रि, सातें शनीचर के दिन जिनतारणतरण

शरीर छूटो। ताविन सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न। अनन्त-
सौख्य उत्पन्न प्रवेश। समय हूँ प्रसाद। सुखेन सुखेन
प्रचे प्रवेश, प्रमाण ध्रुव उत्पन्न ॥ १८ ॥

इति छद्मस्थवाणी शास्त्र समो उत्पन्निता।

टीका—विक्रमीयाब्द पञ्चदशशतद्विसप्ततिवर्षे ज्येष्ठमासे कृष्ण-पक्षे षष्ठ्यांतिथौ शुक्रवासरे रात्रौ—शनौ दिने सप्तम्यां श्रीजिनतारण-तरणस्वामिनः शुद्धात्मा विनश्वर शरीरं त्यक्त्वा अविनाशीशुद्धस्वरूपे सर्वार्थसिद्धौ वा प्रवेशोत्पन्नाः। अनन्तस्य सौख्योत्पन्ने प्रविष्टाः। समय-स्य प्रसादः। सुखेन सुखेन परिचयस्वरूपे परिचितात्मनि वा प्रविष्टाः। प्रमाणेन ध्रुवरूपेण शुद्धस्वभावे सर्वार्थसिद्धौ वा उत्पन्नाः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥ १८॥

काव्य

पथे पान्थाश्च पृच्छन्ति किमस्ति गुरुमन्दिरे।
शान्ते वातावरणे हि किंकुर्वन्ति जनास्थिताः॥ ४४॥
अद्य वेतवा तीरे वनं समग्रं हि वर्तते स्तब्धम्।
श्रीसंघे स्तब्धत्वमद्य किमस्ति समीरणे शान्तिः॥ ४५॥
वनं शून्यं नदी शून्या वेतवातट शून्यता।
शून्याः सर्वे जनाः स्तब्धाः सभायां शांति मग्नता॥ ४६॥
कथनानुसारेणैव सः सर्वार्थस्य साधकः।
शून्यध्यानस्य निर्माता स्वयं शून्ये गतः प्रभुः॥ ४७॥
अद्यसमाधिदिवसः एकादशलक्ष शिष्य नाथस्य।
तारणपंथरविः श्रीतारणतरणेति ख्याति प्राप्तः सः॥ ४८॥
ज्येष्ठकृष्ण षष्ठो शुक्रे देहस्त्यक्तो महात्मना।
सर्वार्थसिद्धिः प्राप्ता सा सर्वार्थस्य प्रदायिका॥ ४९॥
सिद्धिः प्राप्ता स्वयं यत्र तीर्थश्च सुखमुक्तिदः।
स्थापितो निसईक्षेत्रो निधिधिः ऋद्धि सिद्धिदः॥ ५०॥

जयन्ति मोक्षमार्गस्था: मुनीनामीश्वरो गुरुः ।
श्रद्धा भावेन लिखिता, वाणी तेषां स्वमुक्तिदा ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थ—सं० १५७२ ज्येष्ठ वदी षष्ठी की रात्रि सातें शनिवार के दिन जिनतारणतरण का शरीर छूटा । उस दिन सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुये । अनन्तसौख्य स्वरूप में प्रविष्ट हुये, समय का प्रसाद है । सुख से, सुखपूर्वक ही परिचित में प्रवेश किया । सत्य है । ध्रुव है । प्रमाण है । उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥

टीका अर्थ—वि० स० १५७२ ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की तिथि षष्ठी शुक्रवार रात्रि में तथा शनिवार दिन सप्तमी को श्रीजिनतारणतरण स्वामी का शुद्ध आत्मा विनश्वर शरीर को त्याग कर अविनाशी शुद्धस्वरूप में अथवा सर्वार्थसिद्धि में प्रवेश प्राप्त किया, उत्पन्न हुये । समय का प्रसाद है । सुख से सुखपूर्वक परिचित शुद्धस्वरूप में उत्पन्न हुये, प्रविष्ट हुये । प्रमाण से ध्रुवरूप से उत्पन्न हुये, सत्य है । ध्रुव है । प्रमाण है । ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः । ॐ नमः सिद्धेभ्यः । वन्दे श्रीगुरुतारणम् ॥ १८ ॥

काव्य अर्थ—मार्ग में पथिक गण पूछते हैं—आज गुरु मन्दिर में क्या है । शान्त वातावरण में बैठे ये सब जन क्या कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

आज बेतवा के तीर और यह समग्र वन स्तब्ध हैं । पूरे श्रीसंघ में स्तब्धता है । आज यहाँ के वायुमण्डल में इतनी शान्ति क्यों है ॥ ४५ ॥

वन में शून्यता, नदी पर शून्यता, बेतवा के तटों पर शून्यता, सब जनता में शून्यता, स्तब्धता, श्रीगुरुदेव की सभा भी शान्तिमग्न है ॥ ४६ ॥

अपनी भविष्यवाणी कथन के अनुसार ही वह सर्वार्थ शून्य का साधक, शून्यध्यान का निर्माता प्रभु स्वयं ही शून्य में चला गया ॥ ४७ ॥

आज समाधि का दिवस है । ग्यारह लाख शिष्यों के नाथ, तारणपंथ के रवि, तारणतरण नाम से ख्याति प्राप्त सद्गुरु की यहाँ वन में आज समाधि है ॥ ४८ ॥

ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठि शुक्रवार को देह का त्यागकर वह महात्मा सर्वार्थ की प्रदाता सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥

जहाँ स्वयं सिद्धि प्राप्त की। सुख मुक्ति का दाता निसई क्षेत्र जिनकी समाधि से आज स्थापित हुआ। वह तीर्थ सबको ऋद्धि और सिद्धियों का दाता है। जहाँ किसी साधु को विशेष सिद्धि प्राप्त हो उसे ही निसई कहते हैं ॥ ५० ॥

मोक्षमार्ग में स्थित सर्व आत्मायें जयवन्त हैं। मुनियों के नाथ गुरुदेव जयवन्त हैं। उन तारणतरणस्वामी की वाणी को छद्मस्थवाणी को अपनी मुक्ति के लिये मैंने लिख कर प्रस्तुत की ॥ ५१ ॥

विशेषार्थ—जिस सम्वत् बहत्तर को स्मरण करके गुरुदेव कहा करते थे कि—हमारो तिलक बहत्तर को है। वह सम्वत् १५७२ आया और श्रीगुरु तारणतरण मण्डलाचार्य निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज का उनके प्रिय निर्जन वन, वेतवा के निकट ही उनका तिलक महोत्सव सम्पन्न हो गया।

सर्वार्थ शून्य स्वभाव की साधना करके इस शून्य की सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई। अतएव सर्वार्थसिद्धि प्राप्त हुई।

सर्व-अर्थ-शुद्धात्मा की सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई, अतएव सर्वार्थसिद्धि प्राप्त हुई।

तदि सर्वार्थसिद्धि उत्पन्न, सर्वार्थसिद्धि उसी समय प्राप्त हुई, जब यह शरीर छूटा।

शुद्धात्मवादी सन्तों को स्वर्ग, सर्वार्थसिद्धि और मोक्ष इनकी न तो चाह होती और न वे इनसे प्रभावित होते। उनकी आत्म साधना के उनके आत्मीक आनन्द के समक्ष इन वस्तुओं की कीमत भी क्या है। यह सब बाहर की वस्तुयें हैं। पिछले अनेक सूत्रों में गुरु महाराज ने अपने शुद्धात्मा को त्रैलोक्यनाथ कहा है। अतः आत्मसिद्धियों के समक्ष अन्य सिद्धियाँ हेय हैं ॥ १८ ॥

पद्यानुवाद

जेठवदि छठ रात्रि पन्द्रहसौ बहत्तर विक्रमी।
देह त्याग हुआ, हुआ संस्कार शनि दिन सप्तमी ॥ १८ ॥
तारणतरण सर्वार्थसिद्धि अनन्त सौख्य प्रवेश में।
सुखेन समय प्रसाद ध्रुव उत्पन्न मुनि के वेश में ॥ १९ ॥

॥ ग्रन्थ की टीका समाप्त ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

॥ इति श्री छद्मस्थवाणी ग्रन्थ समाप्त ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अन्त मङ्गल

मंगल, उत्तम शरण हैं, पंच परम परमेष्ट।
ऋषभ-वीर जिन चरण में, भाव समर्पित श्रेष्ठ ॥ १ ॥

तारणतरण जिनेन्द्र हैं, तारणतरण गणीन्द्र।
देव शास्त्र, गुरु बन्दना, बन्दों सर्व मुनीन्द्र ॥ २ ॥

ग्रन्थ श्री छद्मस्थ की, वाणी गुण गंभीर।
द्वितीय नाममाला, परम, मिली मुक्ति के तीर ॥ ३ ॥

बीस वर्ष बीते सहज, अर्थ सहित ये ग्रंथ।
आये नहीं प्रकाश में, समय बड़ा बलवंत ॥ ४ ॥

दिनांक सत्ताईस था, और नवंबर मास।
९० सन् सूखा निसई, समाज में उल्लास ॥ ५ ॥

निमित्त "अमृत-महोत्सव," निमित्त धन्य समाज।
दोनों ग्रन्थ समाज में, आये अनुपम साज ॥ ६ ॥

श्रीमंत परिवार को, साधुवाद सौ बार।
बनकर प्रबल निमित्त यह, ग्रन्थ बुलाया सार ॥ ७ ॥

समाज भूषण श्रेष्ठिवर डालचंद श्रीमान्।
माणिकचंद रु प्रेमचन्द, शिखरचंद शुभ ध्यान ॥ ८ ॥

हुकमचंद श्री दीपचंद, बन्धु अशोककुमार।
ये सातों रक्षक बने, स्याद्वाद गुणधार ॥ ९ ॥

समाज का सहयोग है, अद्भुत पुण्य सुयोग।
बनते बनते बन गया, धन्य धन्य संजोग ॥ १० ॥

पढ़ें पढ़ावें प्रेम से, शुभोपयोग सँभार।
शब्द अर्थ की भूल को लेना सुधी सुधार ॥ ११ ॥

श्रीमन्त भवन, सागर ॐ ब्र० जयसागर

१९९१

श्री तारणतरण मण्डलाचार्य विरचित

नाममाला

• •

सम्पादन

ब्रह्मचारी जयसागर

श्री तारणतरण मण्डलाचार्य विरचित

नाममाला

सम्पादन

ब्रह्मचारी जयसागर

सह सम्पादक

राजेन्द्र सुमन

सम्पादक–तारणज्योति

सिंगोड़ी (छिन्दवाड़ा)

प्रकाशक

भगवानदास शोभालाल पारमार्थिक ट्रस्ट

सागर (मध्यप्रदेश)

प्रकाशक
भगवानदास शोभालाल
पारमार्थिक ट्रस्ट
सागर (म० प्र०)

●

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
चमेली चौक, सागर (म० प्र०)

●

प्रथम संस्करण : १९९१
११११ प्रतियाँ

●

न्यौछावर
स्वाध्याय

●

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर
वाराणसी–१०

ग्रन्थ-परिचय

● १४ ग्रन्थों में सुप्रसिद्ध हमारा महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ नाममाला है। इसमें मात्र नामावली और संख्या ही है। नक्शे में क्रमांक का पहला नाम मंडल के मंडलेश्वर का है, दूसरे खाने में उसी नाम के पास जो नाम और संख्या है, वह मंडलेश्वर के साथ बने अनुयायी और उनके साथ कितने शिष्य थे, वहाँ उनकी संख्या जो लिखी है, वह उन अनुयायी या शिष्यों की संख्या है, जिनने दीक्षा ली। इस प्रकार मंडल और मंडलेश्वर तथा श्रीसंघ की संख्या है। इन समस्त मंडलों के आचार्य तारणतरण स्वामी को मण्डलाचार्य कहा जाता है।

● वास्तव में यह सब नामावली हमारे पूर्वजों की है, इनमें कुछ नाम तो मूल रूप में ही हैं, शेष नाम बदले हुये, आध्यात्मिक हैं। पूरे ग्रन्थ में नाम हजारों की संख्या में तथा अंकों में लिखी गई संख्या लाखों की है। उस समय की यह तारण समाज १०८६४६५ की संख्या में थी। और उपदेश सुनने वालों की संख्या लगभग ४२ लाख थी। यह सब लेखा-जोखा गुरुदेव की छत्रछाया में शिष्यों के द्वारा लिखा "छद्मस्थवाणी" और इस ग्रन्थ में लिखा गया है।

● यह ग्रन्थ आज से २५ वर्ष पूर्व लिखकर तैयार कर लिया था, परन्तु निमित्त न मिलने से रखा ही रहा। आज तक इस ग्रन्थ की ओर किसी का ध्यान नहीं गया, बल्कि सन् १९३९ के बाद से इसका जो अस्थाप-तिलक श्री छद्मस्थवाणी के साथ होता था, बन्द हो गया और प्रतिष्ठा विधि भी समयानुसार बन गई। हर्ष है कि श्रीमन्त परिवार का निमित्त पाकर 'नाममाला' और 'छद्मस्थवाणी' प्रकाश में आ रहे हैं। आगे इन ग्रन्थों के आधार से इतिहास की रूपरेखा विशाल रूप में अवश्य ही बनेगी, क्योंकि समाज में अपने इतिहास के प्रति रुचि आई है। समाज में जागृति आई है।

● परंपरा है कि गुरु जो बोलते थे, शिष्यगण लिपिबद्ध करते थे, वही सब ग्रन्थ रूप में वाणी हमारे सब के समक्ष है। भौतिकवाद में बुद्धि तर्क प्रधान होती है, जब कि अध्यात्मवाद में श्रद्धापूर्ण भाव प्रधान होती थी। श्रीगुरु के सभी ग्रन्थ शिष्यों ने लिपिबद्ध किये हैं, इसका प्रमाण छद्मस्थवाणी में अन्तिम को देखिये जहाँ गुरु कृत ग्रन्थ में गुरु के अन्तिम समय शरीर छूटने का प्रकरण आया है। अधूरे ग्रन्थों को शिष्य पूरा करते हैं, इसका भी प्रमाण है। इसी प्रकार नाममाला है। हमारे संघ व्यवस्थापक जो संघ व्यवस्था के प्रमुख थे श्रीरुइयाजिन और कमलावती आदि। इनने ही सब संघ और पंथ की व्यवस्था की है। तारणतरण वीतरागी थे, उन्हें पंथ का व्यामोह नहीं था।

● **शब्दकोश**—तारण साहित्य के अनेक शब्द हैं, जो अन्य किसी कोश में नहीं मिलते। व्याकरण के धातु पाठ ओर व्युत्पत्ति आदि के द्वारा ही इन शब्दों को समझना चाहिये। कुछ शब्द जैसे—सी = श्री। सिया = सती। उवन = उदय होता हुआ। उवं = ओं। उवन्न = उत्पन्न। हिययार = हितकार। सहयार = सहकार आदि। **षट्कमल** = विंद. कंठ, मुख, हृदय, नाभि और गुप्तकमल। **त्रिवंकारं** = तीन ओंकार = ॐ ह्रीं श्रीं। **तिअर्थ** = रत्नत्रय। **ममल** = शुद्ध आदि। इन शब्दों का एक कोश आवश्यक है।

● इस ग्रन्थ में सभी प्रकार से सावधानी रखी गई है, फिर भी यदि कहीं कोई प्रमादवश त्रुटि समझ में आवे तो सुधारें या सूचित करें, हमने तो नाममाला के भाव को खोलने का एक प्रयास किया है, ताकि आगे ग्रन्थ का कुछ उपयोग हो। इसी के साथ श्री छद्मस्थवाणी भी प्रकाशित हो रही है। इन ग्रन्थों में जिनका तन, मन, धन से सहयोग मिल रहा है, उनके शुभ भावों की जयकार हो।

ब्र० जयसागर

ॐ परमात्मने नमः

श्री स्वामी तारणतरण मंडलाचार्य विरचित

नाममाला

"नाम ठाम अर्क छत्तीस को"

अर्थ—इस ग्रन्थ में छत्तीस अर्कों के नाम और ठिकाने लिखे जावेंगे।

विशेषार्थ—यहाँ अर्क नाम आत्मसूर्य का है, जिन्होंने अपने आत्म रवि के प्रकाश में अपने स्वरूप को पहिचान लिया था, ऐसी अपने श्रीसंघ की छत्तीस विदुषी अर्जिकाओं के नाम श्रीगुरु महाराज ने वही रखे जो योगशास्त्रो मे छत्तीस अर्कों के नाम प्रसिद्ध हैं। छत्तीस अर्कों के नाम के आगे "सी" शब्द जोड़ देने से वह स्त्रीलिंग नाम बन जाता है, जैसे—समय अर्क के आगे सी लगा देने से समयसी नाम एक अर्जिका का बन गया, अर्क नाम धारिणी होने से इन छत्तीस अर्जिकाओं को भी अर्क कह कर सम्बोधन किया है। अर्कों के नाम में आध्यात्मिक अर्क अर्थ गर्भित है, अतएव जो अर्क नाम जिस अर्जिका का रखा गया है, उसमें वही आध्यात्मिक गुण विद्यमान है जैसे समय नाम आत्मा का है, इसलिये समयसी अर्जिका में हमेशा आत्मस्वरूप में रहने का गुण विद्यमान होने से यह समयसी अन्वर्थक नाम हुआ। इस ग्रन्थ में सी की जगह श्री का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ में करीब पन्द्रह सौ नाम आये हैं जिनमें प्रायः सभी के इसी प्रकार परिवर्तित करके आध्यात्मिक नाम रखे गये हैं।

शिष्यों के परिवर्तित नाम के साथ पुराने नाम भी कहीं-कहीं सर्वत्र इस ग्रन्थ में लिखे गये हैं इसलिये इस विषय को यहाँ और ज्यादह खुलासा करने की जरूरत नहीं है। अब यहाँ छत्तीस अर्कों के नाम का नक्शा देते हैं—

१. बिन्दसी	१३. कम्मसी	२५. हियारसी
२. समयसी	१४. चरणस	२६. अलखसी
३. नन्दसी	१५. कर्णसी	२७. अगमसी
४. हियारसी	१६. सुबनसी	२८. सहियारसी
५. जिनसी	१७. हंससी	२९. रंजसी
६. जानसी	१८. अवयाससी	३०. सोई रमणसी
७. लक्षणसी	१९. दिप्तिसी	३१. सोई उवनसी
८. लीनसी	२०. सुदिप्तिसी	३२. खिपनसी
९. भद्रसी	२१. अभयसी	३३. ममलसी
१०. मै उवनसी	२२. सुर्कसी	३४. नन्दानन्दसी
११. सहजसी	२३. अर्थसी	३५. सहजसी
१२. प्रमाणसी	२४. विक्तसी	३६. कमलसी

इन छत्तीस नामों के अतिरिक्त ग्रन्थ में करीब ११८ नाम और भी प्रधान शिष्यों के ऐसे आये हैं जिनके हाथ में संघ-समिति या शिष्योपशिष्य मंडलों के संचालन की बागडोर थी, यहाँ पर **"नाम ठाम अर्क छत्तीस को'** इस सूत्र में सिर्फ छत्तीस कहा है, छत्तीस का एक समूह होने से सूत्र में उसका नाम दे दिया है, किन्तु ग्रहण सभी शिष्यों का होता है। छत्तीस अर्क के ३६ मंडल एवं ११८ मंडल और हैं जो आगे कहेंगे। इस प्रकार १५४ मंडलों के द्वारा करीब लाखों प्रमाण विशाल संघ का संचालन श्री स्वामी तारणतरणदेव के आधिपत्य में होता था। इसीलिये उन्हें मंडलाचार्य कहा गया है। सोलहवीं सदी में इतना बड़ा मडलाचार्य दूसरा कोई भी जैन साधु नहीं हुआ।

महा उत्पन्न कलिकमल न्यानसिरो, उत्पन्न अंजिका कलनकमल कलिकमल श्री।

अर्थ—सम्यग्ज्ञान स्वरूप कमल से शोभायमान उपर्युक्त छत्तोस अंजिकाओं का महान् अवतार इस कलिकाल में हुआ, जो आत्मध्यान रूपी कमल को अपने हृदय कमल में प्रफुल्लित करने वाला था।

उत्पन्नपद तारनतरन।

अर्थ—सर्वप्रथम तारनतरन पद उत्पन्न हुआ। छत्तीस अर्क का नामठाम ही इस ग्रन्थ में कहा जायगा इसलिये जिसके निमित्त से ग्रन्थ रचा जा रहा है उसका नाम पहले लिखकर बाद में वस्तु स्वरूप उत्पन्न पद

तारनतरन लिखा है। अब यहाँ से संघ समितियों के नाम प्रारंभ हो रहे हैं—अतएव पहला पद तारनतरन है जिससे ही आगे की कही जाने वाली शिष्य परंपरा की उत्पत्ति है। तारनतरन पद से कौन उत्पन्न हुवा। शिष्य परंपरा कैसे चली? इसके उत्तर में सूत्र कहते हैं—

तस्य उत्पन्न सुव पाँच

१. दिप्तिजिन—५३१३१
२. रुईजिन—२१७७४
३. कलनजिन—३३७२
४. मेघकुमार—७७८४
५. अन्मोय रुइयाजिन सिवकुमार—५७७२

अन्मोय रुइयाजिन सुवनो तीन—

१. कल्पश्री
२. अल्पश्री
३. स्वल्पश्री

अर्थ—तारनतरन स्वामी के पाँच शिष्य उत्पन्न हुये और तीन शिष्याएँ हुईं। इनमें से सिवकुमार शिष्य और कल्पश्री, अल्पश्री, स्वल्पश्री ये तीन शिष्याएँ रुइयारमन जी के अनुग्रह से तारनतरन के शिष्य हुये। दिप्तिजिन का संघ ५३१३१ श्रावक-श्राविकाओं का था। इसी प्रकार रुइयाजिन का २१७७४, कलनजिन का ३३७२, मेघकुमार का ७७८४ और सिवकुमार का ५७७२ श्रावक-श्राविकाओं का संघ विद्यमान था। श्रीगुरुमहाराज की यह पहिली संघ समिति है जिसके प्रधान पाँच शिष्य, तीन शिष्याएँ तथा ९१८३३ संख्या प्रमाण संघ था जिसका संचालन उपर्युक्त आठ शिष्य-शिष्याओं के द्वारा होता था।

कमल कलि कलन प्रवेश सतसई सखीवहिनी चार—

१. सक्तश्री २. विक्तश्री ३. विवानश्री ४. निलयश्री।

अर्थ—उपर्युक्त श्री आदि तीन श्राविकाओं से आत्मध्यान रूप कमल-पुष्प-संपुट में प्रवेश करने वाली साध्वी सखी बहिनें चार हुईं—१. सक्तश्री २. विक्तश्री ३. विवानश्री ४. निलयश्री।

विवानश्री तस्य उत्पन्न पांच, सुवनी दो।

अर्थ—विवानश्री साध्वी के पाँच श्रावक और दो श्राविकाएँ उत्पन्न हुईं।

नोट १—आगे प्रारंभ से आखिर तक संघ समितियों का नक्शा दिया जाता है। यहाँ उत्पन्न पद तारनतरन से विवानश्री तक का नक्शा समझा दिया गया है। आगे के प्रायः सभी नक्शे सबकी समझ में आ जावेंगे अतएव विशेषार्थ की कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी जहाँ जरूरत होगी, प्रकरण को खुलासा करेंगे।

नोट २—प्रत्येक नम्बर की समिति के आदि में प्रधान का नाम निम्न-लिखित उत्थानिका पूर्वक लिखा गया है हमारे पाठक एक बार इस उत्थानिका को ध्यान में रख लेंगे तो यही यही उत्थानिका बार बार लिखने की आवश्यकता नहीं रहेगी—

महाउत्पन्न न्यानश्रो अजिकापयोग तारनतरन समय तस्य उत्पन्न........।

अर्थ—ज्ञान लक्ष्मी से शोभायमान तारनतरन स्वामी के आम्नाय में महा उत्पन्न अजिका........(अमुक) उससे उत्पन्न शिष्य........।

नोट ३—इसी प्रकार प्रत्येक नम्बर के नक्शे में आखिरी नम्बर के नाम के बाद एक आशीर्वाद लिखा जाता है जो एक ही आशीर्वाद प्रत्येक नम्बर के साथ लिखा गया होने से सैकड़ों बार आया है उसको यहाँ पर एक बार समझ लेना जरूरी है। प्रत्येक समिति को दिया गया महत्त्वपूर्ण आशीर्वाद निम्न प्रकार है।

अन्मोय जिनश्रेण कलन मुक्तिगामिनो।

अर्थात्—इस तारणतरण संघ के अनुग्रह से जिनश्रेणि (सम्यक्त्वपूर्वक) आत्मध्यान का लाभ हो और प्रत्येक भव्य मोक्षगामी होवे।

ग्रंथ प्रारंभ से सिर्फ यहाँ तक की सभी बातों को समझ लेने से पूरा ग्रंथ समझ में आ गया समझिये। क्योंकि महत्त्वपूर्ण बातें तो यही है। आगे तो सिर्फ नामावली है।

ब्र० जयसागर

श्रीसंघ—व्यवस्था

१५५ मंडल

मंडलेश्वर

एवं

शिष्य-संख्या

●

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
१	तारणतरण	दिप्ति जिन	५३१३१	
		रुई जिन	२१७७४	
		कलन जिन	३३७२	
		मेघकुवार	७७८४	
२	रुइयाजिन	सिवकुमार	५७७२	१ कल्पश्री
	"		(सात)	२ अल्पश्री
				३ स्वल्पश्री
				(इनकी बहिनें)
			(चार)	१ सवतश्री
				२ विक्तश्री
				३ विवानश्री
				४ निलयश्री
३	विवानश्री	हियनंद श्रीश्रेन हरिकुंवार	(सात)	खिपनश्री १
		कलन श्रेन (कुंवर श्री)		मिलनश्री २
		दर्शन कुवार (दोई)		
		चेयकुवार (चिन्दपा'''')		
		ऊवन श्रेन प्र० राठौर		

४	विक्तश्री	दिप्ति कुंवार (देवश्री)	(आठ)	दिप्तिश्री
		सहज कुमार सहस		सुअनश्री
		उक्तकुंवार उदेसी		संतश्री
		सुवनकुमार सुखमाल		
		साहकुवार प्रदेश		
५	निलयश्री	सुवनरंज (भीखम)	(आठ)	सुयंश्री
		कलनकुंवार (मनसुख दोई)		साहश्री
		कलरंज (कर्मचन्द)		सुल्यश्री
		निलयकुंवार (रदेव)		
		नन्दकुवार प्रदेश		
६	···· श्री	रैनचन्द	४९६	मैनश्री
		विश्वसेन	(चार)	ममलश्री
७	कर्न. सी.	पैरमनु पदम	३३३	परनश्री
		मैरमन मंडिरिक		निलयश्री
		सुव रमनु	६९	
		जैसिन्धु	१४७४	
		अभयकुमार	३७२	
		रंजकुवार	१४२	
			(आठ)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
८	पदम कमल	निलय रंज	३७२	जान सुवा
		गोविंद	४३	स्यन सुवा
		तिजैरंज तैल	२७	लीन सुवा
		ममल कुमार	२२७	
		दिप्तिरंज प्रदेश	३७	
		अचुरमन प्रदेश	(नौ)	
		रमन रूवा, रूपा		
		(रमनरंज, गनेस)		
		परमसुवा परवत		
		नंदरूवा नथा		
		दानरूवा देलो	(पाँच)	(४ श्रा०)
९	हंसश्री	अन्मोदाखिर रमनु	३७२	रयनश्री
		रैन रमन	१४४	
			(तीन)	
१०	सुवनश्री	ममल कुंवार	—	अलखश्री
		नरसिंधु	८४	ममलश्री
		ममल रंज धारू	३४३	दिप्तिश्री

		सुवन कुमार	३४	
			(दश)	
		भुवनरंज	६४	
		सुवनरंज सेठ	१०१	
		भिउ श्री अभयकुंवार	(तीन)	
		निलयश्रेनराजा		निलयश्रीरानी
		जिनश्रेन	(चार)	परमश्री (दोई)
११	जिनश्रेन	ममलकुवार	५४	नैंनसिरी
		नीलकुंवार लखउ	५२	नृतसिरी प्रदेस
		लखन कुमार ललउ	७२	उवनश्री प्रदेस
		रंजश्रेनरमन	४१	
			(सात)	
१२	खिमनश्रेन	रमनरंज रगऊ	३१	सीलश्री
		दिप्तिकुमार सहस	३७	स्वरूपश्री
		निलैकुवार	(पाँच)	
१३	धर्मसार	दिप्तिकुमार देवश्री	८४	मैनश्री
		सिवकुवार खिपति	३१	पयनश्री
		उवनरंज दैवसी	२४	सुहगश्री
		रैनरंज राइचंद	१७	—ये ७ बहिनें

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		सहजरंज प्रदेस	४१	रिषिरंजालाइन
			६७	रमनश्री
			(दश)	
१४	आकासश्री	सुवनरंज चाँदन माहर	१३७	निलयश्री नैना } गुजरात
		कमलरंज पनपति पटवारी	३१२	न्यानश्री } गुजरात
		सहजरंज चौधरी	३६	सहजश्री } गुजरात
		मेनरंज (मानिक)	३८३	
		कर्तरंज	२१२	
		रमनरंज मुजरू	३०७	
		लखनरंज इटाए		
			(दश)	
१५	दिप्तिश्री	लखनरंज रतनश्री	४७७	खिपनश्री
		ममलरंज	३४७	जै उवनश्री
		चरनरमन करमसी माहरू	५७६	जै लखनश्री
		मिलनरंज	८४	
		सोनेरे रमनरंज प्र०	७१	
			(आठ)	
१६	स्वयंदिप्ति	खिमन श्रेन रामश्री	१९९७२	महतश्री

		गमनरंज विमल	१७१४	गमनश्री
		सुवन सिऊपारू	७७४	उवनश्री
		रमनरंज		
		उवनरंज सेउगनु	६८७	
		लखनश्रेन गुजरात	(दश)	
		परमरंज इटाए		
१७	अभयश्री	उवनश्रेन प्रदेश	१३३	भुवनश्री
		निसंकश्रेन प्रभु	११६	ठाकुरश्री रमनश्री
		रमनरंज रमनचंद	१८२	दर्सश्री
		तरतारंज छितरू	१२५	
		अभयरमनु अभैराज (मुकजौ)	३३१	
			(आठ)	
१८	स्वर्कश्री	मैंनकुवार	३९७१	अलखश्री
		सलबधकुवार लखन	१५६	दृष्टिश्री
		लीनरंज लाड़के	१२७	उवनश्री
		लखनरंज नान्हें	१०७	
		असुरकुवार प्र०	२३३	
		सुवनकुवार प्र०	३११	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		सुवनकुवार	३४३	
			(दश)	
१९	स्वर्कश्री की बहिनी	सुवनकुमार सुमति	८४	
	पहुपश्री	दिप्तिरंज देवसी	३७	
		मिलनरंज मानिक	३९	दानश्री
		सीयरंज लालबिहारी पांडे	३३	रमनश्री
		गुप्तकुवार प्रदेस	१०९	
			(सात)	
२०	भुवनश्री	हर्ष कुवार हरू	३३	सहश्री
		उक्तरंज उददु	१०७	साहश्री
		रैनरंज रामू	४१	गाहश्री
		झरूकुवार उदद के बेटा	३७	
		युवकुवार प्रदेस	(आठ)	
			६७६१	
२१	प्रियेश्री	खिपकरंज मेष		सुहश्री
		निलयरंज प्रदेसी	(चार)	सीलश्री
२२	भद्रश्री	कनकरंज (करमश्री) सेठ		निलयश्री
		स्वल्परंजश्री		पदमश्री

२

		मेनरंज माडन		
		जयकुमार रूपे		
		सहजरंज प्रदेशी	(सात)	
२३	सर्वार्थश्री	तस्य बहिनी लाड़श्री		
		तस्य बहिनी लीनश्री		
		तस्य बहिनी लवणश्री	(तीन)	
२४	लाड़श्री	अभयकुमार प्र०	(एक)	
२५	लीनश्री	रैनरंज	१७	रमनश्र
		स्वल्पकुवार सुमति	६४	रुचिश्री
		साहकुवार वसउ	४४	विगसश्री
		विमलरंज वीरदास	९७	
		दिप्तकुवार प्र०	१११	
			(आठ)	
२६	विंदश्री	पदमरंज पुनपारू	३३५	सहजश्री
		साहरंज श्रीचंद	३९३	विमलश्री
		ममलरंज मलिदास	१७७४	अतुलश्री
		जिनरयन पारू	४६४	
		सुईरमन	८४	
			(आठ)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
२७	आनंदश्री	जंरमन-भारथी	२४७६	जयरमनश्री
		पदमरंज पूरन	७१०	घ्रुपरमनश्री
		निलैरंज साधारन		सुवरमनश्री
		सुवन कुवार		
		मिलन	(आठ)	
	तारनतरन			
२८	समय········	अभयरंज	७१४	ममलश्री
		तवश्री तिभुव		जैजिमयश्री
		साहकुवार मल	३९६	
		सुवनकुवार ठाकुर (वाभौरी)	७४	
		सहजरमन प्र०		
			(सात)	
२९	हियउवनश्री	कतकरंज कामदेव		नंतश्री
		जैरमनरंज जैनश्री		नृतश्री
		ममलरंज माडन		निलयश्री
		उत्पन्नरंज प्रदेस		
		सहज सरूव प्रदेस		
			(आठ)	

३०	अलखश्री	उददश्रेन उदद		मयनश्री
		सोलरंज सेठिसु		पदमश्री
		परमनरंज प्र०		भुवनश्री
		समयरंज सौसारचंद		
		निलयरंज प्र०		
			(आठ)	
३१	अलखश्री			तस्याबहिनी—
				सर्वश्री
				साहश्री
				तिलकश्री
				सुवनश्री
			(पाँच)	गमनश्री
३२	तिलकश्री	भैकुवार उदद		कनकश्री
		शिवकुवार सरौतु		जेरमनश्री
		धनकुवार प्र०		साहश्री
		दिप्तरंज	(सात)	
३३	साहश्री	उमेरंज उदु		सयनश्री
		अमियरंज ठाकुरश्री		गमनश्री
		निरतरंज पयने		पानश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		मयनरंज माना		दिप्तिश्री
		शिवकुवार प्रदेसी	(नौ)	
३४	साहश्री	ममलरंज मानदास		
	सुअनश्री	पनुराज थानी		
		पियकुवार पंचाइन		
		गमनरंज ज्ञानचंद		
		साहरंज प्रदेसी		
			(पाँच)	
३५	सर्वश्री	अभयरंज प्र०		दिप्तिश्री
				दर्सश्री
				सुमयश्री
			(चार)	
३६	गमनश्री	दिप्तिकुवार अर्जुन		नन्दश्री
		नृतकुवार पद्मश्री		निलनश्री
		सुवकुवार वैदश्री		भुवनश्री
		सीयकुवार मदनश्री		
		साहकुवार प्रदेसी		
			(आठ)	
३७	अगमश्री	ईशकुमार प्रदेसी		रंजश्री

		पैपालरंज कामराज		विनयश्री
		महाकुवार साहिब, रतनागरी		
			(पाँच)	
				अगमश्री की बहिनें
				१ दर्सश्री
				२ अभैश्री
				३ सुअनश्री
				४ सुहश्री
				५ साहश्री
			(पाँच)	
३८	साहश्री	हर्षरंज प्रदेस		कल्पश्री
		हियाररंज प्रदेसी		अल्पश्री
		ऋषिकुमार रतनश्री		
		परिसकुमार ज्ञानचन्द		
		शिवकुमार साते		
			(सात)	
३९	सुवन	रैनकुवार सौराज	१११	रंजकुमारी
		रंजकुवार क्यौराज	५८७	मलयश्री प्र०
		बयकुमार धनु	७११	ममलश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		साहु कुमार	६४	
		दिप्तिकुवार प्र०		
			(आठ)	
४०	दर्शश्री	निलयरंज खिपति	१७५८	परमश्री
		कनककुमार		प्रेमश्री
		शिवकुमार	४४	
		भुवनरंज भीखम	२४	
		अभयकुमार प्र०	७२	
			(सात)	
४१	अभयश्री	कलनकुमार कपिल	२७	निलयश्री
		हर्ष रंज, देव राज	११	नालश्री
		रिषिकुमार करतु	२१	नंदश्री
		पापरंज पहरू	२४	
		सहजरंज प्रदेसी	४४	
		सुवकुमार श्रीध्रुव	३३	
			(नौ)	
४२	सुहश्री	रमनकुमार	५	सहजश्री
		रंजकुमार पातल	१२	साहुश्री

		रैनरंज पार बरड़िऊ	६	
		उक्तरंज बरडि उददु	२२	
		उमयरंज प्रदेस	४४	
			(सात)	
४३	सहयारश्री	चेयनन्दकुमार, चौभीखा	७८४	नृतश्री
		अखयकुमार घट्ट	११४	लीलश्री
		उक्तकुमार उदुड़	८४	मिलयश्री
		सियकुमार मिलने	३०७	
		ध्रुवकुमार मिलन	१११	
			(आठ)	
४४	महश्री	मिलनकुमार		स्कंधश्री (पार की बहिन)
			(दो)	
४५	स्कंधश्री	विलसकुवार वेदनु	३०९	रहज रूव
		कनककुवार रैन	१०१	सहज रूव
		निलयरंज उत्पन्नकुमार —ओसवाल	१८४	
		साहकुमार मिलन राठौर	११४	
			([illegible])	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
४६	मिलन सुवा	रिसिकुवार ती·······	२८७	ममलरूपा कूबरी
		सिवकुमार रैनदनु	३१	विगसरूपा वेदा
		खिमकुमार	७४	चेयरूपा चांदो
		रंजकुमार मिलने	८९	अल्परूपा आमिन
		रंजरमन राजा		प्रियरूपा पाँचो
		वैकुमार ब्राह्मण		मुक्तिरूपा पापो
		रैनकुमार रूपा		
			(तेरह)	
४७	रमनश्री			उत्पन्नश्री
			(दो)	न्यायश्री
४८	उत्पन्नश्री	मिलनकुवार चंदेरी		(उवनश्री की बहिनें)
		रूपरंज		मलयश्री
		भिउकुमार प्रदेसी		परमश्री
				पदमश्री
				मलैश्री
				नीलश्री
				निलयश्री
			(दस)	रंजश्री

४९	खिपनश्री	सुवन रंज थिरू	१५७५	रूपश्री
		रूपरंज	११४	सुवनश्री
		पदमरंज	१८७	खिपनश्री
				(इनकी बहनें)
				चित्रश्री
				चरनश्री
				सहनश्री
				निःसंकश्री
			(दश)	
५०	निःशंकश्री	निलयरंज चाँदनु (देवराज)		जैनश्री
		रयनकुमार प्रदेसी		जानश्री
				लखनश्री
			(पाँच)	
५१	ममलश्री	विनयरंज	३९३	साहूश्री
		लखनरंज	२८७	मैनरंजश्री
			(चार)	
५२	विन्यानविंदश्री	वसरमन	१०७	गमनश्री
		रैन राम	७७४	लखनश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		उत्पन्नकुमार	१६४	विदश्री
				(बहिनें)
				दानश्री
				मानश्री
				परमश्री
			(नौ)	
५३	परमश्री	कनेरंज प्रदेसी	३३३	सहजश्री
		कलनकुवार देवति प्रदेस	११	साहश्री
		उक्तरंज उददु	१३२	
		जयकुमारजिन	१७२	
			(छह)	
५४	मानश्री	नन्दकुमार "नरपति"		कलनश्री
		नृतकुमार नरविधु		कल्पश्री
		खिपरंज खेमल		
		पनकुमार		
		सुवरंज प्रदेस		
			(सात)	
५५	तारनतरन	सुवनरंज	३०९	नृतश्री नेना

	(समय)	सहजरंज पाँचइन	२३१	जानश्री जिया
		रकलरंज प्रदेस	३६६	रंजश्री बेटा
		सिवकुमार प्रदेस	१८४	ध्रुवश्री
		जिनकुमार	८२	जौनश्री
		सहकुमार सहस		सयलश्री
		लखनकुमार लाला		
		जल्पकुसार		
			(चौदह)	
५६	सुंनसुनंदश्री	अनमोद खिपनश्रेन		रमनश्री
		अन्मोयरंज खेड़पति वरड़ि		जानश्री
		निल्यरंज चाँदन खड़ेहो	३७७	भुवनश्री
		अभयरंज चाँदा	१३५	(भुवनश्री की बहिनें)
		कुकावली उवनश्रेन	२४२	उलखश्री
		जिनरमन होही खामखेड़ो	८८	ऊर्धश्री
				उनंदश्री
			(बारह)	
५७	भुवनश्रेन राजा		(तीन)	भुवउवन रानी
				उलखश्री
५८	उलखश्री	रमनश्रेन रैनदतु		नूतश्री ...

नम्बरे	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		पनकुमार पना		ऊर्धश्री
		जयकुमार जयपति		
		विनेरंज वसाउन		
		वदनकुवार वैद्य		
			(सात)	
५९	ऊर्धश्री	नंदकुवार नरपति		दर्शश्री / यनश्री
		अमिकुमार अरहु		
		मैनरंज लड़उ		नरानश्री
		कातिकुवार		ऊर्धश्री विमल
		शब्दकुमार प्रदेस		सीलश्री ईदा
			(नौ)	उनंदश्री
६०	उनंदश्री	ध्रुवरमन पारवरही		
		अभयरंज मिऊश्री		
		कर्नकुवार		
		अल्परंज अर्जुन		
		मिल्नरंज मदनश्री		
		कर्नकुवार		
		करमनकुमार		
			(सात)	

६१	सुअनश्री	विगसरंज विमल भुवनरंज भीखम कनकरंज कुंवएती कनिजु करमचंद मिलनरंज माडन चेयरंज चंबपारू
६२	रैनरंज रूपचन्द	रैनरंज रूपचंद नृतकुमार नरपति श्रीफूलकार

जानरूवा
जल्परूवा

(आठ)

नाममाला

खिमरूवा खेमा	१
दिसिरूवा देउला	२
दानरूवा देउमा	३
विलरूवा विमलश्री	४
मानसुवा मानिकदे	५
अमैरूवा अहिमनदे	६
सिउरूपा सिंगारदे	७
रैनरूवा रायवदे	८
रंजसुवा सयिवा	९
हियरंजरूवा हुरसिनी	१०
आधुवक पदमरूवा पीच	११
भुवनरूवा भिपनी	१२

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका	
				मिललरूवा मूंगा	१३
				पीयरूवा पुमश्री	१४
				प्रसरूवा पवरश्री	१५
			(अठारह)		
६३	हियारश्री	अल्पकुवार जौनश्री		(हियारश्री की बहिनें)	
		जल्पकुवार जालपु		लखनश्री	
		जिनरंज जिनदास		रमनश्री	
		जिनरंज जिनदास अग्रवाल		ठालश्री	
			(सात)	ममलश्री	
६४	सतसइ सुभाव	रंजरूव रंजन		रमनश्री	
		दिप्तिरंज उदैगन		मैनश्री	
		सहजकुवार होरिल		मानश्री	
		अयकुवार प्रदेश	(सात)		
६५	लवणश्री	उदयकुवार उरदु		रैनश्री प्र०	
		सयनरंज सूरज		रमनश्री	
		दिप्तिकुवार प्रदेस			
			(पाँच)		
६६	रमनश्री	मैन कुवार मदन		सुबनश्री	

		वेनरंज वैद्य		सहजैक
		रैनरंक रतन बभोरो		
		कल्परंजक रमसी विरदह्	७४	
		पियकुवार रूपरथी मानिकपुर	४३	
		लीनरंज	७४	
		लखनश्री पेम		
		सरजय दापुपुर		
		सिमिरंज प्रदेस	४३१०७	
		गमनरंज प्रदेसी		
			(बारह)	
६७	अखैजिनश्री	अखैरंज अनंता		सुवनश्री
		मैनरंज महीपति		
		सुवनरंज मदनसा } ....ने ली वटवार }		
		सुवनरंज दुदपे		
			(पाँच)	
६८	विपुलरूपा	वैनकुमार विरदहा	४१	
		रैनरंज रतनश्री विरद०	६४	
		सीनकु० लखनसी वि०	४१३३	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		अल्परंज अहिमदन वि०	२७	
		सियकुवार सहस	५४	
		दिप्तिकुवार		
		रैनकुवार रैन		
		भुवनरूवा भीखम	२२७	
		जिनरूवा मिलनी		
			(नौ)	
६९	जानश्री	मैनकु० माडन, खड़ेहो		रमनश्री
		विश्वकु० वसन मुखखड़ेहा		सूर्यश्री
		ममलकु० सेठ सहनसी		
		अयकुमार पते	(छह)	
	बहिनी			
७०	लयश्री	दर्सरंज प्रदेसी		
		मदनरंज पुनसा		
		वृधिकुमार विरुसिद्ध सेठी	(तीन)	
७१	द्वितीय बहिनी			
	विश्वश्री	कनकरंज कुंवरसी खड़ेह		
		गयकुमार गनेस	(दो)	

७२	अभयश्री	जिनकुमार पनेविरदहा	१४४	नित्यश्री नैना
		सहकुमार		रैनश्री
		····यनरंज ठा० बाभौरी	४९	
		विमलकुमार मानौरे परसौगी	३०९	
		सहजकुमार प्रदेस	१४४	
			(सात)	
७३	राजारैको कुटुम्ब	विनयरूवा वैदा		हियरंज हंसा
			(तीन)	निलय सुवा
७४	निलयसुआ	रैनकुमार रैनदितु वि०	३३४	नन्दरूवा
		हियरंज होली अरडेला	१७	नूतरूवा
		मिलनकुमार माड़न संझाई	३५	
		चेलरंज चाँदन विरदहा	३७	
		वैनकुवार वैद्य	२४	
		जिनकुमार मिलन	११७	
		कतकरंज प्रदेशी	२५६	
			(नौ)	
७५	सहजरूवा	कलरंज विरदहा		मैनावती सहाश्री
				चस्लसुवा चाँदनश्री बिरदहा
				लीनरूवा लाड़ो

गणधर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
				भुवनसुवा भाना सजई
				श्री अजिता
				सीलरूवा सिंगारदे
				महाविनयसुवा वैदा
				पियरूवा पूना विरदहा
				लवणसुवा नारानश्री
				विगसरूवा वैदा
				प्रियरूवा
				अल्परूवा
				सजाई बाभौरीश्री रतना
				आछिर बाभौरी
				अगम सुवाऊभा वाभौरी
				मिलनरूवा रतनश्री विरदहा

(सत्रह)

गणधर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
७६	जैनश्री	जयकुमार जैपति खड़ेह		
		कर्णकुवार कुंवर खड़ेह		
		विगसकुवार विमल खड़ेह		
		माढ़न को वसुकुमार		

		रॆमनरंज राजा		रंजश्री रानी
			(छह्)	
७७	बहिनीश्री	शिवकुमार शिवदास पिपरिया		
	जैनश्री	गमनरंजसा उपवन		
		रमनरंज उरदु		
		हियरंज हमराज		
			(चार)	
७८	जिनयश्री	नृतकुमार नैनश्री		जैनश्री
		दिसिकुमार देऊचंद		जानश्री
		उक्तरंज ठाकुरश्री		प्रेमसुवापा
		अखयकुमार अठुमहोड़ो		चौसाजई
				उक्तरूवा षेडश्री वि०
				ईर्जरूवा ईदा
				गमनरूवा गाइति वाभौरी
			(ग्यारह्)	
७९	लखन			(लखनश्री की बहिनें)
				रंजश्री
				बुद्धश्री
				पैनश्री
			(चार)	सियश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
८०	पैनश्री	रंजकु० रतनसी पंचहाड़ा		लिपकश्री
		पियकु० पतु सेमरखेड़ी		चरनश्री
		जिनकुवार प्रदेस		
			(पाँच)	
८१	रिद्धिश्री	अभेरंज, भौंरा········		रैनरूवा रमादे
		जैनरूवा जीजावहिता		सई सुवा रामश्री
		मुड़िया खेड़ो वैनकु०		कमल रूवा कुंवरश्री
		रूपरंज रूपश्री		नूतरूवा नैना
		दिप्तिकुमार दीपा		रंज रूवा रमा
		पयरंज चांदी		भक्तरूपा भुवनी
		तिलकरूवा तिभुवा		
		भुवनरंज भीखम		
		अल्परंज अबल		
		कर्णकुवार कपूर		
		कमलकुमार कुंवर		
		रैनरंजराई तासु-		
		पयकुमार आसमल		
			(उन्नीस)	

८२	लीलश्री	सियकुवार, लखनश्री		लीनरूवा लखनश्री
		सियकु० पावरूश्री		निलैसुवा नाहृा
		अलखरंज अखैराज		वरनरूवा चांदनश्री
		अनयरंज भीखन		लखनरूवा लाड़ो
		कलनरूवा सुव रामचंद		रैना उतश्री
				प्रभावती पावरूश्री
				कल्परूवा कौरा
			(बारह)	
८३	भद्रसी			उवनश्री
			(एक)	
८४	उवनश्री	रसिककु० कुंवर	११३३	रमनश्री
		जयकुमार प्रदेश अन्मोय	२८४	खिपनश्री (विमात)
		कर्न कुवार		कनकश्री
		(कनकश्री अन्मोय)		कल्पश्री
		मेघकुवार		
		सुवनकुमार घुटउराखि	९८४	
		रमनरंज मोखन	३३५	
		चंद-रंज	२३३	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		रयनकुंवार प्र०	३०७	
		सहजकु० उवरोखि		
			(दस)	
८५	कल्पश्री	कलजिन कुमार		लाउश्री
		इष्टकुमार आसामल		सयनश्री
		कर्नकुवार कर्नचंद		नृतश्री
		हियरंज राइचंद		
			(सात)	
८६	नृतश्री			(सहजश्री की बहिनें)
				सतसई
				अगमरूवा
				पयरूवा
				अलखावती
				पयरमन रूवा
				पियरमन रूवा
			(छह)	
८७	इच्छकु० छिताऊ	पियरमनरूवा	८४	सयनरूवा

		विगसकुवार विमल	७४	लिपरूवा
		सहजकुमार छितारू		
		सेउ राज	३४	
		मिलनरंज महराज	४७	
		रयनरंज राइचंद	४३	
		अयकुमार प्रदे०	११९	
			(नौ)	
८८	मलखावती	सहजकु० महनश्री	२८७	कल्परूवा अनमोय
		अगमकु० जिन	४४	
		शिवकु० मयारू	४२	
		सुल्पकु० मानिक	८२	
		सहजरंजमहे	८१	
		उक्तरंज प्रदेस	११७	
			(सात)	
८९	पयनरूवा	हियरमनरंज हमास		दानरूवा
		विगसरंज हरसिंधु		जानरूवा
		छोहरंज छीतरू गहोई		
		लवणकुवार छीतरू		
			(छह)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
९०	जानरूवा	लब्धिरंज		युवरूवा धरमा
		पियकुमार परस		रमनरूवा रमनश्री
				प्रेमरूवा पदमा
			(पाँच)	
९१	पयउवनश्री	अल्परंज		(बहिनें रमनश्री)
		परस कुवार		
		अगम रंजु		
		पदम रंजु		
		कल्पकुमार ईमल		
			(पाँच)	
९२	रसनश्री	मैन कुमार		
		ममल कुमार		
		साहु कुमार		
		सिउकुमार विरसमु		
			(चार)	
९३	बयनश्री	दर्सरंजु देउराज		
		भद्रकुमार महून		

सुंवन कु० शिवदास
सनकुवार प्रदेस
नय रमन

(पाँच)

(अन्मोय नैरमन)

९४ अमरश्री

जयकुमार जिन
ममलरंज जालपु
कुवर प्रदेस

(तीन)

(अन्मोय नैरमन)

९५ अमरश्री

सकलरंज सहस
नन्दरंज प्रदेस
ममलकुवार मनसुख
ध्रुवरमन प्रदेस
प्रयकुमार प्रदेस
ह्रियरंज ह्ररदास
बिमाता जयश्री
तस्य पुत्र पुटकार नामा

विम्हनदु माता रूपश्री
रंजश्री
रमनश्री
लखनश्री
वयनश्री की पुत्री
वयनश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		रयनरंज रयधु हरदास		जयनश्री
		अल्परंज आढ		सहजश्री
		अखयरंज आलमल		रमनश्री की बहिनें
		रयनकु० रामचंद		
		उक्तरंज उदयचंद		
		साहकुमार श्रीपारू		
		ममलरंज करमचंद		षड्गसेन तस्य पुत्री
		ममलरंज करमश्री		खिपकश्री सखी
		मिलनरंज महनश्री		वय उवनश्री प्रयोग
		रुचिरंजरूवा		अनुमोय
		दिप्तिरंज दीपचंद		
		अलखरंज आसमल		
		कलनकुमार पारू		
			(उन्तीस)	
९६	वयउवनश्री	पयकु० पंचाई भाउ		निलयश्री
		विगसरंज प्रदेस		रायश्री
		विनयराज गुजरात		

		विमान नेनकुमार संघ ठाकुरश्री पुरहा	(सात)	
९७	अन्मोय साहु प्रिय रुद्दयाजिन विजयश्रेन राजा तस्य उत्पन्न नंद श्रीतस्य उत्पन्न सुनंद श्री सहाई वज्रजंघ राजा तस्य उत्पन्न भ्राता पई पाल राजा तस्य पुत्री—		(पाँच)	
९८	प्रेमश्री	खिमन रंज चांदनु चन्दरंज वारा वृ····रंज सिव सहस रंज दिस कुवार प्रदेस	(सात)	मैनश्री की सखी हरषश्री हंसा रंजश्री सुवा
९९	ध्रुवश्रेन	राजा········ रमनचंद रूपउ खिमन चंद प्रवेस सिंघराज	(पाँच)	पदमश्री रानी कर्णश्री (स्वयंवर श्रेनजिन) रमनश्री इष्ट
१००	अगमरूवा	मिलन कुवार मनसुख मैनरंजु मदनु अयकुमार अनंद		

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		भुवन रंज भुवन		
		अलखवारु हरिसिंधु		
			(पाँच)	
१०१	हरिसिंधु	अन्मो० प्रियकु० पिरथू		खिपक रूवा खेमा
		गमन कुमार ग्यान		सोलरूवा सिंगार दे
		कर्णचंद को बेटा—		विनय सुवा वेदा
		जिन रंज आजिन		दिप्ति रूवा छीता
		भवन रंज भाव		लक्षि सुवा लाड़ो
		निलय रंज नैनश्री		अगमावती अमा
		खिपक रंज षहमउ		अलखावती
		श्री भुवन सुव मना		अजयश्री
		रंज राउ राजा		अभय रूवा भोखमदे
				विक्त रूवा विजैश्री
				नृत रूवा नैन सुवा
				न····रूवा खेमा
				विलस रूवा वेदा
				साहु सुवा भा
				जिनयकुमार ठाकुरश्री

				वयन रूवा विजयश्री
				नन्दरूवा नैनश्री
				रंज रूवा रंजल
				अलख रूवा आछिर
				ध्रुव रूवा वयनश्री
			(अट्ठाइस)	
१०२	अलपश्री	अकर्ण रंज		
		निलय रंज		
		साहकुमार सहजोपनीत प्र०		
			(तीन)	
१०३	सहज कुवार	मैन रंज उनु	५४	सीहश्री
	विगसश्री	विगस कुवार कुंवर	८४	सीलश्री
	सतसई	नील रंज	९६	वैनरंज वैदन
		सीत रंज विलात	११३	छिहली
		प्रस रंज प्रदेस	३०७	
		उवन रंज पनपति	(दस)	
१०४	कनकश्री	विलि कुवार वसउनि		जयनश्री
		उदाई (अन्मोय नाम-फुटकर)		अभयश्री
		हियरंज हमराज		लवणश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		गमन रंज जयकुमार		लखवा
		कनक रंज कुवार		लहु भक्तश्री
		स्वल्प रंज कुवार		भाउश्री
		कलभूतदियौ जिन		कल्पश्री
		पन कुमार		करमश्री
		नंद रंज		लीनश्री
		नामदेव		लखणश्री
		वयन रंज अरजन		....नश्री भुवन मैन की बेटी
		विगस रंज		(भुवन श्री जु की बेटी)
		वारमन रंजयन पारु		रयनश्री रतना शिकारपुर
		गुपित कुमार गोपी		अैकुमार असपति
		मिलन रंज चांदनु		हिय रमन रूवा
		दिप्ति रंज देउ गनु		(होरापैपाल की महतारी)
		भाव रंज भोगी पांडे		पबम रूवा
				(खिमन श्रेन की बेटी)
				हुलस रूवा चांदश्री
				विनय रूवा विजयश्री
				विनयश्री

१०५	मुक्तिसुवा	वीरचंद–वीरदास मवलरंजयन राजा सुवनरंज समोखन कलनकुवार प्रदेस साहकुमा ईठाए	(४४)	विमलश्री चेतश्री चांदा मलेश्री मतो तवश्री कपूरा अभय की रजाकुपूरा कुवरि तुकहता पियरूवा पदमश्री अल्परूवा आमि (रूपउ की बहिनी) शिकारपुर
				रंजश्री उत्पन्नश्री
१०६	रैनश्री	नैनरंज हरषरंज–हरिराज	(सात)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		हेमकुमार दृसा		
		हंसराज प्रदेस		
			(चार)	
१०७	पदमश्री	विक्तरंज		देवश्री
		मेघरंज		
		चेयकुमार चाँदन		
		कनककु० करमश्री		
			(पाँच)	
१०८	परमश्री	शिवरंज छतम्		रमनरूवा रतनश्री
		रैनकुमार रूपनी		इष्टरूवा ईंदा
		साहरमन सारग		लवणश्री लखम
		सेउ रंज		कनकरूवा करमश्री
				सहनरूवा रूवा
				रंजरूवा रूपनी
				अभयरूवाश्री
				मैनरूवा छीता
				नूतरूवा नैनश्री
				लिंपकरूवा खेमा

विनयरूवा विजयश्री
वैनरूवा वीरुदे
पदमरूवा पुरुष
लीनरूवा नंदश्री
लीनरूवा नह्मन
पियरूपा पूरा
ममलरूवा महाश्री अहमदपूर
(इक्कीस)

१०९ रंजरूवा तस्य उत्पन्न तीन
(तीन)

११० चेय स्वभाव विनयरंज बीरा
रैनरंज जिना
सुवनरंज प्रदेस
(तीन)

१११ तारनतरन .... इटाए की श्री (श्राविका)
१. भुवनश्री भना
२. हियरमनरूवा हरसिनी
३. कर्नरूवा ठाकुरश्री
४. निलयरूवा नंना

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
				५. रूवरूवा रूपिनी
				६. वैनरूवा वेदा
				७. राजमति
				८. रैनरूवा
				९. रंजरूवा रूपा
				१०. रमनरूवा रूपिनी
				११. पवारदे
				१२. सैनरूवा सिंगारदे
				१३. श्रीरूवा ठाकुरश्री
				१४. कमलरूवा कौरा
				१५. सहनरूवा सर्वश्री
				१६. भुवनरूवा
				१७. भीउश्री
				१८. उक्तरूवा उदयश्री
				१९. गमनरूवा गढ़ा
				२०. मिनरूवा मैनश्री
				२१. रंजरूवा रतनश्री
				२२. पियरूवा रूपश्री

२३. पैनरूवा पैनश्री
२४. खिपकरूवा खेउश्री
२५. वदनरूवा कुवल वैदा
२६. शिवरूपा सिठी
२७. आसरूवा अमेश्री
२८. भावरूपा भानुमती
२९. रैनरूपा सुहगा
३०. ध्यानरूवा जेमती
३१. अखेरूवा खहनी
३२. स्वल्परूवा सुहगा
३३. रंजरूवा राजमती
३४. पैमरूवा पवारदे
३५. वर्नसुवा करमा
३६. अभयरूवा भीखो
३७. लैनरूवा लखना
३८. चरनरूवा चांदन
३९. यनरूवा यनश्री
४०. अल्परूवा आसा
४१. रयनरंज राजा

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
				४२. साहुरंज सई
				४३. सीलरूवा सिंगारदे
				४४. विलसरूवा विसुनु
				४५. रैनरूवा रमाश्री
				४६. लीनरूवा रमाड़ो
				४७. रैनकुमार रायमल कुलड़
				४८. नृतकुमार नैनकुलड़
			(अड़तालीस)	
११२	गमनश्री	रंजरमनकु० रूपचंद		लीनरूवा
		खिपकरंज खेपति		भवनरूवा
		यनकुमार पनपति		
		रयनकुमार रयनी		
		शिवकुमार प्रदेस		
			(सात)	
११३	शिवश्री	प्रियकु० अल्परंज अभे		
		दिपिरंज देउचंद		
		पदमरंज पदारथ		
			(तीन)	

११४	....		४४२४	तवश्री
		चरतरंज चांदा	२१	विक्तश्री
		सुवनरंज प्रदेसो	६४	सक्तश्री
			(चार)	
११५	नृतश्री	घनरंज घाटम		लीलश्री
		उलखरंज उड्डु		नृतश्री
		कल्परंज करमचंद		
		रूवरंज राम		
		परमरंज प्रदेस		
			(सात)	
११६	अगमश्री	उक्तरंज उदुड़ तमेनि		
		चेयरंज चांदनु		
		ठानरंज ठाकुर		
		मेघरंज माड़न	(चार)	
११७	अखयश्री	वेनरंज सुव		
		मूलरंज महनश्री		
		खिपकरंज ख्यौराज		
		जिनकुमार प्रदेस	(चार)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
११८	....	(फुटकर नाम श्रावक)		(फु० ना० श्राविका)
		पियकुमार पुनश्री		रयनरूवा रतनश्री सेठिनी
		नन्दकुमार नन्हा		मैनरूवा मूंगा
		उक्तरंज चौधरी अला		दानरूवा देउला
		उक्तकुमार उहा		खिपकरूवा पदम
		विगसरंज मोलम		ममलरूवा मदनश्री
		खिपक कु० सेउपति		रमनरूवा रतनश्री
				गमनरूवा गमनश्री
				रंजरूवा राइसिरी
				मिलनरूवा रमनश्री
				अगमरूवा गरवा
				जल्परूवा असमा
				लवणरूवा लाड़ो
				सुवनरूवा
			(बीस)	मेघरूवा महूना
११९	रतनश्री	मैनरंज माडनु रतनश्री		फुटकर
	(लीनरूवा)	कमलकुमार पंचाइन		
		अगमकुमार		हियरंज रूवा हांसो

अभयचन्द
खिपकरंज खेउपति
देउराज
सुवनकुमार
सुरजनु देवराज
दर्सरंज देवराज
रयनकु० रतन पारू
सुवनरंज ठाकुरश्री
(मानिक)
दिप्तिरंज देउश्री
अठुजिनरंज ठाकुर
(पटवारी)
कल्लनरंज पटवारी
कल्पकुमार गौसी
अमरू
हरषरंज सह्मरदास
जयस्वरूप यशराज
ज्ञानरंज जैतश्री
सुवनकुमार माड़न

लीनसुवा लखनश्री
सेवनरूवा सोना
गमनरूवा गौरा
भुवनरूवा भावश्री
कमलरूवा कौरा
अल्परूवा अभा
कलनसुवा वैदा
इच्छरूवा छीता
कमलरूवा कुसपा
हंसरूवा हंसा
पनरूवा पनश्री
विक्तरूवा विमल कैसो
रंजसुवा राइश्री
विनयरूवा विमलश्री
(पटवारिनी)
पीयरूवा पीछा
बिगसरूवा वैंदा
अगमरूवा अभैश्री
अखयरूवा अहिमनदे

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	मंघ संख्या	मुख्य श्राविका
		सकलरंज उदयश्री		हरसरूवा हांसो
		रमन कु० रतनश्री होरिल		पदमरूवा पदमा
		हियरंज होरिल		(तू मैन)
		मदन सहज कु० सहस		
		दर्सकुमार देवराज		
		अभय कु० भीखम		
		उवनरंज		
		जिन कुवारश्री		
		उक्त साह उवरमनु		
		दिप्तिकु० देवदास उगसरी		
		अपसुवन पाले		
		रायरंज राइचंद		
		कलनकुमार कैसो		
		सहजरंज सहसभल		
		अल्पकुवार		
		अमरश्री		
		शिवकु० सिंगारश्री		
		पयरंज पारश्री	(उनसठ)	

१२०	शिवश्री	अल्पकुमार	२१	ऊर्पश्री
		वयनकुमार	२६	साहश्री
		पियकुवार	१४	
		जानकुमार जापुरू	१४	
		रैनकुमार प्रदेस	८१	
			(सात)	
१२१	सुवनश्री	ऊर्ध्वकुमार परमश्री		सकलश्री
		कमलकुमार लाला	२७	
		कलनकुमार कन्हो		
		अल्पकुमार अमरश्री	१४	
			(पाँच)	
१२२	सहस्र	सुररंज, सूरज	६४	
		कुमार अहिमन	२२	
		शिवकुमार ठाकुरश्री	१२	
		भुवनकुमार भीखम	९	
		रमनकुमार प्रदेस	४१	
			(पाँच)	
१२३	रावश्री	उक्तरंज उवदडु	३५	निलंश्री
		औरंज भेवश्री		लीनश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		हरिषकु० हरिगन	७४	
		मयनकुवार	२५	
		साहकुमार प्रदेस	५४	
			(सात)	
१२४	रमनसुवा	खिपककुमार		
		नलरंज नाथु		
		खिपककु०		
		लीनरंज प्रदेस		
			(चार)	
१२५	....	....	....	हरसरूवा हला
				रंजसुवा रतो
				ममलरूवा महाश्री
				कल्नरूवा कूबरो
				खिपकरूवा खेऊश्री
			(पाँच)	
१२६	निलेश्री	सुवसकुमार		उवन सुवा
		जयरमन जागा		रमन सुवा

		हयकुमार हरपत विनयकुमार वैनश्री अगमकुमार प्रदेस		साहु सुवा
१२७	पीयसुवा	रैनकुमार रायचंद अयकुमार अजित भुवनकुमार भीखम मैनरंज सहनश्री सिउकुमार श्रीचंद ममलकुमार प्रदेस	(आठ)	अल्परूवा अमरश्री कल्पसुवा कुंवारदे दिप्तिरूवा प्रदेस
१२८	अगमरूवा	खिपकरंज रूयोपति उक्तकुमार उदैसी हरषकुमार रंजकुमार प्रदेस	(नौ)	रंजरूवा
१२९	ध्रुवउवनरूवा	रैन रमन राम अल्परंज अजित खिपकरंज छीतरू	(पाँच)	दिप्ति सुवा स्वर्क सुवा

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		सुरमनरंज सूरज लीनकुमार मिलनो	(सात)	
१३०	....	....	....	हियारूवा हांसो यनरूवा यनश्री दिप्तिरूवा देवश्री लीनरूवा लखनश्री
			(चार)	
१३१	रमनरूवा	सुवरंज रतनश्री सिवकुमार उदेश्री चयकुमार वेदान ध्रुवरंज कान्हर		सुवनरूवा
			(पाँच)	
१३२	ध्रुवरूवा	मेघरंज मदनश्री सीलरंज श्री ममलरंज मिलन	४४ ३२ ३९	सयनश्री रमनश्री
			(पाँच)	

१३३	मलखरूवा	सहजरंज साहस	निलेरूवा
		हियरंज हरपति	
		खिपकरंज खेउपति	
		दिप्तिकुमार देवपति	

(पाँच)

१३४	....	वेकुमार पूरनमल	विश्वरूवा वामा
		रुचिकुमार रूपचन्द	चेयरूवा चांदा
		देवकुमार देउपति	मैनरूवा मानिकदे
		ममलरंज पारको कुटुम्ब	लवणरूवा लाड़ली
			रंजरूवा रायश्री
			उक्तरूवा उदयश्री
			—पामाखेड़ी की श्री—
			पियरूवा पदमश्री
			अभयरूवा अभयश्री
			परमरूवा युता
			अल्परूवा अहिमन
			मैनरूवा मानिकदे
			मिलनरूवा मनादानश्री
			धोयरूपा पनश्री

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
				चेयरूवा चांदा
				व्यक्तरूवा विमलश्री
				—शिकारपुर की श्री—
				सुवनरूवा सुहगा
				ममलरंज मानिक
				चेयरूवा चांदो
				हरसरूवा हासल
				वैनरूवा वैया
				मैनरूवा महाश्री
				खिपकरूवा खेमा
				पुनरूवा पुनश्री
				रयनरूवा वैदा
				रमनरूवा रूपा
				परमरूवा पुनश्री
				पीयरूवा पदमश्री
				कमलरूवा कनकरूवा

१३५	कमलरूवा	ममलकुमार माना	३३	
	कनकरूवा	तेकुमार 'तारन'		
		उवतरंज उददु		
		ज्ञानरंज सकले		
		लीनरंज प्रदेस	८४	
		प्रियरमन वमनु		
		रैनरंज रमनश्री ग्यारसपुर	(सात)	
१३६	अगहरूवा	चेयकुमार चाँदन	८४	रमनरूवा रूपश्री
		समकुवार सहस	५७	विनयश्री विमल
		लखनकुमार लखन	६८	
		दिप्तिरंज देवदास	४९	
		सहजरंज मिलन	११४	
			(सात)	
१३७	अहमरूवा	भावरंज भीखम	३३	भयरूवा भावश्री
		लीनरंज लखन		शिवरूवा सिंगारदे
		छोहरंज धीरह	३३	
		हर्षरंज हरदास	४१	
		साहरंज शिवदास	३७	
		ममलकुमार प्रदेस	(आठ)	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
१३८	रंजरूवा	मिलनरंज मड़े	३५	विक्रमरूवा वेंदा
		निलेरंज नगराज	३६	साहरूवा प्रदेस
		पीयकुमार श्री········	१४	रेनरूवा रानी
		विश्वकुमार विमल		
			(सात)	
१३९	································	सिवकुमारश्री		रूवरूवश्री
		रयनरंज रामजी		चरनरूवा चाँदो
		वयनरंज वीउजी		
		विक्तरंज वीउजी		
		दिप्तकुमार देवश्री		
			(सात)	
१४०	मुनंतरूवा	दर्सरंज देवपति		हियरूवाह·······
		रयनरंज धोर		कलनरूवा कूबरी
		कलनकुमार लखनश्री		पदमरूवा मिलनी
		चरनरंज चन्दन		
		रयनरंज रजम		
		जैनरंज जिना		
		पदमकुवार प्रदेस	(दस)	

१४१	साहु स्वरूप	परमकुवारे		अल्पश्री
		रमनरंज रामजी		लिपनश्री
		चन्दरंज		
		सिंह्मरंज		
		दानरंज	(सात)	
१४२	सुवन सुवा	साहरंज		पियारूवा पूना
		श्रीचंद		भुवनश्री
		मैन कुंवार		रंजरूवा रूमी
				गुप्तसूवा ज्ञानश्री
				लीनरूवा लीनश्री
				मालरूवा माड़न
				विगसरूवा विमलश्री
				चन्दरूवा चन्दश्री
			(ग्यारह)	
१४३	विगसरूवा	हियनन्दकुमार		नैनसुवा
		नन्दकुमार	४४	अलख सुवा
		कल्परंज मिलन	७४	
		ध्रुवकुमार मिलन	३४	
			([illegible])	

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
१४४	सिलावनि	सुवनकुमार सांति		भुवनसुवा
	हियनंदकुमार	चरनकुमार चंदन		नृतसुवा
		रैनरंज राम		मैनसुवा
		सुवनरंज सुमति		
		मैनरंज मडे		
		ध्रुवरंज प्रदेस		
१४५	असकंपरूवा	सहजरंज समोखनु	(नौ)	रैनसुवा
		उक्तरंज उदनु		रमनसुवा
		मिलनकुमार मदन		रमनश्री
		मिलनरंज वेद		अखयरूवा दीदा
				हंसरूवा हांसो
१४६	उवनरूवा	अल्पकुमार अर्जुन	(नौ)	मैनरूवा
		गुप्तरंज गुनिया		मदनश्री
		रूवरंज रतन		हरषरूवा मिलने
		व्यक्तरूव विमल		
		जैरूवा जगपति	(आठ)	

१४७	सुअन सुआ	सैयनरंज सातल जिनरंज ठाकुर उवनरंज ठाकुर धर्मरंज धनेसुर विश्व (रू) कुमार मि०	सेहजरूवी रैनरूवा

(सात)

१४८	....	सहजकुमार सहस मिलनकुमार मदनश्री नृतरंज मानके रूबरंज नाहे वयनकुमार वहोडिगु सिवकुवार श्रीचंद दिप्तिरंज देवपति रैनकुमार उक्तकुमार उरद सुवनकुमार मुनिदास गगरवाड़ो (पड़रिया) नेयकुमार धनेसुर	पीयरंज पूना रूपश्री दिप्तिश्री देउली अमयरूवा भौला जयरूवा जयश्री अल्परूवा अनभा सुवन सुवा सुहगश्री नैनरूवा नैनश्री चरूवा सिपलरूवा सोमा इष्टरूवा ईदा

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		मैनरंजश्री		चेयरूवा चांदो
		भुवनरंज भोखम		(रूपकुमार) रूपश्री
		सियकुमार श्री		सुवन सुहगा
		{ विनयरंज		मैनरूवा मानिकदे
		{ वीरदास		{ पुर्नरूवा को कुटुम्ब
		विश्वकुमार विमल		{ वीरकायपुरी
				हंसरूवा
				भवरूवा भावश्री
				ममलरूवा }
				महुमश्री }
				पयरूवा पाटम
				सहजरूवा सुहगा
				रूवनश्री
			(चालीस)	
१४९	सहनरूवा सहजश्री	लीनकुमार लखन	१४	मिलनरूवा
		रैनकुमार रतनश्री	२१	रैनरूवा
		नन्दकुमार छितरू	४४	
		परसकुमार पते	३४	

		हियरमनरंज प्र०	५४	
			(सात)	
१५०	सुल्पकुमार	हियरमनरंज राजा	१४७४	भुवनसुवा
		सहजरंज मिलन	८४	अगमसुवा
			(चार)	
				इच्छरूपा छीता
				हियरमनरूपा हंसा
				मिलनरूपा मया
				सुवनरूपा सहिवा
				मेनरूपा मदन
				चरनरूपा चांदा
				अलयरूपा तिलक
				कोढ़िया
				सुवनरूपा सोनी
				लवणरूपा लाडो
				अल्पसुवा अनभा
				मेनरूपा मानश्री
				लीनरूपा (सेठ उवेसी की)
				गुल्पकुमार मुत्ता
१५१	जयरमन बखान उत्पन्न —			

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
				पदमरूवा पदमजिन
				लीनरूवा नेना
				हिमरंगरूवा हर्षिनी
				रेनरूवा रूपिनी
				कमला देउराज
				परमरूवा पवारदे
				उमरूवा (उद्दीपरवार की)
				मिलनसुका मूंगा
				(सनतकुमार सरोतुसुवा)
				सूवा सिंगारदे
				चेयनरूवा चाँदो (कुड़वई)
			(तेईस)	
१५२	रैनरूवा	विगसरंज विमल		
		भुवनरंज भीखम		
		मैनरंज मने		
		सुवनकुवार मिलन		
			(चार)	

१५१	अल्पकुमार	अमरश्री
	नैनरंज निसा	वयनरूवा पूनाश्री
	नीलरंज लालसिंघ	खिपकरूवा खेमा
	कलनकुमार ठाकुर	कर्मरूवा करमा
	(बेटा मानिक के)	दिप्तिरूपा देवश्री
	पैकुमार पराथ	
	पायकुमार	पुण्यश्री
	मैनकुमार माड़नु	रूपचन्द की बेटी
	दिप्तिरंज देवश्री	(कुमारी बहिनें)
	पदमकुमार पदारथ	विक्तरूवा वारा
	जयकुमार जैनश्री	भक्तरूवा भावश्री
	नूतकुमार नैनश्री	रैनरूवा ठाकुरश्री
	कु……वंधान राजा को	पीउरंज पूना
	कागपूर	वैनरूवा वैदा
	गमनकुमार गजा	मैनरूवा मानिक
	कलरंज कुमार पारू	निलयरूवा नेमा
	जैनरूव जयपाल	धुवरूवा धनश्री
	कर्णकुमार कुंवरश्री	कमलरूवा कौरा
	कौलरंज कौरा	बालरूवा जैन

नम्बर	मुख्य नाम	उनके मुख्य श्रावक	संघ संख्या	मुख्य श्राविका
		बैनकुमार बसउन		मृतकन्या मैनश्री
		बानिपुर		हर्षकन्या हीरा
		गमनकुमार गोलालारो		मिलनकन्या मदन
		अहमदपुर		
		कूकावली		
		पोउपुरा	(इकतालीस)	
१५४	रैनसुवा	चेयरंज चांदलु		सहजकन्या
		कर्णरंज कुंवरश्री		दानसुवा
		उक्तरंज हयरन		
		सुबनरंज प्रदेस		
			(छह)	
१५५	निलेसुवा	रयनरंज रूपश्री		मृतसुवा
		जिनरंज जिना		पवनकन्या
		देवरंज जिना		
		देवरंज पुहकरदास		
		भुवनकुमार भोज	(सात)	

कुछ छोटे मंडल

नं०	नाम	संघ संख्या
१.	अन्मोय दिप्ति उत्पन्न	३१३१
२.	साहु रुइयाजिन उत्पन्न कलन कमल जिनश्रेण	१२१७१४
३.	अन्मोय साहु उत्पन्न कलन कमल जिनश्रेन शब्द-प्रियो	३९९१२
४.	खिमनश्रेन साहु उत्पन्न सुदिप्ति जिनश्रेण उत्तास्य प्रियो	४३७७२
५.	निलय रंज चांवलु अन्मोय खिपकश्रेण साहु उत्पन्न समै उत्पन्न सुदिप्ति जिनश्रेन	५७७८४
६.	अन्मोय मेघकुमार उत्पन्न जिनश्रेन कलन अन्मोय रुइयाजिन उत्पन्न साहु	६५७७२
७.	अन्मोय मेघकुमार उत्पन्न जिनश्रेण कलन उत्पन्न साहु समय रंज अन्मोय रुइयाजिन	७२३७
८.	वेयजिन उत्पन्न साहु	६७४
९.	रमनचंद दिष्ट साहु उत्पन्न साहु	१११
१०.	हेमकुमार साहु उत्पन्न	३२
११.	भुवन उत्पन्न साहु	८४
१२.	सुवनरंज स्वयं	१३३
१३.	रमन श्रेन	७२
१४.	उदद लुनही	३९७१
१५.	पं० श्री मैनकुमार उत्पन्नश्री स्वर्कश्री	२३१
१६.	सहुज रमन के पी जयरमन साहु उत्पन्न	१८७
१७.	पैकुमार भयदिह उत्पन्न पंचाइन साहु उत्पन्नश्री	३१

अन्तिम नक्शा नं० १५५ के बाद ग्रन्थ का शेष-विशेष

ॐ नमः प्रणमि, उत्पन्न परमानन्द आनन्द सुभाई,
सिद्ध समय साह.......................अनमोय सुभाई।
....
.................................सहजो पुनीत उत्पन्न सुभाई ॥ १ ॥

नं०	नाम	संघ संख्या
१.	सब्द साह सब्द उक्त प्रियो	३१३१
२.	अन्मोयदिप्ति उत्पन्न साह रुईयाजिन उत्पन्न कलन कमल जिनश्रेण	१२१७१४
३.	अन्मोय साह उत्पन्न कलन कमल जिनश्रेण शब्द प्रियो	३९९१२
४.	खिमनश्रेण साह अन्मोय उत्पन्न सुदिप्ति जिनश्रेण उत्तस्य प्रियो	४३७७२
५.	निलय रंज चाँदन अन्मोय खिपकश्रेण साह उत्पन्न समय उत्पन्न सुदिप्ति जिनश्रेण	५७७८४
६.	अन्मोय मेघकुमार उत्पन्न जिनश्रेण कलन अन्मोय रुईयाजिन उत्पन्न साह	६५७७२
७.	अन्मोय मेघकुमार उत्पन्न जिनश्रेण कलन उत्पन्न साह रमयरंज अन्मोय रुइयाजिन	७२३७
८.	चेयजिन उत्पन्न साह	६७४
९.	रमणचंद दिष्ट साह उत्पन्न साह	१११
१०.	हेमकुमार साह उत्पन्न	३२
११.	भुवन उत्पन्न साह	८४
१२.	सुवनरंज सुवं	१३३
१३.	रमनश्रेन	७२

नं०	नाम	ग्रंथ संख्या
१४.	उदद लुनही	३५७१
१५.	पं० श्री मैनकुमार उत्पन्नश्री स्वर्कश्री	२२१
१६.	सहजरमन के पौ, जैरमन साहु उत्पन्न	१८७
१७.	पैकुमार भयदिष्ट उत्पन्न पंचाइन साहु उत्पन्नश्री	३१
१८.	मैनश्री उत्पन्न साह	३४
१९.	संघै ठाकुरश्री	२७२
२०.	पंयन	१७२
२१.	करमश्री विरदह उक्त, अन्मोयदिष्ट उत्पन्न, उत्पन्न समय	३६०००
२२.	सहअर्क उत्पन्न अर्क छत्तीस	४२७२
२३.	कमल उत्साह उत्पन्न	२४७६
२४.	उत्पन्न श्रीसाह उत्पन्न	१२९२
२५.	उत्पन्न चरण, चरण साह उन्पन्न	१९१९
२६.	हंसश्री	२१३१
२७.	सुवनश्री	२२३२
२८.	औकासश्री	५३५
२९.	दिप्तिश्री	९९५
३०.	सुदिप्तिश्री	१०७२
३१.	स्वर्कश्री	१३३३
३२.	सर्वार्थश्री	२७३१
३३.	विंदश्री	१११७
३४.	अभयश्री	८४८४
३५.	श्री	११२
	जोड़ सर्व	३१६०५
	पयोग	१२११७
३६.	विंदश्री	६७३

नं०	नाम	संघ संख्या
३७.	समयश्री	३००६
३८.	श्री	१०
	जोड़सर्व (जो ग्रन्थ में लिखा है)	४२४५३३१
३९.	पं० उद ऊर्ध-अन्मोद साहु समय	१८४
४०.	पं० सरउन उत्पन्नदिष्ट	४७४
४१.	पं० भीखम उत्पन्न उक्त समय साहु	४४
४२.	चरनसि उक्त साहो	१२७
४३.	लखनसी उक्त उत्पन्न	७७४
४४.	नेरमन उत्पन्न उक्त साहु	६४
४५.	विसुनदास अभय रमन	७६
४६.	कर(म)चंद अन्मोद नेरमन	१४७
४७.	यन उक्त उत्पन्न अन्मोद नेरमन	१७२
४८.	सहुसमय साहु उत्पन्न	१८७
४९.	साहु समय अन्मोद नेरमन	१४४
५०.	कुंवार साहु उत्पन्न	१५३
५१.	मिलनकुमार मिलनप्रिये	७२
५२.	चेतनकुमार मिलन स्वभाऊ	२४८
५३.	निलयरंज उक्त साहु	२४
५४.	अन्मोय रंज उक्त रमन	७३४
५५.	रैनकुमार उक्त साहु	१८७
५६.	रुइयारंज उक्तरमन	१३३
५७	इच्छकुमार	२७३
५८.	साहु कुमार	२५०
५९.	सिर कुमार	१६४
६०.	रैन कुमार	१३७
६१.	सहज कुमार	२७२

नं०	नाम	संघ संख्या
६२.	वैकुमार फि०	८९
६३.	धनकुमार उक्तरमन	३३
६४.	गमन रंज उक्तरमन	३२४
६५.	उवनरंज उक्त साहु मदनश्री	५७
६६.	लखनकुमार उक्तरमन	३२४
६७.	सिवकुमार उत्पन्न रंज	१११
६८.	लीनकुमार	१०३
६९.	हुर्षरंज	२८७
७०.	परसकुमार	१७७
७१.	रिसि	१४३
७२.	हियार रंज पस्यते अलखपट	१७
७३.	तस्य बहिर्नें सातसे (सतसई) सर्वश्री तस्य उत्पन्न	५६७
७४.	हुर्षश्रेण हुरपति	४५
७५.	नीलरंज फुल०	१६७
७६.	उक्त साहु विगस	१२७
७७.	साहुकुमार उक्तसाहु अभयरंज प्रदेस	८४
		४३१२५०

६५५२१५	कुल संख्या
४३१२५०	ग्रंथ के शेषविशेष का कुल जोड़
१०८६४६५	कुल जोड़ शिष्य संख्या ।
१५०७	नाममाला में नाम दर्ज है ।
१५४	समितियाँ (मंडल)
६७	व्यक्तिगत संघ
२११	व्यवस्थापक समितियाँ ।

श्री गुरुतारण स्वामी जी के शिष्यों में राजाओं की संख्या

१. निल्यश्रेण राजा — निल्यश्री रानी
२. रंजरमण राजा
३. नन्दकुमार नरपति
४. नूतकुमार नरविभु
५. नन्दकुमार नरपति
६. नूतकुमार नरपति
७. मैनरंज महीपति
८. रमणरंज राजा — रंजश्री रानी
९. रंजराउ राजा
१०. मनलरंजयण राजा

॥ इति श्री नाममाला समाप्त ॥

अन्त्यमंगल

जय जय जयवन्तो सदा, मंगल मूल महान ।
जिनशासन अरु जिन वचन, देव, शास्त्र, गुरु ज्ञान ॥

प्रमुख शिष्य नामावली, मंडलेश विद्वान् ।
मंडल छोटे बड़े सब, संख्या संघ प्रमाण ॥

ग्यारह लाख प्रमाण था, शिष्यों का समुदाय ।
जाति पाँति से आर्य व्रत, धर्म अहिंसा भाय ॥

श्री संघ के नियम में, अनुशासन अनुसार ।
अष्टमूल गुण अणुव्रत, जैनाचार विचार ॥

एक मंडलाचार्य का, मंडल एक विशाल ।
जैन पंथ के सूत्र में, चारों संघ खुशाल ॥

चातुर्मास
श्रीमन्त भवन
सागर
१९९०

ब्र० जयसागर

साहित्य सेवा

१. छद्मस्थवाणी (संस्कृत हिन्दी टीका)
२. नाममाला (नक्शा सहित- संकलित)
३. आचार मत पद्यानुवाद
४. विचार मत ,,
५. श्रावक स्वरूप
६. ता० त० तत्त्व ज्ञानमाला (१–२ भाग)
७. ता० त० तत्त्व ,, (तीसरा भाग)
८. हमारे इतिहास की भूमिका
९. मण्डलाचार्य
१०. तारण-गीता
११. आरती, भजन, भावपूजादि
१२. तारण स्तोत्र
१३. गोम्मट्टसार (जीवकांड) पद्यानुवाद
१४. समयसार ,,
१५. समयसार कलश ,,
१६. पंचास्तिकाय ,,
१७. प्रवचनसार ,,
१८. नियमसार
१९. रयणसार ,,
२०. दशभक्ति ,,
२१. द्वादशानुप्रेक्षा ,,
२२. अष्टपाहुड़ (८ ग्रंथ) ,,
२३. रत्नकरण्डश्रावकाचार ,,
२४. द्रव्य संग्रह ,,
२५. सामायिक पाठ ,,
२६. श्रावक प्रतिक्रमण ,,
२७. कल्याणा लोयणा आदि ,,